महाकवि सूरदास-कृत

सूरसारावली

(संजीवनी व्याख्या सहित)

अनुक्रमणिका

(आलोचना-भाग)

(व्याख्या-भाग)

प्राक्कथन

'सूरसारावली' की कोई प्राचीन हस्तलिखित या मुद्रित प्रति प्राप्त नहीं होती। वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई और नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से जो दो 'सूरसागर' प्रकाशित हुए थे उन्हीं के प्रारम्भ में 'सूरसारावली' छपी थी। दोनों ही मुद्रित प्रतियों में पाठ समान मिलते हैं। नवलकिशोर प्रेस वाली प्रति में 'खेलत यहि विधि हरि होरी हो……' वाली टेक छन्द संख्या ४२,७७१, ८८१ और ११०३ के बाद दुहराई गयी है किन्तु बम्बई वाली में टेक केवल एक बार आरम्भ में मिलती है। 'सारावली' की मुद्रित प्रति अलग ग्रन्थ के रूप में पहली बार श्री प्रभुदयाल मीतलजी के सपादकत्व में छपी। इसमें बम्बई वाली प्रति का अविकल पाठ मिलता है। केवल शीर्षक मीतलजी ने अपनी ओर से जोड़े हैं। जैसे सृष्टि-रचना, वाराह अवतार, यज्ञ पुरुष अवतार आदि। अवतार-लीला के आरम्भ में अवतारों का उल्लेख हुआ है। मीतलजी ने अवतारों के शीर्षक और क्रम दिखाये हैं। मीतलजी ने जैसा पाठ पाया था वैसा ही छापा है। अर्थ सम्बन्धी विसंगतियाँ उसमें यत्र-तत्र थीं तो भी उन्होंने उस पर कोई विचार नहीं किया। इसका कारण कदाचित् यह होगा कि उन्होंने सम्पादक के धर्म की सीमा में रह कर कार्य किया था। 'सारावली' के पाठक दो प्रकार के हैं। एक तो वे जो पुष्टिमार्गी भक्त जन हैं जो अर्थ की विशेष चिन्ता न करके धार्मिक दृष्टि से पुस्तक का पाठ करते हैं। दूसरे वे हैं जो भक्त नहीं हैं किन्तु जिन्हें पाठ्य ग्रन्थ के रूप में पुस्तक को पढ़ना पड़ता है। एम० ए० कक्षा में सूर-साहित्य का विशेष अध्ययन जो छात्र करते हैं वे ग्रन्थ का एक-एक शब्द पढ़ते हैं और अर्थ की संगति चाहते हैं। स्पष्ट है इस प्रकार के विद्यार्थियों को अनेक स्थलों पर कठिनाई हो जाती है।

दूसरी मुद्रित प्रति डॉ० प्रेमनारायण टंडन के सम्पादकत्व में लखनऊ से छपी। डॉ० टंडन 'सूर की भाषा' नामक विषय पर अधिकारी विद्वान् हैं। उन्होंने श्री भवानीशंकर याज्ञिक के सौजन्य से कृष्णानन्द व्यास के 'रागकल्पद्रुम' की प्रति प्राप्त की थी। उन्होंने बम्बई और लखनऊ वाले 'सूरसागरों' के साथ छपी 'सारावली' का भी उपयोग किया। श्री प्रभुदयाल मीतल-सपादित 'सारावली' भी देखी और बड़े परिश्रम से सारावली' का सम्पादन किया। इसमें भाषा की प्रकृति 'सूरसागर' से

अधिक मिलती हैं। ण, य और श वर्ण इसमें न, ज और स मिलते हैं। इसी प्रकार 'मोंकों' के स्थान पर 'मोंकौं' जैसी विभक्तियाँ मिलती हैं। 'सूरसागर' में सभी रूप इसी प्रकार हैं। 'साहित्य-लहरी' का जो सम्पादन भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने आरम्भ में किया था उसमें भी ण, य, श के स्थान पर न, ज, स वर्ण मिलते हैं किन्तु सरदार कवि से सम्पादित 'साहित्य-लहरी' में शब्दों का शुद्ध रूप मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि पहले सम्पादक लोग कवि की भाषा में किंचित् संशोधन कर देते थे यद्यपि भाषा की प्रकृति तथा मार्दव की दृष्टि से उससे दोष उत्पन्न हो जाता है। इसलिए डॉ० टंडन ने वर्णों के सहज रूप को स्वीकार कर उचित ही किया है।

डॉ० टंडन ने 'सारावली' के सम्पादन और उसके तुलनात्मक अध्ययन में बहुत अधिक श्रम किया यद्यपि अधिक परिश्रम के उपरान्त वे इस निर्णय पर पहुँचे कि 'सारावली' सूर कृत है ही नहीं। उन्होंने 'सारावली' की प्रत्येक पंक्ति को 'सूरसागर' की सामग्री से तुलना की। उनकी पहले योजना थी कि वे 'सारावली' की पंक्तियों को 'श्रीमद्‌भागवत' से भी मिलाते चलें पर वे ऐसा न कर सके कदाचित् इसलिए कि वह कार्य अधिक श्रमसाध्य था। उन्होंने इस सम्बन्ध में वक्तव्य दिया है—

'सूरसागर' की तरह ही 'श्रीमद्‌भागवत' से भी 'सूरसारावली' के वर्णनों के मिलान करने की योजना आरम्भ में बन गयी थी। परन्तु एक तो वैसे उल्लेख अप्रामाणिक ग्रन्थ में बहुत कम मिले और दूसरे 'सूरसागर' से इसकी तुलना करने का जो क्रम चल रहा था, उसमें भी बाधा पड़ने की आशंका थी।

अप्रामाणिकता के भ्रम के कारण वे यह कार्य न कर सके जो वास्तव में अपेक्षित था। 'सूरसागर' और 'सारावली' की तुलना एक प्रकार से अनावश्यक है। 'सूरसागर' में कवि ने लीला का विस्तृत वर्णन विशेष मौलिकता के साथ किया है। भागवत का आधार उसमें अत्यन्त अल्प है। कृष्णेतर अवतार-लीलाओं में भी भागवतीय वृत्त अत्यन्त सूक्ष्म है। 'सारावली' में समस्त भागवत का सार दिया गया है क्योंकि यह ग्रन्थ धार्मिक जनों के पाठ करने हेतु तथा प्रभु के ईश्वरत्व का उद्‌घाटन करने के प्रयोजन से रचा गया था। अतः इस ग्रन्थ को भागवत की सामग्री के साथ ही देखना चाहिए। अधिकांश छन्द भागवत के अनुवाद और भावानुवाद रूप में हैं। अन्तर यह है कि इसमें कम से कम शब्दों में कहने के कारण न्यूनपदत्व बहुत है। परिणाम यह है कि पंक्तियों का अर्थ भी प्रायः स्पष्ट नहीं होता। मूल सम्पादकों ने बड़ी भयंकर भूलें भी की हैं जैसे—

१. छंद संख्या ६१—

सत्यव्रत राजा रघुवंसी प्रथम भए मनु वंस।

में 'रघुवंशी' पाठ मनु के लिए है। मनु को वैवस्वत मनु कहा गया है। वैवस्वान् (सूर्य) के वंशज होने से वे वैवस्वत कहे गये थे। अतः यहाँ

१. सूर सारावली एक अप्रामाणिक रचना, पृ० ६।

'रघुवंशी' के स्थान पर 'रविवंशी' पाठ होना चाहिए। 'रघुवंशी' की अर्थ-संगति नहीं होती क्योंकि 'रघु' तो बहुत बाद में हुए थे।

२—पद संख्या १०५—में पाठ है—

तब नारद मुनि दई कथा ध्रुव सं प्रगटो है नाम।

यहां 'कथा ध्रुव' का कोई अर्थ नहीं बैठता। यह पाठ है 'कयाधुव'। कयाधू प्रह्लाद की माँ थी, उसी का यहां कथन हुआ है। प्रतिलिपिकार ने भूल से 'य' को 'थ' और 'धु' को 'ध्रु' कर दिया। बाद में सम्पादकों ने अर्थ की संगति देखे बिना 'मच्छिका स्थाने मच्छिका' बिठा दिया। श्रीमद्भागवत में देखने पर गुत्थी सुलझ जाती है। वहां प्रह्लाद की माँ का नाम मिल जाता है।

३—छन्द संख्या ५००—

पंडे में एक रजक संहार्यो, मारहि यमन हरि लीन्हे।
बालक मिले सबहि पहिरापे सबहिन को सुख दीन्हे॥

यहां 'बालक' शब्द बिलकुल अप्रामाणिक है। वास्तव में यह शब्द है 'वायक' जिसका अर्थ दर्जी है और जो भागवत में प्रयुक्त है। इसी प्रकार छन्द संख्या ५३२ में 'देवकी' के स्थान पर 'रोहिणी' और छंद ५८० में 'पचजन' के स्थान पर 'पचानन' शब्द भ्रमवश लिखे गये हैं। सम्पादकों ने प्रतिलिपिकार की भूल का प्रक्षालन किये बिना अशुद्धि को आगे बढ़ाया है।

मीतल जी के सम्पादन में हम यह सोच सकते हैं कि उनका काम सम्पादन मात्र था अर्थ की संगति बिठाना नहीं पर डॉ० टंडन तो शोधार्थी और प्राध्यापक हैं। उन्होंने 'सारावली' के एक-एक शब्द का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इनको इन शब्दों पर दृष्टि डालनी चाहिये थी किंतु 'अप्रामाणिकता' का जो पूर्वाग्रह वे ले बैठे उसमें कदाचित् उनकी शोध-प्रवृत्ति ही कुंठित हो गयी।

जब डॉ० टंडन की रचना 'सूर सारावली एक अप्रामाणिक रचना' प्रकाशित हुई तब मैंने इस ग्रन्थ को बड़ी जिज्ञासा के साथ पढ़ा। ग्रन्थ में पचासों स्थान पर डॉ० टंडन ने 'सारावली' को प्रामाणिक मानने वालों को ललकारा है कि वे उनके प्रश्नों का उत्तर दें। उन्होंने श्री प्रभुदयाल मीतल, डॉ० दीनदयालु गुप्त और डॉ० हरवंशलाल शर्मा के इस कथन की बड़ी खिल्ली उड़ाई है कि 'सारावली' में 'सार' का अभिप्राय सैद्धान्तिक तत्त्व रूप है। मैं समझता था डॉ० टंडन के इस ग्रन्थ के कुछ दिन उपरान्त 'सारावली' को प्रामाणिक मानने वाले विद्वान् उनका समाधान करेंगे। किन्तु किन्हीं कारणों से ऐसा नहीं किया गया। अपनी कक्षा में सूर-साहित्य का अध्ययन कराते हुए मैं भी 'सारावली' को प्रामाणिक ही मानता रहा और अपने छात्रों के समक्ष मौखिक रूप से डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा और डॉ० टंडन के तर्कों का उत्तर भी प्रस्तुत करता रहा। मेरे छात्र प्राय मुझसे आग्रह करते रहे कि मैं अपने मत को प्रकाशित करूँ जिससे छात्रों को कुछ लिखित आधार प्राप्त हो। छात्र-गण ही पुस्तक की टीका की आवश्यकता पर भी बल देते रहे। टीका इसलिए भी अपेक्षित थी कि

भागवतीय अन्तर्कथाओं के उल्लेख के बिना अनेक स्थलों पर 'सारावली' की पंक्तियाँ दुरूह हो जाती हैं। डॉ० टंडन ने 'सारावली को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए सम्पूर्ण ग्रन्थ ही उद्धृत कर डाला है। इसलिए भी आवश्यकता थी कि सम्पूर्ण ग्रन्थ की टीका भागवत के संदर्भों के साथ प्रस्तुत की जाय। मैंने यथासम्भव प्रयास किया है कि टीका संक्षिप्त हो और छात्रों को अनावश्यक विस्तार में उलझना न पड़े। साथ ही यह भी प्रयत्न किया गया है कि डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा और डॉ० टंडन की प्रत्येक शंका का समाधान हो जाय। जहाँ-जहाँ डॉ० टंडन ने पंक्तियों के संदर्भ में आक्षेप किये हैं, वहाँ-वहाँ विनम्र भाषा में स्पष्टीकरण कर दिया है। कदाचित् समस्त ग्रन्थ के पारायण के उपरान्त भ्रम में पड़े हुए शोधार्थियों को समाधान मिले। यदि ऐसा हो सका तो मैं अपने श्रम को सफल मानूँगा।

—मनमोहन गौत

दिल्ली, वसंतपंचमी, सन् १९७०

१. ग्रन्थ का नाम

ग्रन्थ के दो नाम प्रचलित हैं—'सूरसारावली' और 'सूरसागर-सारावली'। यह ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई और नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित 'सूरसागर' के आरम्भ में छपा था। दोनों ही ग्रन्थों में नाम 'सूरसागर-सारावली' है।

दोनों ग्रन्थों में नामकरण इस प्रकार हुए—

वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सूरसागर—

आरम्भ—अथ श्री सूरदास जी रचित सूरसागर सारावली तथा सवालाख पदों का सूचीपत्र।

अन्त—इतिश्री सूरदास कृत संवत्सरलीला तथा सवालाख पदों का सूचीपत्र समाप्त।

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सूरसागर—

आरम्भ—अथ श्री सूरदास जी कृत सूरसागर सारावली तथा सवालाख पदों का सूचीपत्र।

अन्त—इतिश्री सागरसागरोद्भव रागकल्पद्रुम सूरसागरस्य सूरसारावली समाप्तम्।

उपरिलिखित पंक्तियाँ ग्रन्थों में प्रतिलिपिकारों के द्वारा लिखी गयी जान पड़ती हैं। 'सूरसागर' के सम्बन्ध में वेंकटेश्वर प्रेस वाले ग्रन्थ में लिखा है—

श्री सूरसागर अर्थात् भाषा कवि कुल चूड़ामणि श्री सूरदास रचित श्रीमद्भागवत बारहो स्कंधों का ललित राग रागनियों में अनुवाद।

इस प्रकार 'सूरसागर' को श्रीमद्भागवत का अनुवाद घोषित किया गया है यद्यपि ग्रन्थ का अनुशीलन करने पर सिद्ध होता है कि वह भागवत का अनुवाद नहीं है। इसी प्रकार सम्पादकों ने यद्यपि 'सारावली' को 'सूरसागर-सारावली' और 'सवालाख पदों का सूचीपत्र' लिखा है पर न तो वह 'सूरसागर' का सार है और न सवालाख पदों का सूचीपत्र है। सम्पादक या प्रतिलिपिकारों की इन पंक्तियों को देखकर अधिकांश विद्वान भी इसे 'सूरसागर' का सार या सूचीपत्र समझने लगे और इन्हीं तथ्यों की छान-बीन में पड़ गये। 'सारावली' का विधिवत् अध्ययन किये बिना ही उसे 'सूरसागर' का सार या सूचीपत्र मान लिया गया था। डा० ब्रजेश्वर वर्मा कदाचित् पहले विद्वान् हैं जिन्होंने ग्रन्थ का विधिवत् अध्ययन किया। किन्तु वे भी ग्रन्थ की पुष्पिकाओं से इसे 'सूरसागर' का सार समझ बैठे और जब उन्होंने 'सूरसागर' के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन किया और इसे 'सूरसागर' से पर्याप्त भिन्न पाया तो इसे स्वतन्त्र र—

मानते हुए अप्रामाणिक कह दिया । उनका मत है कि यदि 'सूरसागर' का सार कवि लिखता तो मूल ग्रन्थ से उसमें भिन्नता न होती ।

ग्रन्थ नाम के लिए कवि का अपना नामकरण यदि मिल जाय तो समस्या का समाधान हो जाता है। कवि द्वारा प्रस्तुत नामकरण प्राप्त भी है। ग्रंथ में अन्त में पंक्ति आती है—

ताको सारसूर सारावलि गावत अति आनन्द।[1]

यह पंक्ति ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थ-माहात्म्य के रूप में लिखित कृष्ण के वरदान से पहले आती है। अतः यह ग्रन्थ की अन्तिम पंक्ति है जिसमें कवि ने ग्रंथ का नाम 'सूर सारावली' या 'सारावली' कहा है। साथ ही कृष्ण वरदान वाले अंश में दुबारा ग्रंथ का नाम 'सूर सारावली' स्वयं कवि ने लिखा है—"**धरि जिय नेम सूर सारावलि उत्तर दक्खिन काल।**" 'सूरसागर' के साथ 'सूर-सारावली' नाम बैठता भी है अतः 'सूर-[2] सारावली' नाम ही समीचीन है। इससे 'सूरसागर' पर आधारित होने का भ्रम भी नहीं होता।

सूरसार-सागर और सवालाख पदों का सूचीपत्र

सूरसागर-सार—सारावली 'सूरसागर' से सर्वथा स्वतन्त्र रचना होते हुए भी डा० दीनदयालु गुप्त के शब्दों में 'सूरसागर' की एक प्रकार की भूमिका है।[3] क्योंकि इस ग्रंथ में सूरदासजी का लक्ष्य 'सूरसागर' में वर्णित लीलाओं का रहस्योद्घाटन है। इसकी रचना करते समय कवि ने 'श्रीमद्भागवत' का आधार लिया है। 'सूरसागर' में भागवत की समस्त कथाएँ नहीं आ सकी हैं, कुछ तो अति सूक्ष्म हैं और कुछ अति विस्तृत। 'सारावली' में इसीलिए कथाओं के लिए कवि ने मूल भागवत को ही आधार बनाया है 'सूरसागर' को नहीं। 'सूरसागर' के कथा-विस्तार में अन्तर अवश्य है फिर भी 'सूरसागर' का भी मूल आधार भागवत ही है। इसीलिए 'सारावली' में कवि ने भागवतीय कथाओं को सार रूप में गिनाया है और उन्हीं के माध्यम से भक्ति का प्रतिपादन किया है। 'सूरसागर' में लीला का दृष्टिकोण इतना प्रधान था कि सैद्धान्तिक विवेचन संभव न था। कदाचित् सूरदासजी का भक्त-हृदय इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए व्यग्र हो उठा होगा और उन्होंने 'सारावली' की स्वतन्त्र रचना कर डाली। तत्त्व रूप में यह ग्रंथ सूरसागर का पूरक है इसीलिए 'सूरसागर' के सम्पादन के पश्चात् उन्होंने इसको 'सूरसागर' के आरम्भ में ही सम्मिलित करवा दिया। यह एक क्रमबद्ध सोद्देश्य रचना है इसका आरम्भ होली के रूपक में आध्यात्मिक प्रस्तावना से होता है, प्रभु की क्रीड़ा के रूप में सृष्टि-रचना और फिर अवतारों की क्रमबद्ध कथाओं की सूची और सिद्धान्त-निरूपण है। सारी 'सारावली' में एक ही पद है। पद के ८५६ चरणों तक भागवतीय कथा है। ८६० वें चरण से संवत्सर लीला आरम्भ हो जाती है। कृष्ण और रुक्मिणी के संवाद के प्रसंग से व्रज-लीला का वर्णन सर्वथा मौलिक है। प्रसंग इस

---

१. सूरसारावली, छन्द ११०३।
२. „ „ „ „ „ ११०५।
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २८४।

प्रकार है—कृष्ण रुक्मिणी से कहते हैं कि मुझे राधा के बिना एक पल भी अच्छा नहीं लगता। बलराम और उद्धव के साथ कृष्ण पुनः ब्रज में आते हैं और ब्रजलीला पुनः प्रारम्भ हो जाती है। पुष्टिमार्गीय सेवा के क्रम में जन्माष्टमी और राधाष्टमी से ही लीला प्रारम्भ होती है। बाल-लीला 'सारावली' में केवल एक चरण में समाप्त कर दी है, बात यह है कि बाल-लीला में कृष्ण का ईश्वरत्व-सूरसागर में ही वे प्रस्तुत कर चुके थे। 'सारावली' में तो दान-लीला, रास-रस-केलि, राधा-मान और राधा-कृष्ण-विहार-लीला विस्तार से उपस्थित की गयी है। मान-लीला और विहार-लीला में 'सूरसागर' और 'साहित्य-लहरी' की भाँति ही दृष्टकूट पदावली भी है। लीला-वर्णन के पश्चात् तत्व-कथन है—

> सुरत समुद्र कहत दम्पति के निरवधि रमन अपार।
> भयो शेष मगमूढ़ कहन को, राधा-कृष्ण विहार॥
> शोभा अमित अपार अखंडित, आप आतमाराम।
> पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, सबविधि पूरनकाम॥
> आदि सनातन एक अनूपम अविगत अल्पहार।
> ओंकार आदि वेद असुरहन, निर्गुनसगुन अपार॥'

इसीके साथ ही निकुंज में राधा-कृष्ण का स्वरूप निरूपण है। निकुंज-लीला में आनन्द स्वरूप कृष्ण और राधा का माहात्म्य निरूपण करते हुए सूरदासजी बताते हैं कि कृष्ण परम ब्रह्म हैं, जब वेद की ऋचाएँ उनका वर्णन करके थक गई और 'नेति' 'नेति' पुकार उठी तो प्रभु ने दर्शन दिया और कहा कि आगामी कल्प में तुम सब श्रुतियाँ गोपी बन कर अवतार लोगी और हम रास विहार के द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट करेंगे।'

ऋतु लीलाओं में वसन्त और होली का विस्तृत वर्णन है। ब्रज में होली एक मास होती है। पुष्टिमार्गीय होली के प्रतिदिन का विवरण 'सारावली' के १०५३ से १०८५ चरणों में मिलता है। होरी के अनन्तर पुन कवि तत्व निरूपण करते हुए लिखता है कि—वृन्दावन की राधा-कृष्ण-लीला शाश्वत है, राधा-कृष्ण सदा एकरस, अखंडित अनादि और अनूप रूप में कोटि कल्प तक विहार करते रहते हैं। यह होली तो जगत का खेल है, इस होली की अग्नि सकर्षण के मुख से निकली हुई अग्नि है।' अन्त में जिसे अविगत आदि पुरुष, अविनाशी, पूर्णब्रह्म, पुरुषोत्तम के द्वारा प्रस्तावना आरम्भ की थी उसीको पुन परिणाम रूप में प्रस्तुत करके ग्रन्थ की समाप्ति की गयी है—

> "सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल।
> प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंश गोपाल॥'

---

१. सूरसारावली, छन्द ६६१-६६३।
२. सूरसारावली, छन्द १००६ से १००८।
३. सूरसारावली, छन्द १०६६-११००।
४. सूरसारावली, छन्द ११०१।

मानते हुए अप्रामाणिक कह दिया । उनका मत है कि यदि 'सूरसागर' का सार कवि लिखता तो मूल ग्रन्थ से उसमें भिन्नता न होती ।

ग्रन्थ नाम के लिए कवि का अपना नामकरण यदि मिल जाय तो समस्या का समाधान हो जाता है। कवि द्वारा प्रस्तुत नामकरण प्राप्त भी है। ग्रंथ में अन्त में पंक्ति आती है—

ताको सारसूर सारावलि गावत अति आनन्द।[1]

यह पंक्ति ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थ-माहात्म्य के रूप में लिखित कृष्ण के वरदान से पहले आती है। अतः यह ग्रन्थ की अन्तिम पंक्ति है जिसमें कवि ने ग्रंथ का नाम 'सूर सारावली' या 'सारावली' कहा है। साथ ही कृष्ण वरदान वाले अंश में दुवारा ग्रंथ का नाम 'सूर सारावली' स्वयं कवि ने लिखा है—**"धरि जिय नेम सूर सारावलि उत्तर दक्खिन काल।"**[2] 'सूरसागर' के साथ 'सूर-सारावली' नाम बैठता भी है अतः 'सूर-सारावली' नाम ही समीचीन है। इससे 'सूरसागर' पर आधारित होने का भ्रम भी नहीं होता।

सूरसार-सागर और सवालाख पदों का सूचीपत्र

सूरसागर-सार—सारावली 'सूरसागर' से सर्वथा स्वतन्त्र रचना होते हुए भी डा० दीनदयालु गुप्त के शब्दों में 'सूरसागर' की एक प्रकार की भूमिका है।[3] क्योंकि इस ग्रंथ में सूरदासजी का लक्ष्य 'सूरसागर' में वर्णित लीलाओं का रहस्योद्घाटन है। इसकी रचना करते समय कवि ने 'श्रीमद्भागवत' का आधार लिया है। 'सूरसागर' में भागवत की समस्त कथाएँ नहीं आ सकी हैं, कुछ तो अति सूक्ष्म हैं और कुछ अति विस्तृत। 'सारावली' में इसीलिए कथाओं के लिए कवि ने मूल भागवत को ही आधार बनाया है 'सूरसागर' को नहीं। 'सूरसागर' के कथा-विस्तार में अन्तर अवश्य है फिर भी 'सूरसागर' का भी मूल आधार भागवत ही है। इसीलिए 'सारावली' में कवि ने भागवतीय कथाओं को सार रूप में गिनाया है और उन्हीं के माध्यम से भक्ति का प्रतिपादन किया है। 'सूरसागर' में लीला का दृष्टिकोण इतना प्रधान था कि सैद्धान्तिक विवेचन संभव न था। कदाचित् सूरदासजी का भक्त-हृदय इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए व्यग्र हो उठा होगा और उन्होंने 'सारावली' की स्वतन्त्र रचना कर डाली। तत्त्व रूप में यह ग्रंथ सूरसागर का पूरक है इसीलिए 'सूरसागर' के सम्पादन के पश्चात् उन्होंने इसको 'सूरसागर' के आरम्भ में ही सम्मिलित करवा दिया। यह एक क्रमवद्ध सोद्देश्य रचना है इसका आरम्भ होली के रूपक में आध्यात्मिक प्रस्तावना से होता है, प्रभु की क्रीड़ा के रूप में सृष्टि-रचना और फिर अवतारों की क्रमवद्ध कथाओं की सूची और सिद्धान्त-निरूपण है। सारी 'सारावली' में एक ही पद है। पद के ८५९ चरणों तक भागवतीय कथा है। ८६० वें चरण से संवत्सर लीला आरम्भ हो जाती है। कृष्ण और रुक्मिणी के संवाद के प्रसंग से व्रज-लीला का वर्णन सर्वथा मौलिक है। प्रसंग इस

---

१. सूरसारावली, छन्द ११०३।
२. " " " " "　११०५।
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २८४।

प्रकार है—कृष्ण रुक्मिणी से कहते हैं कि मुझे राधा के बिना एक पल भी अच्छा नहीं लगता। बलराम और उद्धव के साथ कृष्ण पुनः ब्रज में आते हैं और ब्रजलीला पुनः आरम्भ हो जाती है। पुष्टिमार्गीय सेवा के क्रम में जन्माष्टमी और राधाष्टमी से ही लीला प्रारम्भ होती है। बाल-लीला 'सारावली' में केवल एक चरण में समाप्त कर दी है, बात यह है कि बाल-लीला में कृष्ण का ईश्वरत्व-सूरसागर में ही वे प्रस्तुत कर चुके थे। 'सारावली' में तो दान-लीला, रास-रस-केलि, राधा-मान और राधा-कृष्ण-विहार-लीला विस्तार से उपस्थित की गयी हैं। मान-लीला और विहार-लीला में 'सूरसागर' और 'साहित्य-लहरी' की भाँति ही दृष्टकूट पदावली भी है। लीला-वर्णन के पश्चात् तत्त्व-कथन है—

सुरत समुद्र कहत दम्पति के निरवधि रमन अपार।
भये शेष मनमूढ़ कहन को, राधा-कृष्ण विहार॥
शोभा अमित अपार अखंडित, आप आतमाराम।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, सब विधि पूरनकाम॥
आदि सनातन एक अनूपम अविगत अल्पहार।
ओंकार आदि वेद असुरहन, निर्गुनसगुन अपार॥[1]

इसीके साथ ही निकुंज में राधा-कृष्ण का स्वरूप निरूपण है। निकुंज-लीला में आनन्द स्वरूप कृष्ण और राधा का माहात्म्य निरूपण करते हुए सूरदासजी बताते हैं कि कृष्ण परम ब्रह्म हैं, जब वेद की ऋचाएँ उनका वर्णन करके थक गईं और 'नेति' 'नेति' पुकार उठीं तो प्रभु ने दर्शन दिया और कहा कि आगामी कल्प में तुम सब श्रुतियाँ गोपी बन कर अवतार लोगी और हम रास विहार के द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट करेंगे।[2]

ऋतु लीलाओं में वसन्त और होली का विस्तृत वर्णन है। ब्रज में होली एक मास होती है। पुष्टिमार्गीय होली के प्रतिदिन का विवरण 'सारावली' के १०५३ से १०८५ चरणों में मिलता है। होरी के अनन्तर पुन कवि तत्त्व निरूपण करते हुए लिखता है कि—वृन्दावन की राधा-कृष्ण-लीला शाश्वत है, राधा-कृष्ण सदा एकरस, अखंडित अनादि और अनूप रूप में कोटि कल्प तक विहार करते रहते हैं। यह होली तो जगत का खेल है, इस होली की अग्नि समर्पण के मुख में निकली हुई अग्नि है।[3] अन्त में जिसे अविगत आदि पुरुष, अविनाशी, पूर्णब्रह्म, पुरुषोत्तम के द्वारा प्रस्तावना आरम्भ की थी उसीको पुनः परिणाम रूप में प्रस्तुत करके ग्रन्थ की समाप्ति की गयी है—

"सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंश गोपाल॥[4]

---

१. सूरसारावली, छन्द ६६१-६६३।
२. सूरसारावली, छन्द १००६ से १००८।
३. सूरसारावली, छन्द १०९६-११००।
४. सूरसारावली, छन्द ११०१।

तात्पर्य यह है कि 'सारावली' की कथावस्तु को देखते हुए यही सिद्ध होता है कि स्वतन्त्र होते हुए भी यह 'सूरसागर' से सम्बन्धित है। कथा-सूची ग्रंथ का साध्य नहीं साधन है। इसमें कवि ने 'श्रीमद्‌भागवत' का आलम्बन इसलिए लिया कि 'सूरसागर' में सभी कथाएँ प्राप्त नहीं हैं। जिस लक्ष्य के लिए 'सारावली' प्रधानतया लिखी गयी है वह है अन्तिम संवत्सर लीला—दान-मान, रास, रसकेलि और विहार का सिद्धान्त-निरूपण। यही लीलाएँ 'सूरसागर' की आत्मा और सूरदासजी की निजी-वस्तु हैं। भागवत में न ये लीलाएँ हैं और न राधा का ही उल्लेख है। डा० वर्मा ने ग्रन्थ के इस महत्त्वपूर्ण अंश पर सम्यक् दृष्टि अपने प्रबन्ध में नहीं डाली है नहीं तो वे इसके रचयिता को 'सूरसागर' के रचयिता से इतर व्यक्ति न मानते। सूरदास जैसा महाकवि और 'पुष्टिमार्ग का जहाज' ही होरी के गान के माध्यम से सूरसागर की अविज्ञात लीलाओं का ऐसा रसपूर्ण विवेचन कर सकता है। सारांश यह है कि इस ग्रंथ में सूरसागर की लीलाओं का सिद्धान्त ही सार रूप में प्रस्तुत किया गया है, इसीलिए स्वतन्त्र ग्रन्थ होते हुये भी इसे 'सूरसागर-सार' कहा गया है।

'सवालाख पदों का सूचीपत्र' सम्पादकों के द्वारा इसलिए कहा गया है कि इसमें 'सूरसागर' तथा 'श्रीमद्‌भागवत' में प्राप्त कथाओं की पूर्ण सूची मिलती है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक था कि सिद्धान्त-निरूपण के पूर्व वस्तु का उल्लेख आवश्यक होता है। फिर भागवत एक धर्म-ग्रंथ है। भागवत का पाठ और श्रवण भक्तों और सांसारिक जनों में मनवाँछित फल की प्राप्ति के हेतु अत्यन्त प्रचलित रहा है। भागवत का हिन्दी अनुवाद तो सूरदासजी ने प्रस्तुत नहीं किया, 'सूरसागर' में लीला-भेद से कथा गायी गयी है अतः मूल रामायण की भाँति 'सूर सारावली' में सूरदासजी ने भागवत का कथा-सार सर्वसाधारण के लिए सुलभ कर दिया। उनकी यह मनोवृत्ति सारावली के अन्तिम माहात्म्य में परिलक्षित होती है—

धरि जिय नेम सूर-सारावलि, उत्तर दक्षिण काल।
मनवाँछित फल सबही पावै, मिटै जन्म जंजाल ॥११०५॥
सीखै सुनै पढ़ै मन राखै, लिखै परम चित लाय।
ताके संग रहत हौं निसदिन, आनन्द जन्म बिहाय ॥११०६॥
सरस संवत्सर लीला गावै, जुगल चरण चित लावै।
गर्भ वास बन्दीखाने में, सूर बहुरि नहिं आवै ॥११०७॥

२. प्रामाणिकता

सूरसारावली की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे विद्वानों के तीन वर्ग हैं—

१. प्रामाणिक मानने वाले अधिकांश विद्वान् इसी वर्ग में आते है। इनमे प्रमुख हैं सूर-साहित्य पर विशेष अध्ययन करने वाले डॉ० जनार्दन मिश्र, डॉ० मुंशीराम शर्मा, डॉ० दीनदयालु गुप्त, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री द्वारकादास पारीख व श्री प्रभुदयाल मीतल और डॉ० हरवंशलाल शर्मा।

२. सदिग्ध मानने वाले—मिश्रबन्धु और डॉ० रामरतन भटनागर।

३. अप्रामाणिक मानने वाले—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा और डॉ० प्रेमनारायण टंडन।

संदिग्ध मानने वालों के कथन इस प्रकार है—

मिश्रबन्धु—" 'सूर सारावली' मे 'सूरसागर' की सूची सी है। इसमे ११०७ पद हैं, परन्तु मूल ग्रन्थ में एक ही छन्द होने के कारण इसे पढ़ना उतना रुचिकर नही है जितना महाकवि के अन्य ग्रन्थों को। अत यह सदिग्ध दिखता है।"[1]

डॉ० रामरतन भटनागर—"इसमे 'सूरत्व' का कुछ भी अश नही आ पाया है और इसलिए यह उचित ही होगा कि हम उसे अप्रामाणिक नही तो सदिग्ध रचना अवश्य माने। सूर के काव्य और व्यक्तित्व के आगे यह रचना स्वतः छोटी पड़ जाती है।"[2]

उपर्युक्त दोनों कथनो का आधार यह है कि 'सारावली मे वैसा छन्द-वैविध्य और काव्य-रस प्राप्त नही होता जैसा 'सूरसागर' मे। किन्तु समस्त 'सूरसागर' मे समान रूप से काव्य-सौष्ठव प्राप्त नही होता। दशम स्कन्ध पूर्वार्ध को छोड़कर अन्य स्कन्धों में रसात्मकता और काव्य-सौन्दर्य के दर्शन नही होते। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों मे यह कहना उचित ही है कि 'सागर में सर्वत्र मोती और रत्न नही है, शंख-घोंघे और सीपियाँ भी हैं।' अतः 'सूरत्व' या 'कम रुचिकर' तर्क ग्रन्थ को संदिग्ध नहीं कह सकते। 'सूरसागर' मे ऐसे अनेक स्थल हैं जो 'सारावली' से भी अधिक नीरस अरुचिकर और बोझिल हैं।

अप्रामाणिक मानने वाले प्रथम विद्वान है डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा। उन्होने 'सूरसागर' और 'सारावली' का तुलनात्मक अध्ययन किया और दोनों मे २८ अन्तर प्रस्तुत किये। उनके तर्क निम्नलिखित हैं—

---

१. हिन्दी नवरत्न, पृ० १७३।
२. सूर-समीक्षा, पृ० ५५।

१. 'सारावली' की कथावस्तु एक विशिष्ट प्रस्तावना से आरम्भ होती है, जिसमें प्रकृति-पुरुष-रूप पुरुषोत्तम परब्रह्म के सृष्टि-विस्तार के बहाने होली खेलने का उल्लेख किया गया है। होली खेलने और 'फगुवा' देने की कल्पना अन्त तक बार-बार दुहराई जाती है। अतः 'सारावली' वास्तव में पूर्ण ब्रह्म की होली खेलने का वर्णन करती है। 'सूरसागर' में भी यत्र-तत्र 'भागवत' के अनुसार सृष्टि-रचना की कथा देने का यत्न किया गया है, यद्यपि कदाचित् इस विषय में कवि की अरुचि होने के कारण उसका प्रयत्न असफल ही कहा जायगा परन्तु 'सूरसागर' के कवि ने न तो ग्रन्थ के आरम्भ में इस प्रकार की प्रस्तावना दी और न ग्रन्थ में किसी दूसरे स्थान पर ही—होली और फाग के वर्णन में भी—सृष्टि-रचना के लिए होली की कल्पना की है। अतः 'सारावली' के वर्ण्य-विषय की रूप-कल्पना ही विलक्षण और 'सूरसागर' से भिन्न है।

२. 'सारावली' के कवि ने उसकी वस्तु को दो पृथक् भागों में बाँटा है, यद्यपि इस विभाजन का स्पष्ट संकेत नहीं किया गया। पहले भाग में 'भागवत' के अनुसार सृष्टि-रचना और उसके विस्तार के क्रम में भगवान के अवतारों की कथा है और दूसरे भाग में कृष्ण की उन लीलाओं का वर्णन किया गया है जो 'सूरसागर' में तो वर्णित हैं पर 'भागवत' में नहीं। 'सूरसागर' में कथावस्तु का इस प्रकार का विभाजन नहीं किया गया।

३. अवतारों की कथा दोनों रचनाओं में साधारणतया 'भागवत' का अनुसरण करती है, परन्तु 'सारावली' में राम और कृष्ण की कथा को छोड़कर शेष कथाओं के लिए विशेष रूप से 'भागवत' के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय का अवलम्ब लिया है, 'सूरसागर' का नहीं। कदाचित् 'सूरसागर' में बिखरी हुई अस्पष्ट रूप से वर्णित कथाओं की अपेक्षा समस्त अवतारों के एक स्थान पर दिये हुए विवरण का अनुसरण अधिक सुविधाजनक था। पर इसका फल यह हुआ है कि उन अवतारों का भी उल्लेख 'सारावली' में पहले आ गया है, जिनका वर्णन 'सूरसागर' के ग्यारहवें और बारहवें स्कन्धों में हुआ है तथा विभु, विष्वक्सेन, धर्म-सेतु, शेष, सुधर्म योगीश्वर, बृहद्भानु आदि अवतारों का उल्लेख आ गया है, जिनका 'सूरसागर' में नाम भी नहीं लिया गया। साथ ही, मूल रचना की अपेक्षा इसी का सार कही जाने वाली रचना से इन कथाओं को अधिक सरलता से समझा जा सकता है।

४. 'सारावली' में रामावतार की कथा का जैसा सांगोपांग, व्यवस्थित और सम्पूर्ण वर्णन मिलता है, वैसा 'सूरसागर' में नहीं। 'सूरसागर' के कवि ने तो केवल रामावतार की कथा से सम्बन्धित प्रधानतया भावपूर्ण और मार्मिक स्थलों पर स्फुट पद-रचना की है, जिन्हें कथा का क्रम देकर पूर्ण कथा की एक अधूरी रूपरेखा कठिनता से बनाई जा सकती है। साथ ही जिन स्थलों पर 'सूरसागर' के कवि ने विशेष ध्यान दिया है, यह आवश्यक नहीं है कि 'सारावली' में उन पर तनिक भी बल दिया गया हो। 'सारावली' में 'रामावतार' की कथा को कृष्णावतार के समकक्ष एक निश्चित रूप देने का उपक्रम किया गया है, जो 'सूरसागर' ही नहीं 'भागवत' के नवम स्कन्ध की राम-कथा की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत है।

५. दोनों रचनाओं में कृष्णावतार की कथा के सम्बन्ध में अनेक अन्तर हैं। 'सारावली' में कंस की समस्या को आरम्भ से अन्त तक जितनी प्रधानता दी गयी है, उतनी 'सूरसागर' में नहीं। 'सूरसागर' में कंस के द्वारा भेजे हुए राक्षसों के उत्पात कृष्ण की शिशु-क्रीडाओं में प्रायः आकस्मिक विघ्नों के रूप में वर्णित हैं, जबकि 'सारावली' में कृष्ण की उद्धार और संहार-लीला को महत्त्व देने के लिए कंस के व्यक्तित्व को भी अधिक प्रकाश में लाया गया है।

६. 'सूरसागर' के ढाढी-प्रसंग के सम्बन्ध में कहा जा चुका है कि उसमें सूरदास की अपने उपास्य के प्रति व्यक्तिगत भक्ति-भावना विशुद्ध रूप से प्रकट हुई है। परन्तु 'सूरसागर' के ढाढी की कृष्ण-दर्शन-याचना का 'सारावली' में उल्लेख भी नहीं है तथा इसी प्रसंग में उपनन्द, धरानन्द, ध्रुवनन्द, गुरसुरानन्द और धर्मकर्मानन्द के ढाढी को व्रजरानी के ढाढिन को दान देने की बात 'सूरसारावली' की मौलिक उद्भावना है। 'सूरसागर' में उपनन्द का तो अन्य प्रसंगों में उल्लेख भी है, अन्य नन्दों का तो कहीं नाम भी नहीं मिलता।

७. 'सारावली' में नन्द को जो गौरव प्रदान किया गया है, वह 'सूरसागर' में वर्णित उनके ग्रामीण गौरव से भिन्न है। 'सारावली' के नन्द अपने पुत्र के लिए नाना विधि रत्नों के बहुमूल्य खिलौने लेने मथुरा जाते हैं। इसी बीच में पूतना आ जाती है। पूतना के उत्पात का समाचार पाकर नन्द तुरन्त लौट आते हैं। विप्र को बुलाकर वेद-ध्वनि, आरती, मंगलगान आदि के द्वारा अनिष्ट-प्रभाव दूर किया जाता है। एक दिन कृष्ण के करवट लेने पर भी ये ही उपचार होते हैं। 'सूरसागर' में इन्द्र-पूजा और तदनन्तर गोवर्धन-पूजा के विस्तृत विवरणों में भी इस शास्त्रीय पूजोपचार और नन्द की सेवा में विप्रों के पौरोहित्य की योजना नहीं है।

८. पूतना के आयासहीन प्रसंग-प्राप्त जैसे वध का उल्लेख करके 'सूरसागर' का कवि व्रजनारियों और यशोदा की भावनाओं के चित्रण में लीन हो जाता है, परन्तु इसके विपरीत 'सारावली' ग्वाल-बालों के द्वारा पूतना के काष्ठतन को फूँकने का उल्लेख करके अपनी आधारभूत होली की कल्पना में सबसे प्रथम लोक-प्रचलित होली सम्बन्धी प्रवाद की ओर भी संकेत कर देता है।

९. 'सूरसागर' में बलराम के जन्म का स्पष्ट उल्लेख तक नहीं आता, परन्तु 'सारावली' में उनके जन्म, जन्म तिथि, शेषावतारी होकर वर्ष दिवस पहले ही महा-वपु धारण करके प्रकट होने आदि के विवरण दिए गए हैं।

१०. कृष्ण-बलराम के नामकरण संस्कार के विवरणों में पुनः 'सारावली' का कवि नन्द-नगर-गौरव का चित्रण करता है। साथ ही यह भी बताता है कि गर्गमुनि को वसुदेव ने ही इस कार्य के लिए नन्द-धाम भेजा था। 'सूरसागर' के नामकरण का प्रसंग इसके भिन्न रूप में है।

११. कृष्ण के चन्द्रमा के लिए हठ करने का प्रसंग 'सूरसागर' में भावविदग्धता और सरलता से परिपूर्ण मिलता है, पर इसमें 'सारावली' में

'बूढ़े बाबू' के कृष्ण-दर्शन के लिए आने और लालमणि देकर उन्हें मना लेने का कोई उल्लेख नहीं है।

१२. 'सारावली' में माखनचोरी, कालियदमन, रास, गोवर्धनधारण आदि लीलाओं का 'सूरसागर' की उक्त लीलाओं का संक्षेप सानुपातिक दृष्टि से अत्यन्त संक्षेप में तो है ही, साथ ही उनके क्रम में भी विभिन्नता है।

१३. 'सूरसागर' में ब्रज की लीलाओं का विस्तार और मथुरादि इतर लीलाओं का अत्यन्त संक्षेप है, परन्तु 'सारावली' में केवल कंस-वध का ही 'सूरसागर' की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तार है। 'सारावली' में कंस-वध की तिथि, वार, नक्षत्र आदि के विवरण दिए गए हैं तथा कंस के केश पकड़ कर यमुना तक घसीटने का वर्णन किया गया है। इस सम्बन्ध में नारद का ब्रज जाकर मधुर बीन बजाने का उल्लेख भी 'सारावली' की कल्पना है।

१४. 'सूरसागर' में कृष्ण के मथुरागमन और तज्जन्य ब्रजवासियों की वियोग-व्यथा के नाना विधि मार्मिक चित्र मिलते हैं, परन्तु 'सारावली' का कवि ब्रजवासियों के भाव-लोक की ओर झांकता तक नहीं।

१५. इसी प्रकार 'सारावली' के नन्द आदि गोप कृष्ण से विदा होकर मथुरा से चुपचाप चले आते हैं। कृष्ण भी उन्हें हिलमिल कर प्रसन्नता-पूर्वक विदा करते हैं। 'सारावली' के कवि की हृदय-हीनता 'सूरसागर' के पाठक सहज ही देख सकते हैं।

१६. 'सूरसागर' के केवल छोटे से पद में कृष्ण के विद्याध्ययन और गुरु-दक्षिणा देने का प्रसंग-पूर्त्यर्थ उल्लेख मात्र किया गया है, परन्तु 'सारावली' में उनके राजनीति पढ़ने, गुरु-सेवा करने तथा गुरु-दक्षिणा चुकाने के लिए यमपुर जाकर गुरु के मृत पुत्रों को लाने के विस्तृत उल्लेख हैं।

१७. 'सूरसागर' में श्रीकृष्ण का अक्रूर-गृह-गमन का उल्लेख भ्रमरगीत के बाद आया है, परन्तु 'सारावली' में उसके पहले ही।

१८. 'सूरसागर' के कृष्ण ने भी 'सारावली' की भाँति उद्धव को इसी उद्देश्य से ब्रज भेजा था कि वे वहाँ जाकर गोपियों की प्रेम-भक्ति का महत्व समझें, किन्तु उन्होंने यह उद्देश्य उद्धव को बताया नहीं। 'सारावली' में 'सूरसागर' के इस प्रसंग के गूढ़ व्यंग्य को न समझ कर कृष्ण द्वारा उनके उद्देश्य का स्पष्टीकरण करा दिया। वस्तुतः उद्धव को ब्रज भेजने, उनके ब्रज पहुँचने, नन्द के यहाँ उनके आदर-सत्कार, भोजन-शयन और गोपी-उद्धव संवाद-भ्रमरगीत का सम्पूर्ण प्रकरण 'सारावली' में 'सूर-सागर' से भिन्न रूप ग्रहण किया गया है। दोनों रचनाओं का यह अन्तर अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

१९. दशमस्कन्ध उत्तरार्ध की कथा, हम पीछे देख चुके हैं, 'सूरसागर' में अत्यन्त गौण और कथा-पूर्त्यर्थ के रूप में वर्णित है। इसीलिए उसमें प्रेम-भक्ति प्रकाशन के अवसरों को छोड़कर शिथिलता, अस्पष्टता और अरोचकता है। परन्तु 'सारा-वली' में यह कथा-खण्ड अपेक्षाकृत अधिक सुगठित और क्रम व्यवस्थित है। 'सारावली'

का कवि उसके प्रति तनिक भी उदासीनता दिखाता नहीं जान पड़ता, बल्कि ब्रज लीला के अनेक सरस प्रसंगों से अधिक तन्मयता के साथ उनका वर्णन करता है।

२०. उद्धव के साथ बल-मोहन का मथुरा से ब्रज लौटना और गोपियों की चरण-रज के रसभीने गुल्म में वास देना वर्णित करके 'सारावली' ने अपनी अद्भुत एवं स्वतंत्र उद्भावना प्रदर्शित की है। 'सूरसागर' में गोपी-कृष्ण और राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग कृष्ण कथा के सर्वाधिक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण अंश हैं, किन्तु 'सारावली' में उन्हें पृथक् करके प्रधान कृष्ण-कथा के प्रासंगिक अंश के रूप में उपस्थित किया गया है।

२१. कृष्ण के प्रति गोपियों की माधुर्य-भक्ति के विकास में दानलीला का एक विशिष्ट स्थान है। इस लीला में 'सूरसागर' की अनन्य भावयुक्त गोपियाँ कृष्ण के ब्रह्मत्व और गौरव का स्पष्ट प्रत्याख्यान करती हुई दिखाई गई हैं। इसके विपरीत, 'सारावली' की दानलीला में कृष्ण के ब्रह्मत्व का प्रयत्नपूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

२२. राधा-कृष्ण की रस-केलि के बीच-बीच राधा और गोपियों के प्रेम-विषयक विवाद-उपालंभ के स्थान पर 'सारावली' में यशोदा द्वारा कृष्ण की भोजन आदि की परिचर्या के वर्णन दिये गए हैं जो 'सूरसागर' से भिन्न एवं माधुर्य-भक्ति और शृंगारिक वातावरण में सर्वथा असंगत हैं।

२३. राधा-कृष्ण के सुरति-वर्णन में 'सारावली' में 'सूरसागर' के ग्रामीण वातावरण के स्थान पर रस-केलि-विलासी राधा-कृष्ण की ललिता द्वारा परिचर्या, विभिन्न रागों का गायन, कपूर मिलाकर गर्म दूध पिलाना, जालरंध्र से सखियों का देखना आदि वर्णन करके एक सम्पन्न गौरवशाली नागरिक वातावरण की रचना की गई है। साथ ही, कृष्ण के ब्रह्मत्व-परक विशेषण एवं तत्सम्बन्धी व्याख्याएं भी 'सारावली' की अपनी विशेषताएं हैं।

२४ फाग और होली का वर्णन 'सारावली' में सूरसागर' से भिन्न है। इस सम्बन्ध में यशोदा का योग विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

२५. वृन्दावन- धाम की क्रीड़ा का वेद से लेकर 'भागवत' तक का इतिहास देकर 'सारावली' के कवि ने वेद-शास्त्र के प्रति अपनी निष्ठा घोषित की है। 'सूरसागर' में इस प्रकार का वर्णन और विचार कहीं नहीं मिलता।

२६ 'सारावली' में राधा के कृष्ण को मथुरा जाने से रोकने और संकर्षण के मुख की अग्नि से सकल ब्रह्माण्ड के होली की तरह जलने का वर्णन है। पर इन बातों का 'सूरसागर' में संकेत भी नहीं है।

२७. इसमें सन्देह नहीं कि सूरदास श्रीवल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में थे। अतः उनकी रचनाओं में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की व्यावहारिक व्याख्या मिलनी चाहिए। 'सूरसागर' में भी, जैसा कि आगामी अध्यायों में विवेचन किया गया है, सैद्धान्तिक बातों का प्रचुर मात्रा में विशदीकरण मिलता है। परन्तु 'सूरसागर' के कवि का जो व्यक्तिगत दृष्टिकोण है, वह 'सारावली' से भिन्न है। 'सारावली' में प्रत्यक्ष रूप से सैद्धान्तिक व्याख्या के साथ घटनाओं का शास्त्रीय प्रमाणों से, सिद्धान्तों की पुष्टि के

अनुकूल विशदीकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त राम और कृष्ण के प्रति दोनों के दृष्टिकोणों में महान् अन्तर है, कृष्ण के व्यक्तित्व के जिन गुणों के प्रति 'सूरसागर' में उपेक्षा प्रदर्शित की गयी है, उन्हीं को 'सारावली' में महत्त्व दिया गया है, तथा उन गुणों के उचित मूल्यांकन में 'सारावली' का कवि असफल सा दिखाई देता है, जिनको 'सूरसागर' में सर्वाधिक महत्त्व दिया है। संक्षेप में, जहाँ 'सूरसागर' में नन्दनन्दन, गोपाल, गोपी-वल्लभ, राधा-वल्लभ-कृष्ण का गुणगान है, वहाँ 'सारावली' में असुर-संहारक, भक्त-उद्धारक, महाराज द्वारिकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र के यश-विस्तार की कथा है। अन्य चरित्रों पर भी इस विभिन्न दृष्टिकोण का अनिवार्य प्रभाव पड़ा है। विप्र, वेद, शास्त्र आदि के विषय में 'सारावली' के कवि का दृष्टिकोण 'सूरसागर' से सर्वथा भिन्न है।

२८. 'सूरसागर' के रचयिता सूरदास अपने विषय में इतने मुखर और आत्म-विज्ञापक कहीं नहीं हुए जितना 'सूरसागर-सारावली' का कवि दिखाई देता है। वह बहुत दिनों तक अपने 'शिव-विधान-तप' करके असफल होने तथा कर्म-योग, ज्ञान और उपासना के भ्रम में भटकने का ही उल्लेख नहीं करता, वरन् यह भी करता है कि उसे 'सरसठ वर्ष प्रवीन' में गुरु के प्रसाद से परब्रह्म की उस लीला का दर्शन हुआ जो वे राधा-कृष्ण के रूप में वृन्दावन के निकुञ्जों में करते हैं। यही नहीं, वह 'एक लक्ष' पदों की रचना की भी घोषणा कर देता है तथा 'श्रीनाथ के वरदान' के रूप में वह स्व-रचित 'सारावली' का महात्म्य बता कर उसे मुक्ति का सरल उपाय घोषित करता है।

डा० वर्मा की उपरिलिखित शंकाओं के क्रमशः समाधान इस प्रकार हैं—

१. 'सारावली' में होली की कल्पना विलक्षण नहीं है। सूरदास जी रूपक लिखने में सिद्धहस्त थे। 'सूरसागर' में सुन्दर रूपकों की रचना की है।[1] होली से तात्पर्य उन्होंने प्रभु का खेल माना है जिसमें सृष्टि रचना और अवतार-लीला दोनों ही आ जाती हैं। प्रथम पंक्ति (टेक) में स्पष्ट कथन है 'खेलत यहि विधि हरि होरी हो-होरी हो वेद विदित यह बात।' अनेक बार इस पंक्ति को कवि दुहराता गया है। फिर यह कल्पना न तो नयी है और न विलक्षण क्योंकि 'सूरसागर' के वसन्त लीला प्रकरण से पूर्व इसी प्रकार कथन प्राप्त हो जाता है।

नित्य धाम वृन्दावन स्याम। नित्य रूप राधा व्रज-वाम।
नित्य रास जल नित्य विहार। नित्य मान खंडिता अभिसार॥
ब्रह्म रूप येई करतार। करन हरन त्रिभुवन येई सार॥
नित्य कुंज-सुख नित्य हिंडोर। नित्यहि त्रिविध समीर झकोर।
सदा वसन्त रहत जहँ पास। सदा हर्ष जहँ नहीं उदास।
कोकिल कीर सदा तहँ रोर। सदा रूप मन्मथ चित चोर।

---

१. देखिए 'सूर की काव्य कला', द्वितीय संस्करण पृ० १६७

विविध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमत अपार॥
नवपल्लव बन सोभा एक। विहरत हरि संग सखी अनेक॥'[1]

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने राजाराम के दरबार में विनयपत्रिका प्रस्तुत करने का बड़ा रूपक समस्त ग्रंथ में प्रस्तुत किया है उसी प्रकार सूरदास जी ने होली-रूपक के रूप में समग्र-ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। इसमें विलक्षणता कैसी ?

२. 'सारावली' में कवि का मन्तव्य हरि-लीला का प्रतिपादन था। 'भागवत' सूर-साहित्य का आधार ग्रंथ है अतः सृष्टि रचना तथा अवतार लीलाओं को भागवतानुसार कहने के उपरांत उन्होंने उन लीलाओं को भी ले लिया है जो सूरदासजी की निजी उद्‌भावनाएं थीं जैसे दान लीला, मान-लीला और राधा-कृष्ण विहार। 'सूर सारावली' में कथावस्तु का कोई विभाजन नहीं है। श्री प्रभुदयाल जी ने अपनी निजी सूझ-बूझ से उसमें एक विभाजन कर दिया है। 'सारावली' के आदि या अन्त में इस प्रकार के विभाजन का संकेत भी नहीं है। 'सूरसागर' और 'सारावली' में मुख्य भेद यही है कि 'सागर' में लीला-गान है उसमें प्रभु की लीला का व्याख्यान नहीं है कहीं-कहीं संकेत मात्र है किन्तु 'सारावली' में हरि-लीला के साथ ईश्वरत्व का प्रतिपादन है।

३. भागवत ही सूरदास जी का मुख्य आधार ग्रन्थ है। दशम स्कंध पूर्वार्ध में सूरदासजी ने कतिपय लीलाओं को मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। भागवतीय प्रसंग यहाँ भी उसी प्रकार हैं। शेष स्कंधों में 'सूरसागर' भागवत के अनुसार ही है। इतना अवश्य है कि उसमें अनेक विवरण छूट गये हैं। 'सारावली' में भी भागवत का अविकल भावानुवाद नहीं है। 'सारावली' में हरि-लीला-क्रम में सृष्टि-रचना और अवतार-लीला को प्रस्तुत किया गया है। कवि कृष्णावतार को प्रमुखता देना चाहता था इसलिए अन्य सभी अवतारों के वर्णन के उपरान्त अन्त में कृष्णावतार को लिया गया है। इस प्रकार क्रम भागवत से नहीं मिलता। 'सूरसागर' में विवरण पूरे नहीं थे अतः 'सूरसागर' का अनुसरण करने की आवश्यकता कवि को नहीं थी। 'सारावली' में 'विभु, विष्वक्सेन, सेंद, वृहद्‌भानु आदि ऐसे अवतार भी हैं जिनका उल्लेख भागवत में नहीं मिलता कारण यह है कि सूर-काल तक जिन-जिन अवतारों की चर्चा लोक में थी उन सबका उल्लेख 'सारावली' में हुआ है। सूरदासजी ने 'सारावली' में न तो भागवत का और न 'सूरसागर' का अविकल अनुवाद किया है। नये दृष्टिकोण से नई रचना प्रस्तुत करने के कारण उन्हें वैसा करना आवश्यक भी नहीं था।

४ 'सारावली' की रचना 'सूरसागर' के उपरान्त हुई। सूरदासजी ने बाल-कृष्ण का जो विस्तृत वर्णन किया था उसी का प्रभाव 'सारावली' के राम-बाल-वर्णन में मिलता है। भागवत और 'सूरसागर' में रामकथा का ढाँचा मात्र है। 'सारावली' में कवि ने वाल्मीकि का मुख्य आधार लिया था[2] साथ ही सूर-काल तक राम-कथा का

---

१. सूरसागर, पद २४६१

२. वालमीकि मुनि कही कृपा करि, कछु एक 'सूर' जो गाई, पद १६२।

जो विकास हुआ था उसका भी प्रभाव उन पर लक्षित होता है। अतः 'सूर सारावली' की राम-कथा का 'सूरसागर' से अधिक विस्तृत हो जाना स्वाभाविक ही है।

५-२७. 'सूरसागर' के दशमस्कंध पूर्वार्ध में वर्णित कृष्णलीलाओं की तुलना 'सारावली' के साथ करते हुए डॉ० वर्मा ने दो प्रकार के प्रमुख अन्तर प्रस्तुत किये हैं—दृष्टिकोण सम्बन्धी और विवरण सम्बन्धी। डॉ० वर्मा के तर्क संख्या ५, २१, २३, २५, २६, २७ दृष्टिकोण-सम्बन्धी तथा अन्य विवरण-सम्बन्धी हैं। यह बात ठीक ही है कि 'सारावली' में 'सूरसागर' की अपेक्षा किंचित दृष्टिकोण-भेद है। 'सूरसागर' के पूर्वार्ध में लीला-भाव प्रमुख और ईश्वरत्व पर संकेत गौण है। 'सूरसागर' में कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन हो ही नहीं ऐसी बात नहीं है वहाँ भी ऐसी अनेक पंक्तियाँ प्रत्येक लीला में मिलती हैं। किन्तु 'सारावली' तो ईश्वरत्व के प्रतिपादन में मुख्य रूप से लिखी गयी थी इसमें कृष्ण की उद्धार-लीला और असुर-संहार-लीला को ही प्रकाश में लाया गया है। इसीलिए 'सारावली' में 'सूरसागर' जैसे मार्मिक और रसात्मक प्रसंग नहीं मिलते। उसमें भागवत की भाँति कृष्ण परब्रह्म के अवतारी, असुर-संहारक और भक्त उद्धारक हैं। इसीलिए इसमें वेद, शास्त्र और विप्र आदि के सम्बन्ध में बड़ी श्रद्धा प्रस्तुत की गई है। 'सारावली' के आरम्भ में ही प्रभु के नित्य-विहार और उनकी माधुर्यलीला का सैद्धान्तिक संकेत प्रस्तुत किया गया है।[1] इसीलिए आगे चल कर दानलीला, मानलीला तथा रस-केलि में राधावल्लभीय दृष्टिकोण प्रस्तुत है। जिस मधुरा भक्ति को महाप्रभु विट्ठलनाथ ने पुष्टिमार्ग में प्रतिष्ठा दी उसी का प्रभाव 'सारावली' के उत्तरार्ध में मिलता है। अतः 'सूरसागर' से 'सारावली' में कुछ दृष्टि-कोण-भेद हो जाना स्वाभाविक ही है।

विवरण सम्बन्धी अन्तरों का कारण यह है कि 'सारावली' वैसी काव्यात्मक कृति नहीं है जैसी 'सूरसागर'। इसमें मार्मिक प्रकरणों पर कवि की दृष्टि ही नहीं है। कवि ने तो कथाओं की सूची मात्र देकर अपने ईश्वरत्व-प्रतिपादन को अग्रसर किया है अतः इस ग्रन्थ में मार्मिक प्रसंगों को खोजना और गौण विवरणों का भेद खोजना अनावश्यक है। विवरण-भेद का एक कारण यह भी है कि 'सूरसागर' में भागवतीय विवरणों को उतना महत्त्व नहीं दिया गया है जितना कि 'सूरसारावली' में। भागवत सूर-साहित्य का मूल आधार है, 'सारावली' का दृष्टिकोण भी भागवत से मिलता है क्योंकि वहाँ भी कृष्ण-की प्रभु-लीला को ही प्राथमिकता दी गयी है। डॉ० वर्मा ने 'सारावली' के विवरणों को भागवत के साथ नहीं देखा इसीलिए उन्हें भ्रम हो गया कि 'सारावली' 'सूरसागर' से भिन्न है। डॉ० वर्मा के विवरण सम्बन्धी अन्तरों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

तर्क सं० ६ सूरसागर के ढाढ़ी प्रसंग में उपनन्द, धरानन्द, ध्रुवनन्द, सुरसुरानन्द आदि भागवत के अनुसार हैं। साथ ही पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी-संपादित

---

१. अविगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी॥ छन्द १

'सूरसागर' के एक पद में इन सबका उल्लेख मिलता है।[1]

७. 'सारावली' में नन्द को अभूतपूर्व गौरव नहीं प्रदान किया है। 'सूरसागर' में भी नन्द का गौरव सांकेतिक रूप में प्रस्तुत है।[2] भागवत में नन्द जी मथुरा कर देने जाते हैं और वहां पूतना के उत्पात को सुनकर भागे हुए गोकुल लौटते हैं। 'सारावली' में खिलौना खरीदने का उल्लेख हो गया है जो कथा में रोचकता बढ़ाने वाला और प्रसंगानुकूल है।

८. पूतना के काष्ठ-शव के फूंके जाने का उल्लेख भागवत के अनुसार है।

९-१०. 'सूर सारावली' में बलराम को चौबीस अवतारों में एक अवतार माना है। 'सारावली' में अवतार-लीला का मर्म प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया गया है। स्वाभाविक है कि ऐसी अवस्था में बलराम सम्बन्धी सभी विवरण विशेष हैं। 'सूरसागर' में बलराम एक साधारण ग्वाल बाल के रूप में चित्रित हैं। इसीलिए 'सारावली' में बलराम के जन्म और नामकरण आदि के अवसर प्रस्तुत हैं और उन्हें शेषावतार कहा गया है।

११. 'सूर सारावली' में बूढ़े बाबू के रूप में भगवान शंकर का आना दिखाया गया है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'सूरसागर' में 'बूढ़े बाबू' का उल्लेख न पाकर डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा को शंका हो गयी थी किन्तु पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी संपादित 'सूरसागर' में 'बूढ़े बाबू' वाला पद प्राप्त है।[3]

---

१. ढाँड़ी प्रेम मगन ह्वै नाचै।
महानन्द सुरसुरानन्द सो नन्दनन्द सुख जोगै।
परानन्द अवनन्द औ उपनन्द महा उपकारी।
अभिनन्दन औ नन्दराइ जू घर ऐसी महतारी ॥ सू०सा० (ज.च.) भाग १ पृ० ६८।

२. हौं इक नई चाह एक पाई।
बाजत पनव निसान पंचविधि रुंज मुरज सहनाई।
महर महरि ब्रज हाट लुटावत आनन्द उर न समाई। सू०सा० (ना.प्र.स.) पद सं० ६४०
दै दान मान परिधान पूरन काम किये।
बंदीजन मागध सूत आंगन भौन भरे।
जिन जो जाँच्यो सोइ दीन अस नंदराइ ढरे।
पुर घर घर भेरि मृदंग पटह निसान बजे।
बरवारनि बंदनवार कंचन कलस सजे ॥ सूरसागर पद (ना०प्र०स०) सं० ६४२

३. कहाँ गये जोगी नन्द भवन ते ब्रज में फिरि-फिरि हारे।
या जोगिया को ढूँढ निकासो, सुत को ताप निवारे।
चलिए जोगी नंद भवन में, जसुमति मातु बुलावें।
लटकत लटकत शंकर आये, मन में मोद बढ़ावें।
तुम सो जोगी परम मनोहर तुमको वेद बखाने।
'बूढ़ो बाबू' नाम हमारो सूर-स्याम मोहि जाने ॥ सू०सा० भाग १ (ज.च.) पृ० १६०

१२-१८. ब्रज की शेष लीलाएँ जैसे माखनचोरी, कालिय दमन, रास, गोवर्धन धारण, कृष्ण का मथुरा-गमन और भ्रमर-गीत आदि प्रकरण 'सारावली' में संक्षेप में कहे गये हैं। 'सारावली' में उनके विस्तार की आवश्यकता न थी। कंस-वध का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन, उसके केश पकड़ कर यमुना तक घसीटने आदि के विवरण भागवत के अनुसार कहे गये हैं। बात यह है कि 'सारावली' में असुर-संहार-लीला ही प्रमुख रूप से प्रस्तुत है। 'सूरसागर' की भाँति रसात्मक काव्य का निर्माण 'सारावली' का उद्देश्य नहीं है। इसीलिए गोपियों की वियोग-व्यथा आदि के मार्मिक प्रसंग यहाँ छूट गये हैं। इसमें 'सारावली' के कवि की 'हृदय-हीनता' समझना ठीक नहीं है। 'सारावली' के कथा-विवरण भागवत से अधिक मिलते हैं। 'सूरसागर' में कथा-विवरणों को अधिक प्राथमिकता नहीं मिलती वहाँ तो भावात्मक विवरण हैं। यही कारण है कि 'सारावली' में कृष्ण का अध्ययन, शिक्षा, गुरुदक्षिणा में जमपुर से गुरु के बच्चों को लाना, अक्रूर-गृह-गमन आदि भागवत की भाँति कहे गये हैं किन्तु जहाँ 'सूरसागर' में कवि ने भागवत से हटकर किसी प्रकार का मौलिक परिवर्तन किया है वहाँ कवि 'सूरसागर' के अनुसार ही 'सारावली' में वर्णन करता है। उदाहरण के लिए कालियदमन प्रसंग में 'सूरसागर' में कंस कालीदह के फूल मंगवाता है और कृष्ण काली के सिर पर पुष्प लाद कर भेजवाते हैं। यह कथा-अंश भागवत में नहीं है। 'सारावली' में 'सूरसागर' की भाँति ही पुष्प काली के सिर पर लाद कर कंस को भेजे जाते हैं। इसी प्रकार उद्धव का स्वरूप भी 'सारावली' में भागवत के अनुसार न होकर 'सूरसागर' के अनुसार है। भागवत में उद्धवजी पहले से ही कृष्ण के भक्त थे। वे गोकुल के ब्रजवासियों को समझाने गये थे और वहाँ उन्हें आश्वस्त करके लौटे थे। उनका अपना निजी परिवर्तन नहीं हुआ था। 'सूरसागर' में उद्धव ज्ञानी थे। वे कृष्ण की भाव-विभोरता पर उपहास करते थे। कृष्णजी ने उन्हें भेजा ही इसलिए था कि वे ब्रज-गोपियों से भक्ति-भाव प्राप्त कर आवें। वे ब्रज गये और अपने ज्ञान-गौरव को खोकर भक्ति-भाव से गद्गद् लौटे। गोपियाँ जैसी थीं वैसी ही रहीं। 'सारावली' में यही बात मिलती है यद्यपि इस प्रकरण के कथात्मक विवरण भागवत की भाँति ही हैं।

१९. दशम स्कंध उत्तरार्ध की कथाएँ 'सूरसागर' और 'सारावली' दोनों में एक ही रूप में है। विवरण और वर्णन-शैली में बहुत साम्य मिलता है। इसका कारण यह है कि इस भाग में कवि ने भागवत के भावानुवाद रूप में विवरण दोनों ग्रन्थों में दिये हैं। 'सारावली' में ईश्वरत्व के प्रतिपादन को महत्त्व दिया गया है अतः जहाँ-जहाँ ऐसे अवसर आये हैं कवि ने उन पर सूक्ष्म प्रकाश डाला है। 'सूरसागर' में अनेक विवरण और कथाएँ छूट भी गयी हैं किन्तु 'सारावली' में भागवत का क्रम निरन्तर है।

२०. भागवत को सूरदास जी ने अपनी वर्ण्य वस्तु का आधार बनाया था

किन्तु उन्होंने बहुत से परिवर्तन किये थे। राधा को भागवत में स्थान ही नहीं मिला है। राधा-कृष्ण की प्रणय लीला 'सूरसागर' में बहुत विस्तार के साथ गायी गयी है। इस लीला के प्रमुख अंग हैं—दान-लीला, मान-लीला और निकुंज-विहार। इसीलिए भागवत की कथाओं के उपरान्त 'सारावली' में इन कथाओं पर विशेष प्रकाश डाला गया है। जो लीलाएँ गोकुल में रहते हुए 'सूरसागर' में वर्णित हैं वे भागवत में न होने के कारण पहले नहीं कही गयी हैं। अत: कथा-शृंखला को जोड़ने के लिए कृष्ण जी बलराम और उद्धव के साथ द्वारका से व्रज लौटते हुए कहे गये हैं।[1] इस उपक्रम से प्रारम्भ होने वाली दान-लीला के विस्तृत वर्णन में 'सूरसागर' की दान-लीला से बड़ा ही साम्य मिलता है जिसे देखकर दोनों ग्रन्थों के एक रचनाकार में कोई सन्देह नहीं होता।

२१-२२. दान-लीला के उपरान्त राधा-कृष्ण का कुंज-विहार तथा सुरति वर्णन है। 'सूरसागर' में भी दान लीला के उपरान्त राधा-कृष्ण का कुंज-विहार इसी रूप में बड़े विस्तार के साथ गाया गया है।[2] 'सूरसागर' में राधा-कृष्ण-प्रणय-लीला की अन्तिम परिणति सुरति-लीला को मान कर अनेक बार इसका निस्संकोच वर्णन मिलता है। यहाँ तक कि राधा-कृष्ण के प्रथम मिलाप के क्रम में भी सुरति-वर्णन विस्तार से है।[3] यह वर्णन अस्वाभाविक ही लगता है। कहाँ कृष्ण-राधा का बचपन और कहाँ यह संभोग-लीला! किन्तु कृष्ण तो हैं ही विरुद्ध धर्मा। वे निर्गुण के साथ सगुण तथा पूर्णकाम के साथ कामार्त हैं। बालक होने के साथ ही वयस्क एवं रसिक शिरोमणि हैं। इसीलिए सूर की बाल-लीलाओं के बीच माधुर्य लीला का बेमेल वर्णन मिलता है। 'सारावली' में भी निकुंज लीला के उपरान्त जब कृष्ण घर आते हैं तो माता यशोदा और रोहिणी के समक्ष वे छोटे बालक हो जाते हैं—घर में आकर पलंग पर पड़ते ही सो जाना, प्रात:काल जगाया जाना और कलेवा करना आदि 'सूरसागर' की बाल-लीलाओं से मिलता-जुलता है। दान-लीला के उपरान्त 'सारावली' में मान-लीला का वर्णन है। एक लीला को दूसरी से जोड़ने के लिए ही बीच में वात्सल्य लीला विषयक भोजनादि के सरस वर्णन हैं। यह मध्यान्तर, वास्तव में, शृंगारिक वातावरण में विराम देने के हेतु ही प्रस्तुत किया गया है।

२३-२५. राधा-कृष्ण सुरति वर्णन में ललिता को परिचर्या, जालरंध्र से सखियों का देखना आदि राधावल्लभीय भक्ति-पद्धति के प्रभाव से हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने राधावल्लभीय भक्ति पद्धति के सरस अंगों को पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति में प्रतिष्ठा दी थी। ललिताजी राधावल्लभीय भक्ति पद्धति में प्रमुख सहचरी हैं। इन्हीं

१. बल मोहन फिर व्रजहिं पधारे ऊधौ को संग लीने।
   दीन्हो बास चरन रज गोपिन गुल्म लता रस भीने॥ सारावली ४९८

२. सूरसागर पद संख्या २२९६-९८, २३११-१२

३. " " १३०२-१३०६

४. सारावली पद संख्या, ६०२-६०६

में तत्सुखी भाव होता है। उसका कर्त्तव्य राधा-कृष्ण की सुरति लीला की साज-सज्जा करनी, परिचर्या में रत रहना और जालरंध्र से युगल-विहार को देखना है। 'सूरसागर' में संभोग-लीला का यह रूप प्राप्त नहीं होता। यह पुष्टिमार्गीय सेवा-पद्धति की नयी अवतारणा है जो संवत् १६०२ के उपरान्त ही स्वीकार की गयी थी। इसीलिए 'सारावली' में यह अभूतपूर्व रूप में प्रस्तुत है। कवि ने इस स्वरूप को सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण माना है और हर्षातिरेक में वे सहसा कह उठे हैं—'गुरु प्रसाद होत यह दरसन'। फिर ब्रह्मत्व परक विशेषण और व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं और इस वृंदावन नित्य-विहार का इतिहास वेद और भागवत से संयुक्त कर दिया है। वेद ऋचाओं और ऋषियों को गोपी रूप में अवतरित होने के भागवत-सम्मत सूत्र को चरितार्थ कर दिया है। यह प्रकरण बिल्कुल नया है, 'सूरसागर' में इसके संकेत खोजना व्यर्थ है।

२४-२६ होली का वर्णन 'सूरसागर' में बड़े विस्तार से है किन्तु वहाँ लोक होली है। 'सारावली' में एक मास की होली का वर्णन 'सूरसागर' से मिलता है। फिर भी 'सारावली' की होली में भिन्नता आना स्वाभाविक है क्योंकि 'सारावली' की समस्त वर्ण्यवस्तु ही होली-रूपक में है। उसके आध्यात्मिक लक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए संकर्षण के मुख से अग्नि के निकलने और ब्रह्मांड में होली जलने का वर्णन 'सारावली' की अपनी विशेषता है। इसका संकेत 'सूरसागर' में मिलना दुर्लभ है।

२७-२८. दृष्टिकोण-भेद का कारण ऊपर बताया जा चुका है। 'सारावली' में कवि ने केवल एक पद में आत्मनिवेदन किया है।[1] विद्वान् डा० वर्मा को 'प्रवीन' शब्द के सम्बन्ध में भ्रम हो गया है। कवि ने नम्रता प्रदर्शित करते हुए अपनी सरसठ वर्ष की प्रवीणावस्था पर संकेत किया है। उनका तात्पर्य था कि सरसठ वर्ष की प्रवीणावस्था (इतनी आयु बीत जाने के बाद) पार पाने पर वे अपने आराध्य के उज्ज्वल रूप का दर्शन कर सके और वह भी गुरु-प्रसाद के फलस्वरूप। 'प्रवीन' शब्द में किसी प्रकार की दम्भोक्ति नहीं है। उल्टे उसमें तो आत्म-उपहास है। कर्म-योग, ज्ञान, उपासना आदि का नाम लेकर कवि ने पुष्टिमार्गीय 'अनुग्रह' की महिमा गायी है। पुष्टिमार्ग के अनुसार प्रभु का अनुग्रह ही सब कुछ है, जप-तप योग-साधन आदि व्यर्थ हैं। महाप्रभु वल्लभ की शरण आने पर ही सूरदासजी को पुष्टि भक्ति की उपलब्धि हुई थी। उसी का आत्म-निवेदन कवि ने किया है। इसमें आत्म विज्ञापन बिलकुल नहीं है। 'एक लक्ष' का संख्यावाची अर्थ भी भ्रमात्मक है। कवि ने तो प्रभु-लीला-गान के अपने एक लक्ष्य की बात कही है। किम्वदन्तियों में प्राप्त एक लाख या सवालाख पदों की रचना का उल्लेख कवि ने यहाँ नहीं किया है। 'श्रीनाथ जी के वर-दान' रूप में सारावली का माहात्म्य बताना और उसे भक्ति का सरल उपाय घोषित

---

१. गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ वरस प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन॥१००२॥
कर्म जोग पुनि ज्ञान उपासन ही सब विधि भरमायो।
श्रीवल्लभ गुरु तत्व बतायो लीला भेद बतायो॥११०३॥

करना परम्परा-निर्वाह मात्र है। समस्त धार्मिक ग्रंथों में इस प्रकार का माहात्म्य कहा जाता है। भागवत का आदि प्रकरण ही माहात्म्य-प्रकरण है। 'सारावली' की रचना ही पुष्टिमार्गीय भक्ति में पगे हुए धर्मानु गृहस्थों के लिए है। जो लोग समस्त कृष्ण-कथा का नित्य पाठ करते हैं और उसी के द्वारा सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति में विश्वास करते हैं उनके लिए ही 'सारावली' की रचना हुई थी। शोधार्थी छात्रों और विद्वानों के लिए इस ग्रंथ की रचना नहीं हुई थी। हर श्रद्धालु भक्त 'सारावली' के माहात्म्य-कथन में विश्वास करता है और इसीलिए नित्य-पाठ द्वारा अपना जन्म सुधारना चाहता है। ग्रंथ की समाप्ति पर इस प्रकार का कथन ग्रंथ के दृष्टिकोण को समझते हुए सर्वथा संगत है।

निष्कर्ष यह कि डा० वर्मा ने 'सारावली' और 'सूरसागर' के तुलनात्मक अध्ययन में विषय-वस्तु सम्बन्धी जो अन्तर पाये हैं वे या तो दृष्टिकोण सम्बन्धी हैं या विवरण सम्बन्धी। दृष्टिकोण दोनों ग्रंथों में सर्वथा भिन्न नहीं है। 'सूरसागर' में लीला का रसात्मक वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं संकेत रूप से कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन होता गया है। 'सारावली' में लीला का मार्मिक वर्णन नहीं है इसमें हरि-लीला का स्पष्टीकरण है और कृष्ण के ईश्वरत्व पर ही बल दिया गया है। ग्रन्थ का आरम्भ ही नित्य-विहार के विवेचन से होता है। सूरदासजी हरिलीला के अन्तर्गत सृष्टि-रचना और अवतार-लीलाओं को लेते हैं तथा लीला (खेल) को होली के वृहत् रूपक में बांधते हैं। कथा-सूची में जहाँ असुर-संहार या भक्त-उद्धार के अवसर आते हैं, वहाँ वे प्रभु के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करते जाते हैं। 'सूरसागर' में लीला-गान को प्रमुखता दी गई है, ईश्वरत्व प्रतिपादन यत्र-तत्र सांकेतिक रूप से है। इस प्रकार मूल रूप से दोनों ग्रंथों का दृष्टिकोण एक ही है। अन्तर केवल आकार-प्रकार का है।

विवरण सम्बन्धी अन्तरों का कारण यह है कि 'सूरसागर' भी भागवत पर आधारित है। किन्तु 'सूरसागर' के लीला-गान में भागवत की अनेक कथाएँ सूक्ष्मतम हो गयी हैं। 'सूरसारावली' में चौबीस अवतारों की कथा कहना और उस पर सैद्धान्तिक संकेत देना आवश्यक था इसीलिए उसमें भागवत को मुख्य आधार बनाया गया है। इस कारण विवरण 'सूरसागर' से कुछ भिन्न हो गये हैं। फिर भी देखने की बात यह है कि कुछ विवरण 'सूरसागर' के ऐसे हैं जो भागवत में नहीं मिलते जैसे बाल-वर्णन में कागासुर-वध, राधा-कृष्ण की प्रणय लीला, दान-लीला, मान लीला, निकुंज लीला, कालीनाग के द्वारा यमुना के पुष्प भेजना, उद्धव को मत परिवर्तन के निमित्त भेजना, ये सारे मौलिक प्रकरण सारावली में मिलते हैं। सारावलीकार यदि कोई अन्य व्यक्ति होता तो इन विवरणों को प्रस्तुत नहीं कर सकता था।

डा० वर्मा का अन्तिम आक्षेप भाषा सम्बन्धी है। उनका कथन है कि "'सारावली' का कवि अपना शास्त्रोक्त ज्ञान और पांडित्य-प्रदर्शित करने के लिए उसी के अनुकूल ब्रजभाषा का ऐसा पंडिताऊ रूप उपस्थित करता है जिसमें कथावाचकों की ब्रज और खड़ी बोली का तत्सम प्रधान मिश्रित बोली का व्यवहार हुआ है।"[1]

---

१. सूरदास, पृ० १०२

२. "उपर्युक्त उद्धरणों में ध्यान से देखने पर ऐसी अनेक पंक्तियाँ मिलेंगी जिनमें सुन्दर और मधुर शब्द-संचय तो है पर उनका अनुरूप न तो अर्थ सौन्दर्य है और न उच्च कल्पनाओं की सृष्टि।"

३. 'सारावली' में ऐसे शब्दों की एक लम्बी सूची बनाई जा सकती है जिनका व्यवहार उन्हीं रूपों में 'सूरसागर' के वृहद आकार में ढूढने से भी मिलना कठिन है।[1]

'सारावली' की तत्सम-प्रधान भाषा का कारण यह है कि इस ग्रन्थ में सिद्धान्त-निरूपण, सृष्टि-रचना. भागवतीय चौवीस अवतारों की कथा संक्षेप में है। भाषा विषयानुसार होती है। साथ ही जहाँ भागवत में लिखी हुई वृहदाकार कथाओं का संक्षिप्त भावानुवाद है वहाँ तत्सम प्रधान भाषा ही आ सकती है। जहाँ कवि ने सृष्टि के अट्ठाईस तत्त्वों, लोकों, ग्रहों, पातालों, भूमण्डल के नव खण्डों, सात द्वीपों और भक्ति के प्रकारों राग-रागिनियों और वाद्य यन्त्रों की नामावली दी है वहाँ वह तत्सम शब्दावली के अतिरिक्त और क्या लिखता ? 'सारावली' में भागवत का भावानुवाद यहाँ तक है कि अनेक स्थलों पर भागवत का मूल देखे विना भाव स्पष्ट ही नहीं होता। सूरदासजी एक तो अन्धे थे, दूसरे अच्छे अनुवादक नहीं थे। उन्होंने भागवत का भाव लेने के लिए दूसरे का सहारा लिया होगा अतः विवश होकर 'सारा-वली' में उन्हें तत्सम-शब्दावली का व्यवहार करना पड़ा। पर जहाँ कवि ने स्वतंत्र रचना की है वर्णन विना भागवत का सहारा लिए किए हैं वहाँ तत्सम शब्दावली का वाहुल्य नहीं है जैसे—

> एक दिना रुक्मिनि सौं माधव करत वात सुखदाई।
> सुनु रुक्मिनि राधिका विना मोहि पल सम कल्प विहाई॥
> कनक भूमि रचि खचित द्वारिका कुंजन की छवि नाहीं।
> गोवर्धन पर्वत के ऊपर बोलत मोर सुहाहीं॥[2]

'सूरसागर' में भी जहाँ कवि ने 'भागवतानुसार' वर्णन किए हैं वहाँ भाषा तत्सम प्रधान है और भाषा में पंडिताऊपन है जैसे—

> ब्रह्म रिषि मरीचि निर्मायो। रिषि मरीचि कस्यप उपजायो।
> सुर अरु असुर कस्यप के पुत्र। भ्रात विमात आयु में सत्रु॥
> सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही। सुर अति छमी असुर अति क्रोही।[3]

'सूरसागर' के दशम स्कंध पूर्वार्ध में जहाँ कृष्ण-लीलाए हैं वहाँ भी भागवतानुसार लिखे गए पदों में तत्सम-प्रधान शब्दावली मिलती है जैसे—

> उत्तम सफल एकादसि आई। विधिवत व्रत कीन्हौं नंदराई॥
> निराहार जल पान विवर्जित। पापनि रहित धर्म-फल अर्जित॥[4]

---

१. सूरदास, पृ० १०३
२. सारावली छंद, ८६१-६२
३. सूरसागर तृतीयस्कंध पद, ९
४. सूरसागर दशमस्कंध पूर्वार्ध, पद ९८४

विषयानुसार तत्सम-बहुल शब्दावली का प्रयोग सूर की भाषा शैली की एक विशेषता है। सिद्धान्त-निरूपण वाले पदों, स्तोत्र पद्धति की स्तुतियों, धार्मिक पदों तथा रूप-चित्रण की अप्रस्तुत योजना में सूरदासजी ने तत्सम-प्रधान पदावली का प्रयोग 'सूरसागर' में किया है।[1]

'सारावली' की शैली में पंडिताऊ कथावाचकीय रंगत भी है। इसका कारण यह है कि यह रचना है ही श्रद्धालु, धार्मिक गृहस्थों के लिए जो भागवत का पाठ व श्रवण करते हैं। यह शैली 'सूरसागर' में भी 'भागवत-प्रसंग' में मिलती है जैसे—

कौरवपति ज्यों वन को गयो। धर्मपुत्र विरक्त पुनि भयो।
बरनि सुनावों ता अनुसार। सूत कह्यो जैसे परकार॥
भारतादि कुरुपति की कथा। चली पांडवनिकी जब कथा॥[2]

तात्पर्य यह कि 'सारावली' में कथावाचकों की तत्सम-प्रधान मिश्रित शैली का व्यवहार हुआ है पर ऐसे उदाहरण 'सूरसागर' में भी मिलते हैं अतः दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की रचना सिद्ध होते हैं। 'सारावली' की शब्दावली में अर्थ-सौंदर्य और कल्पनाओं की वह सृष्टि अवश्य नहीं मिलती जो 'सूरसागर' के रसात्मक पदों में उपलब्ध है। इसका कारण स्पष्ट है कि 'सारावली' की विषय वस्तु काव्यात्मक न होकर धार्मिक और सैद्धान्तिक है। 'सारावली' में भाषा का स्वरूप अर्थात् उसके क्रियापद विभक्तियां परसर्ग आदि बोलचाल की ब्रज भाषा के हैं। 'सूरसागर' में प्रायः ऐसा ही रूप मिलता है। इसीलिए विद्वानों ने इस सम्बन्ध में इस प्रकार के मत प्रकट किए हैं—

"'सूर सारावली' में भाषा का वही ब्रज रूप और लालित्य है जो 'सूरसागर' में।"[3] डा० दीनदयालु गुप्त

'सूर सारावली' रचना-शैली, भाव और विचार पद्धति तीनों की दृष्टि से ही सूरदास की रचना है।[4] डा० भगीरथ मिश्र

'सूर सारावली' के विषय वर्णन, शैली और कवि छापों को देखकर निश्चय हो जाता है कि इसके रचयिता हमारे अष्टछापी कवि सूरदास हैं।[5] डा० हरवंश लाल शर्मा

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने 'सूरदास' नामक शोध-प्रबन्ध में 'सारावली' को अप्रामाणिक कहा था। डा० दीनदयालु गुप्त, डा० मुंशीराम शर्मा, 'सूर-निर्णय'-कार श्री द्वारिकाप्रसाद पारीख एवं श्री प्रभुदयाल मीतल और डा० हरवंशलाल शर्मा ने डा० ब्रजेश्वर वर्मा का खंडन किया और 'सारावली' को अष्टछापी सूरदासजी रचित प्रामाणिक रचना बताया। यद्यपि इन विद्वानों ने डा० ब्रजेश्वर वर्मा के प्रत्येक तर्क का उत्तर नहीं दिया था तथापि एक प्रकार से बात समाप्त हो गई थी किन्तु डा० प्रेमनारायण टंडन ने

---

१. सूर की काव्यकला, पृ० २१३-२१८
२. सूरसागर-प्रथम स्कंध, पद २८४
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, प्रथम भाग, पृ० २७६
४. सूरदास (अनु०याल)—पृ० ४३ की पाद टिप्पणी
५. सूर और उनका साहित्य, पृ० ४२

२. "उपर्युक्त उद्धरणों में ध्यान से देखने पर ऐसी अनेक पंक्तियाँ मिलेंगी जिनमें सुन्दर और मधुर शब्द-संचय तो है पर उनका अनुरूप न तो अर्थ सौन्दर्य है और न उच्च कल्पनाओं की सृष्टि।"

३. 'सारावली' में ऐसे शब्दों की एक लम्बी सूची बनाई जा सकती है जिनका व्यवहार उन्हीं रूपों में 'सूरसागर' के वृहद आकार में ढूढने से भी मिलना कठिन है।[1]

'सारावली' की तत्सम-प्रधान भाषा का कारण यह है कि इस ग्रन्थ में सिद्धान्त-निरूपण, सृष्टि-रचना. भागवतीय चौबीस अवतारों की कथा संक्षेप में है। भाषा विषयानुसार होती है। साथ ही जहाँ भागवत में लिखी हुई वृहदाकार कथाओं का संक्षिप्त भावानुवाद है वहाँ तत्सम प्रधान भाषा ही आ सकती है। जहाँ कवि ने सृष्टि के अट्ठाईस तत्त्वों, लोकों, ग्रहों, पातालों, भूमण्डल के नव खण्डों, सात द्वीपों और भक्ति के प्रकारों राग-रागिनियों और वाद्य यन्त्रों की नामावली दी है वहाँ वह तत्सम शब्दावली के अतिरिक्त और क्या लिखता ? 'सारावली' में भागवत का भावानुवाद यहाँ तक है कि अनेक स्थलों पर भागवत का मूल देखे बिना भाव स्पष्ट ही नहीं होता। सूरदासजी एक तो अन्धे थे, दूसरे अच्छे अनुवादक नहीं थे। उन्होंने भागवत का भाव लेने के लिए दूसरे का सहारा लिया होगा अतः विवश होकर 'सारावली' में उन्हें तत्सम-शब्दावली का व्यवहार करना पड़ा। पर जहाँ कवि ने स्वतंत्र रचना की है वर्णन बिना भागवत का सहारा लिए किए हैं वहाँ तत्सम शब्दावली का बाहुल्य नहीं है जैसे—

एक दिना रुक्मिनि सौं माधव करत बात सुखदाई।
सुनु रुक्मिनि राधिका बिना मोहि पल सम कल्प बिहाई॥
कनक भूमि रचि खचित द्वारिका कुंजन की छबि नाहीं।
गोवर्धन पर्वत के ऊपर बोलत मोर सुहाहीं॥[2]

'सूरसागर' में भी जहाँ कवि ने 'भागवतानुसार' वर्णन किए हैं वहाँ भाषा तत्सम प्रधान है और भाषा में पंडिताऊपन है जैसे—

ब्रह्म रिषि मरीचि निर्मायो। रिषि मरीचि कस्यप उपजायो।
सुर अरु असुर कस्यप के पुत्र। भ्रात बिमात आयु में सत्रु॥
सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही। सुर अति छमी असुर अति कोही।[3]

'सूरसागर' के दशम स्कंध पूर्वार्ध में जहाँ कृष्ण-लीलाए हैं वहाँ भी भागवतानुसार लिखे गए पदों में तत्सम-प्रधान शब्दावली मिलती है जैसे—

उत्तम सफल एकादसि आई। बिधिवत व्रत कीन्हौं नंदराई॥
निराहार जल पान बिवर्जित। पापनि रहित धर्म-फल अर्जित॥[4]

---

१. सूरदास, पृ० १०३
२. सारावली छंद, ८६१-६२
३. सूरसागर तृतीयस्कंध पद, ९
४. सूरसागर दशमस्कंध पूर्वार्ध, पद ९८४

विषयानुसार तत्सम-बहुल शब्दावली का प्रयोग सूर की भाषा शैली की एक विशेषता है। सिद्धान्त-निरूपण वाले पदों, स्तोत्र पद्धति की स्तुतियों, धार्मिक पदों तथा रूप-चित्रण की अप्रस्तुत योजना में सूरदासजी ने तत्सम-प्रधान पदावली का प्रयोग 'सूरसागर' में किया है।[1]

'सारावली' की शैली में पण्डिताऊ कथावाचकीय रंगत आ है। इसका कारण यह है कि यह रचना है ही श्रद्धालु, धार्मिक गृहस्थों के लिए जो भागवत का पाठ व श्रवण करते हैं। यह शैली 'सूरसागर' में भी 'भागवत-प्रसंग' में मिलती है जैसे—

कौरवबनि ज्यौं बन को गयौ। धर्मपुत्र विरक्त पुनि भयौ।
बरनि सुनायौं ता अनुसार। सूत कह्यौ जैसे परचार॥
भारतादि कुरुपति की कथा। चलो पांडवनिकी जब कथा॥[2]

तात्पर्य यह कि 'सारावली' में कथावाचकों की तत्सम-प्रधान मिश्रित शैली का व्यवहार हुआ है पर ऐसे उदाहरण 'सूरसागर' में भी मिलते हैं अतः दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की रचना सिद्ध होते है। 'सारावली' की शब्दावली में अर्थ-सौंदर्य और कल्पनाओं की वह सृष्टि अवश्य नहीं मिलती जो 'सूरसागर' के रसात्मक पदों में उपलब्ध हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि 'सारावली' की विषय वस्तु काव्यात्मक न होकर धार्मिक और सैद्धान्तिक है। 'सारावली' में भाषा का स्वरूप अर्थात् उसके क्रियापद विभक्तियां परसर्ग आदि बोलचाल की ब्रज भाषा के हैं। 'सूरसागर' मे प्रायः ऐसा ही रूप मिलता है। इसीलिए विद्वानों ने इस सम्बन्ध मे इस प्रकार के मत प्रकट किए हैं—

" 'सूर सारावली' में भाषा का वही ब्रज रूप और लालित्य है जो 'सूरसागर' में।"[3]
डा० दीनदयालु गुप्त

'सूर सारावली' रचना-शैली, भाव और विचार पद्धति तीनो की दृष्टि से ही सूरदास की रचना है।[4]
डा० भगीरथ मिश्र

'सूर सारावली' के विषय वर्णन, शैली और कवि छापों को देखकर निश्चय हो जाता है कि इसके रचयिता हमारे अष्टछापी कवि सूरदास हैं।[5] डा० हरवंश लाल शर्मा

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने 'सूरदास' नामक शोध-प्रबन्ध में 'सारावली' को अप्रामाणिक कहा था। डा० दीनदयालु गुप्त, डा० मुंशीराम शर्मा, 'सूर-निर्णय'-कार *श्री द्वारिकाप्रसाद पारीख एवं श्री प्रभुदयाल मीतल* और डा० हरवंशलाल शर्मा ने डा० ब्रजेश्वर वर्मा का खंडन किया और 'सारावली' को अष्टछापी सूरदासजी रचित प्रामाणिक रचना बताया। यद्यपि इन विद्वानों ने डा० ब्रजेश्वर वर्मा के प्रत्येक तर्क का उत्तर नहीं दिया था तथापि एक प्रकार से बात समाप्त हो गई थी किन्तु डा० प्रेमनारायण टंडन ने

---

१. सूर की काव्यकला, पृ० २१३-२१८
२. सूरसागर-प्रथम स्कंध, पद २८४
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, प्रथम भाग, पृ० २७६
४. सूरदास (बड़थवाल)—पृ० ५३ की पाद टिप्पणी
५. सूर और उनका साहित्य, पृ० ४२

समस्या को फिर उभारा। उन्होंने 'सूर-सारावली-एक अप्रामाणिक रचना' नामक ग्रन्थ लिख कर प्रश्न को और ज्वलंत कर दिया। उन्होंने डा० ब्रजेश्वर वर्मा के तर्कों का जोरों से समर्थन करते हुए अपने निजी आक्षेप प्रस्तुत किए। डा० टंडन के आक्षेपों के निम्न वर्ग हैं—

१. 'सारावली' में कवि के आत्मकथन।
२. 'सारावली' और 'सूरसागर' में अन्तर
३. 'सारावली' में 'सूरसागर' की पंक्तियां
४. 'सारावली' की भाषा
५. 'सारावली' का रचनाकार

१. 'सारावली' में कवि के आत्मकथन—

क. जीवन चरित सम्बन्धी आत्मकथन—

१. कछु संछेप सूर अब बरनत लघु मति दुरबल बाल
२. महिमा सिंधु कहां लगि बरनै 'सूरज' कवि मतिमंद
३ गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
सिव विधात तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन॥

ख. स्वभाव-प्रकाशक आत्मकथन—

करम जोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्रीवल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो॥
ता दिन ते हरि लीला गाई एक लच्छ पद बंद।
ताको सार सूर सारावलि गावत अति आनंद॥

डा० प्रेमनारायण टंडन के उपरिलिखित 'क' भाग में 'लघुमति दुरबल बाल' और 'कवि मति मंद जैसे नम्रता सूचक शब्दों के साथ 'प्रवीन' और 'सरसठ बरस' जैसे विरोधी कथन पर आपत्ति की गई है। पर बात यह है कि कवि ने 'प्रवीन' और 'सरसठ बरस' शब्दों के द्वारा दर्पोक्ति नहीं की। कवि का तात्पर्य यह है कि सरसठ वर्ष की प्रवीणावस्था प्राप्त करने तक वह अपने आराध्य के दर्शन से वंचित रहा था। गुरु के प्रसाद से अब वह उस सौभाग्य को पा सका है। इस प्रकार 'प्रवीन' शब्द में नम्रता विरोधी कथन नहीं है, यह भी नम्रता सूचक ही है।

'ख' भाग के आत्मकथनों के सम्बन्ध में डा० टंडन का मत है कि 'उक्त चार चरणों में से प्रथम तीन का सम्बन्ध अष्टछापी कवि सूरदास से है और चौथी पंक्ति की 'गावत' क्रिया का लुप्त कर्ता 'हौं' (या मैं) है।''[1]

लुप्त कर्ता 'हौं' (या 'मैं') की सूझ जबरदस्ती है। संदर्भ में इस प्रकार कोई तारतम्य नहीं है। ये पंक्तियां ग्रन्थ के विषय की समाप्ति पर कही गई हैं क्योंकि उसके उपरान्त श्रीकृष्ण के वरदान के रूप में ग्रन्थ का माहात्म्य ही कहा गया है। अतएव उपर्युक्त चार पंक्तियों में आत्म-कथन ही किए हैं। कवि ने बड़ी नम्रता से अपने गुरु वल्लभाचार्य का आभार प्रदर्शन किया है और कहा है कि गुरु से मिलने से

१. सारावली एक अप्रामाणिक प्रति पृ० ६६

पूर्व कवि भ्रम मे था पर उनके लीला-भेद बताने पर भ्रम निवारण हुआ और एक लक्ष्य रस कर हरि-लीला का जो गान किया उसीका सार 'सारावली' मे गाया है। अन्तिम पंक्ति में 'सूर' शब्द कवि का अपना नाम ही है। 'सारावली' में अनेक बार कवि ने अपना नाम दिया है तब वह ग्रन्थ की समाप्ति पर अपना नाम क्यों न देगा ? अतः 'गावत' क्रिया का किसी लुप्त कर्ता की कल्पना करना समीचीन नहीं है।

डा० टंडन ने 'सरसठ वरस प्रवीन' वाला पद १००२ संख्यक और 'सार गावत' वाला ११०२ संख्यक छंद में देखकर १०० छन्दों के व्यवधान से अपने मत की पुष्टि की है। साथ ही 'सरसठ बरस प्रवीन' वाले संदर्भ पर शका की है कि 'यह उल्लेख बीच मे क्यों आ गया, निकुंज लीला के आरम्भ या अन्त मे क्यो नहीं दिया गया।'[1]

इसका कारण यह है कि 'सरसठ वरस प्रवीन' वाला छद कवि ने हर्षातिरेक के क्षणो मे किया है। जब सूरदासजी ने निकुंज लीला के मध्य युगल स्वरूप का दिग्दर्शन कराया तभी उन्होंने उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला—

"सुरत समुद्र कहत दम्पति कौ निरवधि रमन अपार।
भयो सेष मन गूढ़ कहन को राधा-कृष्ण विहार॥
सोभा अमित अपार अखंडित आप आतमाराम।
पूरण ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम सब विधि पूरन काम॥"
+ + +
मलिन भए रस मानसरोवर मुनि जन मानस हंस।
थकित विलोकि सारदा वरनत करिके बहुत प्रसस।
+ + +
अमित एक उपमा अवलोकत जिय मे करत विचार।
नहिं प्रवेस अज सिव गनेस पुनि कितक बात संसार।
मुनि मन मधुप सदा रस लोभित सेवत अज सिव अब।"[2]

इस रूप का वर्णन करते ही सूरदासजी आनन्द-विभोर हो उठे और उनकी जिह्वा से हठात् निकल पड़ा कि गुरु के प्रसाद से आज सरसठ की परिपक्वावस्था मे मुझे इस रूप का दर्शन हुआ। कदाचित् इस रूप का दर्शन (आत्मानुभूति) कवि को पहले नही हुआ था। इसीलिए एक छन्द मे कह कर फिर लीला-वर्णन में पूर्ववत् लग गए। १०० के व्यवधान का और कोई कारण नही है।

साराश यह कि 'सारावली' में कोई विशेष आत्मकथन है ही नहीं। कवि ने नम्र भाव से गुरु के प्रति आभार मात्र प्रदर्शित किया है। इसमे किसी और कवि की कल्पना कर लेना केवल खींचतान और पूर्वाग्रह है।

२. 'सारावली' और 'सूरसागर' की तुलना—

डा० टंडन ने समस्त 'सारावली' की पंक्तियों को उद्धृत करके 'सूरसागर' और 'श्रीमद्भागवत' के अवतरणो के साथ तुलना करके कुछ निष्कर्ष निकाले हैं—

---

१. सारावली एक अप्रामाणिक रचना पृ० ३२९
२. सारावली, छन्द १००१

(i) 'सारावली' के अधिकांश प्रसंग 'सूरसागर' के कथा-क्रम के अनुसार और उसी के आधार पर हैं। 'सारावली'-कार ने अपने ग्रन्थ का जिस रूप में 'नामकरण' किया है और 'दृष्टिकूट सूचनिका' लिखकर जिसकी ओर पुनः संकेत किया है, वह विल्कुल ठीक है और वस्तुतः 'सारावली' उनके सूरसागर का सूचीपत्र है।[1]

(ii) 'सूरसागर' के अनेक पद, वाक्यांश, उपवाक्य और वाक्य तक उसमें मिलने के दो कारण हैं—एक तो यह कि 'सारावली'-कार अपनी सूची को अधिक से अधिक प्रामाणिक रूप देना चाहता था और दूसरा यह कि शब्द-संपत्ति की दृष्टि से अष्टछापी सूरदास की तुलना में वह विल्कुल कंगाल था और जो महान् दायित्व उसने उठाया, उसका निर्वाह उस प्रकार उधार मांगे-जांचे-चोरी किए न कहना चाहें तो यह कहिए-चल ही नहीं सकता था।[2]

(iii) सारे ग्रन्थ की रचना में 'सारावली' कार ने केवल आठ दस स्थलों पर प्रसंग का वर्ण्य-विषय का आधार 'सूरसागर' को छोड़कर 'श्रीमद्भागवत' को वनाया है। सम्प्रदाय में परम मान्य इस 'भागवत' का इतना कम उपयोग अष्टछापी सूरदास तो कर नहीं सकता जो वार-वार आधार लेने की घोषणा करता है। ऐसा तो कोई भिन्नादर्श वाला व्यक्ति ही हो सकता है जिसे न संस्कृत का ज्ञान है, न जिसने 'श्रीमद्भागवत' पढ़ी है।[3]

जिस विस्तार के साथ डॉ० टंडन ने 'सारावली' की पंक्तियों को उद्धृत किया है उस प्रकार यहाँ उपस्थित करना अनावश्यक है। आगे 'सारावली' की टिप्पणी में एक-एक पंक्ति का आधार प्रस्तुत है। यहाँ उसी के सार रूप में कहा जा सकता है कि 'सारावली' में अधिकांश प्रसंग न तो 'सूरसागर' के कथा-क्रम में हैं और न उसी के आधार पर हैं। क्रम के सम्बन्ध में डा० व्रजेश्वर वर्मा ने ठीक ही कहा था कि इस ग्रन्थ में पहले 'भागवत' के अनुसार कथाओं की सूची है और उत्तरार्ध में दानलीला, मानलीला और नित्य विहार है। 'सारावली' का यह विभाजन 'सूरसागर' के क्रम में नहीं है। 'सारावली' के आरम्भ में पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म तथा उनकी शाश्वत विहार-लीला का निरूपण, सृष्टि-रचना के २८ तत्त्वों के साथ समस्त सृष्टि-रचना का विस्तार और चौवीस अवतारों का निरूपण है। होली-रूपक का जो क्रम आरम्भ से उठाया गया वह सारी-सृष्टि-रचना और अवतार-लीलाओं के वीच वार-वार उठाया जाता है और होली-रूपक का निर्वाह होता जाता है। यह सारा क्रम 'सूरसागर' में कहाँ है ? 'सूरसागर' के ग्यारहवें स्कन्ध में नर-नारायण, हंस अवतार तथा वारहवें स्कन्ध में बुद्ध तथा कल्कि अवतार की कथाएँ हैं। 'सारावली' में नर-नारायण अवतार छठा, हंस अवतार आठवाँ, बुद्ध अवतार उन्नीसवाँ और कल्कि अवतार वीसवाँ है। 'सारावली' में सभी अवतारों के उपरान्त कृष्णावतार की लीला गायी गयी है। इसका कारण यह है कि

---

१. सूरसारावली एक अप्रामाणिक प्रति, पृ० ३५१
२. वही, पृ० ३५२
३. वही, पृ० ३५२।

कवि कृष्ण को ही परब्रह्म का अवतार मानता है अन्य अवतारों को वह कृष्ण का ही अंशावतार कहता है।[1] इसीलिए सबसे अन्त में कृष्णावतार की लीला कही है यद्यपि बुद्ध और कल्कि अवतार कृष्णावतार के बाद के हैं। तात्पर्य यह है कि 'सारावली' में 'सूरसागर' का कथाक्रम बिल्कुल नहीं है।

'सारावली' की कथा 'सूरसागर' के आधार पर भी नहीं गायी गयी। उसमें आधार 'श्रीमद्भागवत' का लिया गया है। 'सारावली' की टिप्पणी में हमने प्रत्येक छंद के साथ स्पष्ट किया है कि सारा क्रम और पूर्वार्ध की सारी कथा का आधार ही *भागवत नहीं है बल्कि उसमें भागवत के श्लोकों के भावानुवाद भी है।* 'भागवत' की वृहत्-कथाओं और वर्णनों को 'सारावली' में छोड़ा गया है किन्तु कथा-सार भागवत का ही है। 'सूरसागर' में दशम स्कन्ध को छोड़कर अन्य स्कन्धों में भागवतीय कथाएं अत्यन्त सूक्ष्म हैं। अन्य अवतारों का उल्लेख भी नहीं है। वास्तविक बात यह है कि 'सूरसागर' और 'सारावली' दोनों का आधार ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत्' ही है। 'सूरसागर' में भागवतीय कथाओं की खानापूरी मात्र है। कथा-क्रम भागवत के तृतीय स्कन्ध से प्रारम्भ होता है। 'सूरसागर' के तृतीय और चतुर्थ में १३, पंचम में ४, षष्ट में ८, सप्तम में ८, अष्टम में १७, एकादश में ४ द्वादश में ५ पद हैं। 'सारावली' अवतारों के क्रम में 'भागवत' तथा अन्य पुराणों के अंशावतारों तक का वर्णन करती है। तात्पर्य यह है कि 'सारावली' में न तो 'सूरसागर' का कथा-क्रम है और न उसका आधार है। इन दोनों के लिए 'श्रीमद्भागवत' पर ही 'सारावली' अवलम्बित है।

'सूची' और 'सूचिनिका' जो 'सारावली' में है 'सूरसागर' में उपलब्ध ही नहीं है। सृष्टि के २८ तत्त्व, लोकपाल, पाताल, सातद्वीप, नव खण्ड, योग के अंग, दशधा भक्ति, राग-रागिनी और वाद्य यन्त्रों की जो सूचियाँ डा० टंडन ने 'सारावली' में इकट्ठी की हैं[2] वे 'सूरसागर' में नहीं है। 'दृष्टकूट सूचिनिका' में प्राप्त २० दृष्टकूटों (६३७-६६६) में से एक भी तो 'सूरसागर' में नहीं मिलता यद्यपि 'सूरसागर' में लगभग सौ दृष्टकूट पद हैं। डा० टंडन ने दृष्टकूटों की ही तुलना नहीं केवल एक दृष्टकूट' शब्द *(सारंगरिपु) मात्र की समता देखकर समझ लिया कि 'सूरसागर' के दृष्टकूटों* को 'सूचिनिका' सारावली में दी गयी है। जैसा पहले कहा जा चुका है, 'सारावली' की पुष्पिका में सम्पादकों ने भी प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से इसे 'सूरसागर' का सूची पत्र लिखा गया था। लगता है डा० टंडन भी उसी भ्रम में बह गये।

डा० टंडन ने तुलना के क्रम में एक विशेष बात की है। जहाँ 'सारावली' में 'सूरसागर' में कोई भिन्नता मिलती है वे प्रश्न करने लगते हैं कि यह किस सिद्धांत

---

१. अंश कला अवतार कृष्ण श्याम को कवि पै कहत न आवै।
   जहं जहं भीर परत भक्तन पै तहं तहं वपु धरि आवै॥ सारावली, पद सं० ३५४।
२. सारावली एक अप्रामाणिक प्रति, पृ० ३५७-३६०।
३. वही, पृ० ३२१।

प्रतिपादन के लिए है ।[1] वे सारावलीकार को 'लघुमति', 'मतिमंद', 'सरसठ बरस प्रवीन' उद्धरणों से कटुतम प्रहार भी करने लगते हैं ।[2] किन्तु जहाँ 'सारावली' और 'सूरसागर' में शब्दावली का साम्य मिलता है वहाँ वे उसमें 'अपहरण' या 'चौरकर्म' देखने लगते हैं ।[3] यदि अपहरण करने या चुराने की मनोवृत्ति होती तो दृष्टकूट अवश्य चुराये होते क्योंकि दृष्टकूट-रचना अपने आप में जटिल है । यही कारण है कि सूरदास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने इतने दृष्टकूटों की रचना नहीं की ।

---

१. दोनों ग्रन्थों में इस प्रकार के सामान्य अन्तरों के आधार पर यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि 'सारावली'-कार किसी सिद्धांत-विशेष का सार देने का प्रयत्न कर रहा है । —सारावली एक अप्रामाणिक रचना, पृ० १०८ ।

'सारावली'-कार के उक्त छन्दों में प्रह्लाद के गुरु का नाम लिखकर केवल 'विप्र' लिखना पर्याप्त समझा है । 'सूरसागर' में गुरु का नामोल्लेख सबसे पहले किया गया है ।···

तब वह किस 'स्वतन्त्र' सिद्धांत के आधार पर उन्हें 'विप्र' मात्र कह रहा था । —सारावली एक अप्रामाणिक रचना, पृ० १३४ ।

किसी 'स्वतन्त्र सिद्धान्त' की रक्षा करने के लिए कवि ने उस प्रसंग का उल्लेख न किया होगा । —वही, पृ० १५७ ।

उसकी आशा सारावलीकार से की ही नहीं जा सकती क्योंकि वह 'स्वतन्त्र सैद्धान्तिक' रचना में दत्तचित्त है जिसमें हृदय पक्ष के लिए संभवत: किंचित भी स्थान नहीं है । —वही, पृ० १६० ।

वह किसी के हृदय का चित्रण न करके न जाने किस 'स्वतन्त्र सिद्धान्त' का प्रतिपादन करता है । — वही, पृ० १६१ ।

धन्य है उसकी यह स्वतन्त्र सिद्धान्त स्थापना — वही, पृ० २१० ।

२. ऐसे उदाहरण किसी मन्दमति के हो सकते हैं, —वही, पृ० १५१ ।

ऐसे प्रसंगों में कवि की 'प्रवीनता' क्या अनुपमेय नहीं है, —वही, पृ० १५३ ।

'सारावली' कार की मतिमंदता का इससे पुष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है । —वही, पृ० १५५ ।

वह यदि 'मंदमति दुरवल वाल' कवि का हृदय स्पर्श नही कर सकी तो आश्चर्य की क्या वात ? —वही, पृ० १६२ ।

'सारावली'-कार का आगे उल्लेख कितना 'मंदमति' पूर्ण है । —वही पृ० १६३ ।

'सारावली' के कवि की 'प्रवीणता' की दाद यह पढ़कर कौन न देना चाहेगा । —वही, पृ० १६६ ।

'सूरसागर' के उक्त विषयों में से और को तो जाने दीजिये, लक्ष्मण शक्ति और रावणवध दोनों वातें 'सारावली' का 'लघुमति' या 'मंदमति वाल' भूल जाता है । —वही, पृ० १७० ।

इस प्रसंग में 'सारावली'-कार की 'प्रवीणता' पर तरस आने के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? —वही, पृ० १७४ ।

'सारावली' वास्तव में 'सूरसागर' पर आधारित नहीं है, 'श्रीमद्भागवत' पर आधारित है। फिर भी दोनों ग्रन्थों का विषय एक ही है अतः साम्य का पाया जाना स्वाभाविक है। दोनों ग्रन्थों के दृष्टिकोण भिन्न हैं। 'सूरसागर' लीला-ग्रन्थ है और 'सारावली' में लीलाओं का उल्लेख करके उनमें प्रभु के ईश्वरत्व और उनकी उद्धार-लीला का प्रतिपादन है। यही कारण है कि 'सारावली' में वे मार्मिक और रसात्मक चित्रण नहीं हैं जो 'सूरसागर' में हैं। जहाँ कवि का उद्देश्य ईश्वरत्व-प्रतिपादन है और जहाँ वह कथा-विस्तार में न जाकर केवल उसके ढाँचे का उल्लेख मात्र करता है वहाँ उसके सूक्ष्म विवरणों में भिन्नता देखना और कवि को हृदयहीन कहना कहाँ तक समीचीन है ?

'सूरसागर' के अनेक पद, पदांश, वाक्यांश आदि के 'सारावली' में मिलने के जो दो कारण डा० टंडन ने बताये हैं, बिल्कुल ठीक नहीं हैं। एक कारण वे देते हैं कि 'सारावली'-कार अपनी 'सूची' को अधिक से अधिक प्रामाणिक रूप देना चाहता

आखिर 'प्रवीन' ठहरा, अपनी प्रवीणता दिखाने का अवसर पाकर भला क्यों चूकने लगा। —वही, पृ० १८६।

ग्रन्थ का रचयिता सर्वथा हृदयहीन व्यक्ति है जिसको मानु हृदय का, किसी भी हृदय की भावना का कोई परिचय नहीं है और उसका वर्णन सर्वथा रसहीन सूची जैसा ही है। —वही, पृ० १६५।

यह रचयिता की मंद बुद्धि का प्रमाण है या 'प्रवीणता' की। —वही, पृ० २५४।

'सरसठ बरस' के उस 'प्रवीन' कवि में किसी भी विषय को हृदयगम करने की योग्यता ही नहीं है। — वही, पृ० २६५।

३. यहां ज्ञात पड़ता है कि 'सूरसागर' के उक्त प्रथम दो उदाहरणों से 'सारावली'-कार को वर्णन की प्रेरणा मिली है और तृतीय का भाव नहीं, शब्द तक का अपहरण करके उसने अपने विशिष्ट 'स्वतन्त्र सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया है। —वही, पृ० १५०।

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों के समान ही 'सारावली'-कार ने यहां भी 'तृण कबहूँ न पतीजे'' आदि वाक्य 'सूरसागर' से अपहृत कर लिये हैं। —वही, पृ० १७६।

आदि वाक्य और उपवाक्य तो 'सारावली'-कार ने ज्यों के त्यों अपना या चुरा लिये हैं— — वही, पृ० ३००।

परन्तु 'सारावली' में तो 'सूरसागर' से शब्दावली का स्पष्ट अपहरण ही किया गया है। शब्दावली की आवृत्ति के 'सारावली' से संकलित निम्नलिखित उदाहरण किसको आश्चर्य में नहीं डाल देते ? यहाँ ऐसे केवल दो उदाहरण दिये जा रहे हैं। अधिक सावधानी से मिलान और खोज करने पर ऐसी और बहुत सी पंक्तियाँ 'सारावली' में मिल सकती हैं जो 'सूरसागर' से अपहृत होंगी। — वही, पृ० ३६६।

था। हम कह चुके हैं कि 'सारावली' में सूची-निर्माण है ही नहीं। पुष्पिका के अनधिकृत नामांकन को पकड़ बैठना ठीक नहीं। 'सारावली' सूचीपत्र है ही नहीं।

दूसरा कारण डा० टंडन बताते हैं कि 'सारावली'-कार शब्द-संपत्ति की दृष्टि से बिलकुल कंगाल था और 'चोरी किये' बिना उसका काम ही न चल सकता था। इस सम्बन्ध में निवेदन है कि 'सारावली'-कार ने 'सूरसागर' की लीलाओं के रहस्य का उद्‌घाटन किया है। 'सारावली' में 'सूरसागर' के विषय से बहुत आगे बढ़ कर मधुरा-भक्ति का विवेचन प्रमुख रूप में प्रस्तुत किया गया है। जब विषय-वस्तु के लिए ही वह 'सूरसागर' का मुखापेक्षी नहीं है तो वह शब्दों, वाक्यांशों और वाक्यों का अपहरण क्यों कर करेगा? यदि वह अपहरण करने को सोचता तो ऐसे स्थल पर वैसा करता जिसका करना सरल नहीं है। 'सूरसागर' में सी दृष्टकूट पद हैं। जिस मानलीला प्रसंग में 'सारावली' में दृष्टकूट है उसमें 'सूरसागर' में भी हैं किन्तु 'सूरसागर' का एक वाक्यांश भी 'सारावली' में नहीं मिलता। फिर भला अपहरण की बात कैसे मान्य है? 'सारावली' और 'सूरसागर' की शब्दावलियों के साम्य का कारण यह है कि समान विषय पर रचना करने पर एक कवि के द्वारा एक सी शब्दावलियाँ निकल सकती हैं। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली और बरवै-रामायण में कई सौ शब्द, वाक्यांश, वाक्य और उपमाएं मिलती हैं। डा० दीनदयालु गुप्त, डा० हरवंशलाल शर्मा, श्री प्रभुदयाल मीतल आदि विद्वानों ने ठीक ही कहा है कि पदावलियों का इस प्रकार मिलना इस बात का ही द्योतक है कि 'सारावली' पुष्टिमार्गी सूरदास की ही रचना है।

डा० टंडन का यह कहना कि 'सारावली'-कार ने केवल आठ-दस स्थलों पर प्रसंग या वर्ण्य-विषय का आधार सूरसागर' को छोड़कर 'श्रीमद्‌भागवत' को बनाया है, सर्वथा भ्रान्तिमूलक है। आगे पाठ की पाद-टिप्पणी में हम दिखाते गये हैं कि 'सारावली' में 'भागवत' सम्बन्धी सभी वर्ण्य-विषय में 'भागवत' का ही आधार लिया गया है।

खेद तो इस बात का है कि डा० टंडन ने 'सारावली' की 'सूरसागर' से जो विस्तृत तुलना की उसमें जहाँ उन्होंने 'सारावली' को 'सूरसागर' से भिन्न पाया, वहाँ कह दिया कि यह इसलिए है कि वह अष्टछापी सूर की रचना नहीं है और जहाँ उसे 'सूरसागर' से मिलता देखा वहाँ कह दिया कि यह तो अपहरण और चोरी है। कैसी दुधारी चोट की है?

डा० टंडन ने 'सारावली'-कार की वर्णन-संबंधी असावधानियाँ उपस्थित की हैं—

१. अनावश्यक विस्तार से वर्णित प्रसंग—श्रीराम की बाल लीला का वर्णन—

इस सम्बन्ध में निवेदन है कि कवि स्वेच्छानुसार कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से वर्णन करता है। राम के बाल-वर्णन तथा उनके शृंगार-वर्णन में वह 'सूरसागर' के बालवर्णन से प्रभावित है। जो वात्सल्य का सिद्ध कवि है वह राम का बाल-वर्णन करते हुए भी उसी प्रकार वर्णन करने लगता है जैसे पहले 'सूरसागर' के कृष्ण-बाल-

वर्णन में किया था। यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। यहाँ कृष्ण का दान-वर्णन करते हुए 'सूरसागर' के वर्णन को ध्यान में रख कर वह विशेष विस्तार से नहीं गया।

मथुरा और द्वारिका लीलाओं का वर्णन कवि ने बिल्कुल 'भागवतानुसार' किया है। न बहुत विस्तार है न बहुत संक्षेप। निकुञ्ज-लीलाएँ विस्तार से हैं क्योंकि 'सारावली' में ये लीलाएँ मौलिक रूप से प्रस्तुत हैं।

२. 'सारावली' में दोहराये गये प्रसंग—

अवतारों की कथाओं के दोहराये जाने का कारण यह है कि 'श्रीमद्भागवत' में अवतारों की कथाएँ कई बार दोहरायी गई हैं। भागवत में चौबीस अवतार-वर्णन प्रथम स्कंध अध्याय ३, द्वितीय स्कंध अध्याय ७ और एकादश स्कंध अध्याय ४ में हुआ है। इसका दूसरा कारण यह है कि एक बार सृष्टि-रचना क्रम में कपिल, ध्रुव, मनु, सनकादि, पृथु आदि का वर्णन है। बाद में अवतार-लीला में इनकी गणना की गयी है। दत्तात्रेय के चौबीस गुरुओं की कथा 'भागवत' में भी दुबारा बारहवें स्कंध में है अतः 'सारावली' में भी दुबारा आ गयी है। 'वन में मित्र हमारो' का उल्लेख पहले कृष्ण ने उद्धव से किया था और दुबारा लौटने पर उद्धव ने कृष्ण के प्रति किया है। दुबारा वाले कथन में पाठ 'हमारो' के स्थान पर 'तुम्हारो' होना चाहिए। ऐसी भूल और कई जगहों पर हुई है।

प्रसंगों की पुनरुक्तियां 'सूरसागर' और 'श्रीमद्भागवत' दोनों में भरी पड़ी हैं। पुनरुक्ति सूरदास के लिए साधारण बात है।

३. महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का लोप—

पीछे कहा जा चुका है कि 'सारावली' में कवि का लक्ष्य मार्मिक प्रसंगों का चित्रण नहीं है। यहां केवल वे ही प्रसंग प्रस्तुत किए गए हैं जिनसे ईश्वरत्व-प्रतिपादन से सम्बन्ध है। दृष्टिकोण-भेद के कारण 'सूरसागर' के मर्मस्पर्शी स्थलों की यहाँ योजना अनुचित है।

४. वर्णन सम्बन्धी अन्य असावधानियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। टीका में यथास्थान इनका समाहार है। छिद्रान्वेषण की मनोवृत्ति छोड़ दी जाए तो इनमें विशेष खटकने वाली बात प्रतीत नहीं होगी।

डा० टंडन के आक्षेपों के उत्तर देने के उपरान्त अब हम उन विचार-बिन्दुओं को प्रस्तुत करते हैं जो इस बात को सिद्ध करते हैं कि 'सारावली' अष्टछापी सूरदास की ही रचना है—

१. 'सूरसागर' के कुछ प्रसंग और विवरण ऐसे हैं जो शुद्ध मौलिक हैं 'श्रीमद्-भागवत' में इनका वर्णन नहीं मिलता। 'सारावली' में ये प्रसंग प्राप्त हैं।

(१) गोकुल में जन्मोत्सव

(२) "निज सुत जानि वृद्ध एक टाढ़ो गोवर्धन तें आयो" (ना० प्र० ४०६)

(३) बाणासुर वध ('सूरसागर' का इतना साधारण प्रकरण है कि साधारण पाठक की दृष्टि इस ओर जा ही नहीं सकती।)

(४) 'सुन्दर-स्याम-खिलौना'—नंद और यशोदा का बाल-कृष्ण को बीच में रखकर खेल करना।

(५) कंस का कालीदह के पुष्प मांगना और कालीनाग द्वारा ही कमल पुष्पों का भेजा जाना

(६) उद्धव को मत-परिवर्तन के प्रयोजन से व्रज भेजना

(७) "वन में मित्र हमारो वसत है"—'सूरसागर' में इसका जहां उल्लेख है उन पंक्तियों का आशय तब तक स्पष्ट नहीं होता जब तक 'सारावली' की इन पंक्तियों को नहीं देखा जाता।

(८) उद्धव का व्रज जाकर भक्ति का व्रत स्वीकार करना और वापस आने पर 'सारावली' में वैसे ही कथन करना जैसे 'सूरसागर' में।

(९) कुरुक्षेत्र में राधा-कृष्ण मिलन ठीक वैसा ही है जैसा कि 'सूरसागर' में

(१०) दान-लीला, मान-लीला और निकुंज लीला के वर्णन।

(११) दृष्टकूट पद-रचना 'सूरसागर' में १०० दृष्टकूट पद हैं, 'सारावली' में ३० और 'साहित्य लहरी' ११७। हिन्दी के किसी अन्य कवि ने इतने दृष्टकूटों की रचना नहीं की।

२. 'सारावली' में तीन प्रकार के दृष्टिकोणों का समन्वय मिलता है—'भागवत' का ईश्वरत्त्व-प्रतिपादन, 'सूरसागर' की वात्सल्य, सख्य एवं मधुरा भक्ति और राधा-वल्लभीय भक्ति का नित्य-विहार जिसमें ललिता आदि विहार की साज-सज्जा करती हैं और जाल-रंध्रों से रमण को देखकर आनन्द लाभ करती हैं।

सूरदासजी ही ऐसे भक्त हो सकते हैं जिन्होंने 'भागवतानुसार' काव्य-रचना करने का ज्ञापन अनेक बार 'सूरसागर' में किया, वात्सल्य, सख्य तथा राधा-कृष्ण की प्रणय लीला में मधुरा भक्ति को प्रस्तुत किया और अन्त में गुरु विट्ठलनाथ की प्रेरणा से राधावल्लभीय भक्ति के स्वरूप को 'सारावली' और 'साहित्य लहरी' में विस्तार से प्रस्तुत किया। अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त अन्य मतावलम्बी कोई और तीनों दृष्टिकोणों को एक नहीं कर सकता था।

३. 'सारावली' में होली-रूपक का आरम्भ प्रथम पंक्ति में होता है—"खेलत यहि विधि हरि होरी हो—"

रूपक का निर्वाह सृष्टि-रचना और अवतार-लीला में होता गया है।

आदि से अन्त तक इतने बड़े रूपक का निर्वाह अष्टछापी 'सूर' की ही करामात है।

४. राम-कथा में नित्य-विहार-लीला का वर्णन 'सारावली' से मिलता है। जिस प्रकार 'सारावली' के राम-बाल-वर्णन में 'सूरसागर' के बाल-कृष्ण की छाया मिलती है उसी प्रकार रामचन्द्रजी सीताजी के साथ अयोध्या में उसी प्रकार नित्य-विहार करते हैं जैसे श्रीकृष्ण राधा के साथ वृन्दावन में। रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय की जो भावना बाद में नाभादास और अग्रदास के द्वारा प्रतिपादित की गयी उसका

सूत्रपात 'सारावली' में ही प्राप्त हो जाता है। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कोई कवि ऐसी मौलिक उद्‌भावना नही कर सकता था।

५. 'सारावली' के रचनाकार के सम्बन्ध में डा० वर्मा ने अनुमान लगाया है—"यह सूरज कवि वह ब्रजवासी बालक अनुमान से जान पड़ता है जो नागरीदासजी के अनुसार ब्रज में 'हैतुकिया होरी को भड़ौआ' गाता फिरता था और जिसे गोस्वामीजी ने 'भगवत जस' वर्णन करने का उपदेश दिया था। सम्भव है गोस्वामीजी का आदेश मानकर कालान्तर में उसी ने 'सारावली' नाम से होली का वृहद् गान रच दिया हो।"[1]

श्री प्रभुदयाल मीतल ने 'सारावली' की भूमिका में लिखा है कि—

"इससे सिद्ध होता है, नागरीदास कृत 'पद-प्रसंग-माल' के होली-गायन में जिस 'ब्रजवासी बालक' का उल्लेख है वह अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त कोई अन्य 'सूरज कवि' नहीं है।"[2]

मीतलजी के उपर्युक्त अभिमत का समर्थन हमारे उपरिलिखित चार तर्कों से हो जाता है। कोई 'ब्रजवासी बालक' अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त ऐसा नहीं हो सकता जो ऐसी रचना कर सकता हो। डा० टंडन दबी जबान से कहना चाहते हैं कि 'सारावली' की रचना केशव किशोर नामक एक अति साधारण कवि ने की जिसने 'श्री आचार्यजी की वंशावली' की रचना की थी और जो श्री गोकुलनाथजी का शिष्य था। साथ ही उन्होंने परिशिष्ट में श्री आचार्यजी की वंशावली को छाप भी दिया है। उसको देखने से बात बिल्कुल साफ हो जाती है। कहाँ 'वंशावली' और कहाँ 'सारावली'! वंशावली का पहला छंद ही द्रष्टव्य है—

श्री वल्लभ चरन प्रताप बल, मुग्ध हू कूं होय ज्ञान।
गूंगे हू गुन गनि कहैं, चरन कमल करि ध्यान॥

यह दोहा छंद है। मात्रा और यति-गति का कितना व्यतिक्रम है? इसकी 'सारावली' के राग काफी, कबीर छंद और होली लोक धुन में सम्पन्न पद-रचना की भला क्या समता? सारी वंशावली इतनी लचर भाषा में लिखी गई है कि आठ-दस छन्दों तक पढ़ते-पढ़ते ही पाठक अपना सारा साहस खो देता है। होली के रूपक में निबद्ध सिद्धान्त गर्भित, लीला समन्वित ऐसी रचना जिसमें तत्सम शब्दावली के नग सहज ब्रजभाषा के जाल में पिरोये गए हैं केशव किशोर जैसा 'वंशावली'-कार कदापि नहीं कर सकता था।

---

१. सूरदास, पृ० १०५
२. मीतल संपादित सारावली, पृ० ३०

३. सिद्धान्त-प्रतिपादन

सूरदासजी पुष्टिमार्गी थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आकर उन्होंने ऐसा आत्मार्पण किया कि उससे पूर्व उनमें जो कुछ भी था लुप्त हो गया, महाप्रभु के विचारों में ही उन्होंने अपने को सर्वथा ढाल दिया। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त और सेवा-पथ पर चलते हुए उन्होंने अपना शेष जीवन सार्थक किया। इसीलिए अपने जीवन काल में ही सूरदासजी 'पुष्टिमार्ग के जहाज' कहे जाते थे।

पुष्टिमार्ग के दो पक्ष हैं—सिद्धान्त-पक्ष और सेवा-पक्ष। तात्विक दृष्टि से पुष्टिमार्ग का सिद्धान्त है शुद्धाद्वैत। शांकर अद्वैत से माया (मिथ्या) को निकाल कर उसे शुद्ध किया गया है[1]। शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुसार एक ब्रह्म ही सत्य है और सब कल्पना (मिथ्या) है। शुद्धाद्वैत के अनुसार जीव और जगत् ब्रह्म के अंश हैं अतः सत्य हैं। जीव में आनन्द का तिरोभाव है केवल सत् और चित् से जीव की रचना हुई है, जड़ जगत् में चित् और आनन्द दोनों का तिरोभाव हैकेवल चिदंश से उनकी सृष्टि हुई है। जीव जगत ब्रह्म से अभिन्न है। ब्रह्म कारण है और जगत् कार्य। ब्रह्म सर्वधर्मा, सर्वकर्मा और सर्वभोक्ता है वह उभयलिंग युक्त सगुण और निर्गुण दोनों हैं[2]। शुद्धाद्वैत के अनुसार ब्रह्म के तीन रूप हैं—१. आधिदैविक परब्रह्म २. आध्यात्मिक अक्षरब्रह्म और ३. आधिभौतिक जगत्-ब्रह्म।

१. परब्रह्म—वल्लभ सम्प्रदाय में परब्रह्म सच्चिदानन्द अथवा 'सदानन्द' हैं। आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं[3]। वे ही पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। पुष्टिमार्गीय पुरुषोत्तम ब्रह्म में भेद है। राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप धर्म संस्थापनार्थ चतुर्व्यूहात्मक है। भगवान कृष्ण का पूर्ण पुरुषोत्तम रूप लोक रक्षक भी है और लोक-रंजक भी। संसार को आनन्द देने वाले नन्दनन्दन रस-रूप हैं और धर्म की संस्थापना करने वाले तथा असुरों का संहार करने वाले देवकीनन्दन-वासुदेव धर्म-रक्षक रूप हैं।

---

१. माया सम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
   कार्य कारण रूपं हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम ॥ — शुद्धाद्वैत मार्तण्डः
२. "उभय व्यपदेशात् त्वहि कुण्डलवत्"। — अणुभाष्य
३. परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानंद कं बृहत्। — सिद्धांत मुक्तावलि, श्लोक ३

इस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय में पुरुषोत्तम के दो रूप हैं—एक लोक-वेद प्रथित पुरुषोत्तम रूप और दूसरा लोकवेदातीत पुरुषोत्तम रूप।

शुद्धाद्वैत के अनुसार श्रीकृष्ण ही सर्वधर्मों के आश्रय रूप हैं। इनकी विशेषता यह भी है कि सभी विरोधी धर्म इनमें साथ ही साथ रहते हैं। इसीलिए कृष्ण बालक होते हुए भी पूर्ण रसिक हैं, निरपेक्ष होते हुए भी भक्त सापेक्ष हैं, स्वतन्त्र होते हुए भी भक्तों के वश में हैं। चतुर और सर्वज्ञ होते हुए भी भक्त के सम्मुख अज्ञ हैं। आत्माराम भी हैं और रमणकर्त्ता भी, पूर्णकाम भी हैं और कामार्त्त भी। अच्युत होते हुए भी अवतार दशा में सभी प्रपंचों से घिरे हुए हैं। सूरदासजी भगवान कृष्ण को पूर्ण-पुरुषोत्तम परब्रह्म ही मानते हैं—भगवान के इसी रूप की उन्होंने 'सारावली' में वन्दना की है—

> सोभा अमित अपार अखंडित आप आतमाराम।
> पूरनब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम सबविधि पूरनकाम॥[२]

प्रभु का यह पुरुषोत्तम ब्रह्म रस-रूप ही है, यह अखंडित है, राधा के साथ युगल-रूप में वे शाश्वत विहार करते हैं। विश्व के सभी तत्त्व ब्रह्मांड, देव, माया, लक्ष्मी नारायण सभी उन्हीं के रूप हैं और उन्हीं के अंश रूप में उत्पन्न हुए हैं—

> सदा एक रस एक अखंडित आदि अनादि अनूप।
> कोटि कल्प बीतत नहीं जानत विहरत युगल स्वरूप॥[३]
> सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल।
> प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब हैं अंस गुपाल॥[४]

सूरदासजी ब्रह्म के उभय रूप—निर्गुण और सगुण—को स्वीकार करते हैं—

> आदि सनातन एक अनूपम, अविगत अल्प अहार।
> ओंकार आदि वेद असुर हन, निर्गुन सगुन अपार॥[५]

परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व भी सूरदासजी ने दर्शाया है—

> बाल केलि क्रीड़त ब्रज आँगन जसुमति को सुख दीनो।
> तरुन रूप धरि गोपिन के हित सबको चित हरि लीनो॥[६]

माँ यशोदा और रोहिणी के समक्ष कृष्ण छोटे बच्चे की भाँति व्यवहार करते हैं। भोजन करते समय मिर्च की तिक्तता सहन नहीं कर पाते। मिर्च के कुतरते ही खाना छोड़ कर भाग चलते हैं और माँ को दौड़ कर पकड़ना पड़ता है—

---

१. विरुद्ध सर्वधर्माणामाश्रयो युक्त्यगोचरः (निबन्ध)
२. सूरसारावली, छन्द ६६२
३. वही, १०६६।
४. वही, ११०१।
५. वही, ६६३।
६. वही, ८७२।

कबहूं कौर खात मिरचनि को लागी दसन टकोरि।
भाजि चले तब गई रोहिनी लाई बहुत निहोरि॥[1]

इस प्रकार कृष्ण शिशु बनकर बालस्वरूप प्रस्तुत करते हैं किन्तु तुरन्त भोजन के उपरान्त गोपियों के बीच पहुँचते ही वे पूर्ण तरुण हो जाते हैं—

बीरी खाय चले खेलन कों बीच मिली ब्रजनार।
लैचलि पकरि बाँह राधा वै सघन कुञ्ज के द्वार॥[2]

पुष्टि-पुरुषोत्तम रूप

पुरुषोत्तम-ब्रह्म अपनी अनन्त शक्तियों से युक्त हैं। अपनी आनन्द-लीला का औरों को ज्ञान कराने की इच्छा से प्रभु अपने में से ही श्रीवृन्दावन, गोवर्धन, यमुना, श्रीगोकुल, पशु-पक्षी, लता-द्रुमादि को प्रकट करते हैं। 'सारावली' में पुरुषोत्तम-लीला का रहस्य भी मिलता है। जब पुरुषोत्तम को नित्यलीला की इच्छा उत्पन्न हुई तो उन्होंने श्रुतियों को दर्शन दिया और व्रज में उनकी इच्छा पूर्ण करने का वरदान दिया। भगवान कृष्ण बन कर अवतरे और श्रुतियाँ राधा, चन्द्रावली आदि गोपी बनकर आईं और रास-लीला में उनकी मनोकामना की पूर्ति हुई—

दरसन दियो कृपा करि मोहन वेगि दियो वरदान।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्रीमुख कह्यो बखान॥
सो श्रुति रूप होय व्रज मण्डल, कीनो रास विहार।
नवल-कुंज में अंसु बाहु धरि, कीन्हों केलि अपार॥[3]

प्रभु की वृंदावन-लीला शाश्वत है। साक्षात् गोलोक ही गोकुल में प्रविष्ट है। गोपियों के मध्य कृष्ण नित्य-लीला में निमग्न रहते हैं—

जहँ वृन्दावन आदि अजर जहँ कुंज लता विस्तार।
तहँ विहरत प्रिय-प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहं नीर।
सारस हंस चकोर मोर खग, कूजत कोकिल कीर॥
जहँ गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य विराजत, निसदिन करत विहार॥[4]

कृष्ण के लोक-रक्षक रूप का भी मर्म सूरदासजी ने 'सारावली' में स्पष्ट किया है। जब-जब संसार में असुरों ने अधर्म की वृद्धि की तब-तब प्रभु ने असुरों का नाश और धर्म की स्थापना के लिए अवतार धारण किया। प्रभु के चौबीस अवतार कृष्ण के ही अवतार हैं—

---

१. सूरसारावली छन्द ६०८।
२. वही, ६१०।
३. वही, १००७-१००८।
४. वही, २, ३, ४।

जब जब हरि माया ते दानव प्रगट भये हैं ग्राय।
तब तब धरि अवतार कृष्ण ने कीन्हो असुर संहार[1]॥

२. आध्यात्मिक अक्षर-ब्रह्म—अक्षर-ब्रह्म परब्रह्म का सच्चिदानन्द रूप ही है पर इसमें आनन्द की आभा अपेक्षाकृत न्यून है। इस न्यूनता के कारण जब भगवान को रमण करने की इच्छा होती है तब सत्-चित् अथवा आनन्द में से किसी एक या अधिक का आविर्भाव करके प्रकृति या जीव की उत्पत्ति करते हैं। इस व्यापार में क्रीड़ा की इच्छा ही होती है माया की नहीं। अक्षर ब्रह्म के सत् से जगत्, चित् से जीव और आनन्द से अन्तर्यामी का आविर्भाव होता है।[2] ब्रह्मा, शिव और विष्णु प्रकृति के राजस, तामस और सात्विक के अधिकारी हैं और इसी ब्रह्म से प्रादुर्भूत हुए हैं।[3] उत्पत्ति, प्रलय और पालन के हेतु प्रभु ने ये तीन रूप धारण किये हैं। सूरदासजी ने अक्षर-ब्रह्म विषयक वचन भी 'सारावली' में किया है—

अपने आप करि प्रकट कियो है हरी पुरुष अवतार।
माया कियो क्षोभ बहु विधि करि काल पुरुष के संग।
राजस तामस सात्विक अयगुन प्रकृति पुरुष को संग॥[4]

३. आधिभौतिक जगत् ब्रह्म—शुद्धाद्वैत मतानुसार यह सम्पूर्ण जगत परब्रह्म का भौतिक स्वरूप है। ब्रह्म के सत् रूप से २८ तत्वों को लेकर जगत् की सृष्टि होती है।[5] इस प्रकार यह जगत् स्वरूप भी ब्रह्म के समान ही सत्य है। जगत् ब्रह्म का अविकृत परिणाम है। ब्रह्म ही जगत् का कर्ता (निमित्त कारण) है और ब्रह्म ही जगत् का उपादान भी है। शंकराचार्य के अद्वैतवाद में जगत् का निमित्त कारण तो ब्रह्म है पर उपादान माया है। माया मिथ्या है इसीलिए माया निर्मित जगत् भी मिथ्या है। अविकृत परिणाम होने के कारण जैसे जगत् प्रभु की इच्छा का फल है उसी प्रकार वह अन्त में ब्रह्म में लीन भी हो जाता है। वल्लभ मतानुसार जगत् और संसार पर्यायवाची नहीं हैं। जगत् तो ब्रह्म की रचना है पर संसार जीव-कृत है।[6] तात्पर्य यह

---

१. सूर सारावली, छन्द ३५।

२. विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जड़ा अपि
आनंदांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः।
तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, पृ ६२

३. व्यष्टि समष्टिः पुरुषो जीवभेदास्त्रयो मताः।
अन्तर्याम्यक्षर कृष्णो ब्रह्मभेदास्तथा परे।
स्वभाव कर्म कालस्य रुद्रो ब्रह्मा हरिस्तथा।
—तत्व दीप निबन्ध सर्व निर्णय प्रकरण, श्लोक ११९

४. सूर सारावली चरण ६

५. अष्टाविंशति तत्वानां स्वरूपं तत्र वै हरि। (निबन्ध)

६. प्रपंचो भगवत्कार्यस्तद्रूपो माययाभवत्।
तच्छक्त्या विद्यया त्वस्य जीव संसार उच्यते॥
त० दी० नि० शास्त्र प्रकरण, ज्ञान सागर, श्लोक २३

कि जगत् तो अट्ठाईस तत्त्व रूप है और संसार अविद्यात्मक 'मैं और मेरा' का मिथ्या-रूप है। इस संसार से जीव की मुक्ति ज्ञान अथवा भक्ति के द्वारा होती है। जीव के ज्ञान प्राप्त करने पर भी ब्रह्म का प्रपंच जगत् ज्यों का त्यों रहता है, जगत् का लय तो ब्रह्म की इच्छा पर ही निर्भर होता है[1]। प्रलय के समय जगत् ब्रह्म में समा जाता है अतः इसका तिरोभाव हो जाता है नाश नहीं।

सूरदासजी ने 'सारावली' और 'सूरसागर' दोनों में जगत् के सम्बन्ध में उक्त विचार ही प्रस्तुत किये हैं। प्रभु की इच्छा के परिणामस्वरूप ही तत्त्वों की उत्पत्ति हुई—

सारावली—खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपने आप करि प्रकट कियो है हरी पुरुष अवतार ॥[2]
कीन्हें तत्त्व प्रकट तेहीं क्षण सबै अष्ट अरु बीस।
तिनके नाम कहत कवि सूरज निर्गुन सब के ईस ॥[3]

स्पष्ट है कि उपर्युक्त पद में ब्रह्म को ही सृष्टि का कर्ता कहा है।

जीव—जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते हैं उसी प्रकार जीव ब्रह्म के चिदंश से उत्पन्न हुए हैं।[4] जीव अंश हैं और ब्रह्म अंशी। जीव में आनन्द का तिरोभाव है। जीव भ्रम में बंधकर संसार के चक्कर में दुःख पाता है। अविद्या माया, के दुःख से छूटने का एक मात्र उपाय जीव के लिए भगवद्भजन है।

जीव अणु है, चैतन्य उसका गुण है जो कि सर्वव्यापी है।[5] जैसे ब्रह्म सत्य है वैसे ही उसका अंश जीव भी सत्य है। शंकराचार्य के अद्वैतवादी जीव और शुद्धाद्वैत के जीव में भेद है। अद्वैतवाद में जीव की सत्ता माया के भ्रम पर ही है क्योंकि वहाँ ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। जीव की सत्यता तो भ्रम के कारण केवल प्रति-भासित होती है। शुद्धाद्वैत में जीव अंशांशी रूप में सत्य है।

सूरदासजी ने जीव के सम्बन्ध में उतने स्पष्ट कथन नहीं किये हैं जितने ब्रह्म के सम्बन्ध में। वे जीव को ईश्वर का अंश तो मानते हैं क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि ही ब्रह्म का अंश है।

प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण सब हैं अंश गुपाल।[6]

जीव तीन प्रकार के होते हैं—शुद्ध, संसारी और मुक्त। शुद्ध जीव ब्रह्म-स्वरूप

---

१. संसारस्य लयो मुक्तौ न पपंचस्य कर्हिचित्।
कृष्णस्यात्मरतौ त्वस्य लयः सर्वसुखावहः ॥
त० दी० नि०, शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञानसागर. श्लोक २७

२. सूरसारावली चरण ५।

३. वही ७।

४. विस्फुलिंगाइवाग्नेस्तु सदंशेन जड़ाअपि। (निबन्ध)

५. जीवस्य हि चैतन्यं गुणः स सर्वशरीरव्यापी। (अणुभाष्य टीका)

६. सारावली, ११०१।

ही हैं। ये भगवान की नित्य लीला में सदा भाग लेने वाले हैं। गोपियाँ शुद्ध जीव हैं अतः वे शाश्वत रूप से नित्य-विहार में सम्मिलित हैं—

गोपिन मंडल मध्य विराजत निसिदिन करत विहार[1]।

ये शुद्ध जीव अनेक और विभिन्न होते हुए भी प्रभु के साथ एकरूप रहते हैं—

सहस रूप बहुरूप पुनि एक रूप पुनि दोय।[2]

किन्तु यह जीव संसारी होकर अपने सत् रूप को भूल जाता है और आवागमन के चक्र में भटकता रहता है। जब तक उसे भगवत् कृपा से सत् स्वरूप नहीं सूझता कस्तूरी मृग की भाँति अपने ही भीतर वाले तत्व को नहीं जान पाता। संसारी जीवों के अतिरिक्त मुक्त जीव वे हैं जो भक्ति साधन के द्वारा अपने मूल स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं तब वे मुक्त हो जाते हैं। इनके सम्बन्ध में 'सारावली' की अंतिम पंक्तियों में संकेत है—

सीखें सुनें पढ़ें मन राखें लिखें परम चितलाय।
ताके संग रहत हौं निसिदिन आनन्द जन्म बिहाय॥
सारससम्मतसार लीला गावें जुगल चरन चित लावे।
गरभवास बंदी खाने में सूर बहुरि नहिं आवे॥[3]

माया—माया परब्रह्म की शक्ति है पर यह परब्रह्म के अधीन है और जैसे अग्नि में उसकी दाहक शक्ति या सूर्य में उसकी प्रकाश शक्ति सर्वथा अभिन्न रूप में है उसी प्रकार माया भी ब्रह्म में अन्तर्निहित है। यह ब्रह्म के सत्य स्वरूप का किसी प्रकार आच्छादन नहीं कर सकती। माया तो समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त है—

सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सबविधि काल।[4]

इस माया के दो रूप हैं—एक विद्या माया या करण और दूसरी अविद्या माया या व्यामोहिका। विद्या तो भगवान की दासी है। उसी के माध्यम से समस्त सृष्टि की रचना होती है—

माया कियो क्षोभ बहुविधि करि काल पुरुष के अंग।
राजस तामस सात्विक त्रयगुण प्रकृति पुरुष के संग॥[5]

अविद्या माया के कारण सत् जगत् आच्छादित हो जाता है और संसार के चक्र में फँस जाता है। इस अविद्या माया से बचने का उपाय महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग को ही बताया है क्योंकि वही सभी मार्गों की अपेक्षा निरापद है। माया प्रभु की दासी है ऐसा भी सूरदासजी ने दान-लीला के प्रसंग में भगवान् श्रीकृष्ण से ही कहलवाया है—

---

१. सूरसारावली छन्द ४।
२. वही, १०००।
३. वही, ११०६-७।
४. वही, ११०१।
५. वही, ६।

अविगत अगम अपार आदि नाहीं अविनासी ।
परम पुरुष अवतार, जिनहि की माया दासी[1] ॥

शुद्धाद्वैती माया को मिथ्या नहीं स्वीकार करते । माया को ब्रह्म की शक्ति मानते हैं । जो ब्रह्म की शक्ति है वह मिथ्या कैसे हो सकती है ? माया के द्वारा ही समस्त सृष्टि की रचना होती है । माया प्रभु की दासी होकर उनके इंगित पर सृष्टि की रचना करती है । इसलिए माया का भक्त से किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं है । जहाँ ज्ञान-मार्गियों की माया विघ्न बनती है, सिद्धि के मार्ग में रोड़ा बनाती है, वहाँ पर भक्तों को प्रभु के समीप लाती है । 'सूरसागर' में माया की प्रतीक मुरली कही गई है । मुरली का स्वर गोपियों को कृष्ण के पास लाने में साधक बनता है । मुरली प्रभु की दासी है । वह नाद ब्रह्म के द्वारा जगत के मोह से छुड़ाकर प्रभु में आसक्ति उत्पन्न करती है । पुष्टिमार्ग में जहाँ प्रभु के अनुग्रह का महत्त्व हैं, माया करण बनती है । संसार के मोह से जकड़े भक्तों को यम नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधि लगाने की आवश्यकता नहीं है । प्रभु की माया दासी प्रभु की ओर भक्तों को सहज रूप से आसक्त कर लेती है और वे अनायास दुःखद संसार से नाता तोड़ प्रभु के सामीप्य, सान्निध्य और सयुज्य को प्राप्त कर लेते है ।

---

१. दशमस्कंध, पद संख्या १६१८, पृ० सं० ८१६ (ना० प्र० स०) ।

४. हरि लीला

सारावली का प्रतिपाद्य

सूरदासजी ने हरि लीला का बड़ा महत्त्व स्वीकार किया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य की कृपा से उन्हें लीला की अनुभूति हुई थी[1]। 'सारावली' में उनका अन्तःसाक्ष्य है—

> श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदासजी ने हरि लीला को दो रूपों में लिया है—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। 'सारावली' में हरिलीला का सैद्धान्तिक पक्ष है और 'सूरसागर' में व्यावहारिक। 'सूरसागर' में उन्होंने लीला का व्यावहारिक पक्ष रसात्मक रूप में रखा है, लीलाओं का अधिकाधिक विस्तार प्रस्तुत किया है और रसानन्द को प्रवाहित किया है। 'सारावली' में हरिलीला को समझाने का प्रयत्न किया है।

हरि-लीला से तात्पर्य है प्रभु का खेल। खेल ही सृष्टि की रचना है। लीला विविध है। सर्वत्र इसके दर्शन होते हैं। जन्म-मृत्यु, निर्माण-विध्वंस, संयोग-वियोग, आकर्षण-विकर्षण, उल्लास-विषाद, जड़-चेतन, पुरुष-स्त्री, मूर्त-अमूर्त आदि द्वन्द्व हरि-खेल के अनन्त रूप हैं। वेद में उसे ऋत और सत्य कहा है।[2] जैसे एक बीज में दो दल होते हैं उसी प्रकार पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के युग्म से ही सृष्टि-लीला प्रादुर्भूत होती है। पुरुष कृष्ण ही हैं और प्रकृति है राधा। पुरुष-प्रकृति अथवा राधा-कृष्ण का नित्य खेल ही सृष्टि का खेल है। होरी का अर्थ खेल है इसीलिए सृष्टि-रचना अथवा अवतारों की लीला को 'सारावली' में होरी-खेल कहा गया है—

> यहि विधि खेलत हरि होरी हो, होरी हो वेद विदित यह बात।

वेद में ऋत और सत्य से सृष्टि-रचना का निरूपण किया गया है। वह पुरुष-प्रकृति का खेल ही था। 'सारावली' में पुरुष का कथन है—

---

१. तब सूरदासजी स्नान करि आये तब श्री महाप्रभु जी ने प्रथम सूरदास को नाम सुनायो, पाछें समर्पण करवायो और दशमस्कंध की अनुक्रमणिका कही। सो तातें सब दोष दूर भए तातें सूरदास जी कों नवधा भक्ति सिद्धि भई... तब अनुक्रमणिका ते सम्पूर्ण लीला फुरी।...
सूरदास वार्ता प्रसंग १ चौरासी वैष्णवन की वार्ता।

२. ऋतं च सत्यंच द्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्य जायत ततो समुद्रादर्णव।

'अविगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अविनाशी'।[1]

तथा

खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपने आप करि प्रकट कियो है हरी पुरुष अवतार।[2]

इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि-रचना लीला (खेल) है।

प्रभु आनन्द स्वरूप हैं। उनकी लीला भी आनन्दमय है। लीला का अर्थ है 'विलासेच्छा'। परमेश्वर प्रजापति हैं। विलासेच्छा स्वतः प्रादुर्भूत होती है। उसी का फल है सृष्टि-रचना। उपनिषद में कहा है—

प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते।[3]

अर्थात् प्रजापति में प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा होती है। इसीलिए वह तप तपता है और तप-तप कर मिथुन या युग्म को उत्पन्न करता है। यह प्रभु की नित्य लीला है। प्रभु अपने निज लोक में शाश्वत विहार करते हैं। उस निज लोक को वृन्दावन कहा गया है। यह लीला शरत् पूर्णिमा के ज्योत्स्ना धवल वातावरण में सर्वदा होती रहती है। 'सारावली' में इसी का निरूपण आरम्भ होता है—

पूरण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विकासी।
जहँ वृन्दावन आदि अजर जहँ कुंजलता विस्तार।
तहँ विहरत पिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार॥[4]

स्पष्ट है प्रिय-प्रीतम (राधा-कृष्ण) आदि और अजर वृन्दावन में नित्य विहार करते हैं। इस विहार में प्रकृति और पुरुष (राधा-कृष्ण) के अतिरिक्त उनके अंगीभूत गोपियाँ उसमें भाग लेती हैं—

'गोपिन मंडल मध्य विराजत निसदिन करत विहार'[5]

इस लोक का वृन्दावन उसी का प्रतीक है। भक्तगण गोप-गोपियों के रूप में उस आनन्द लीला में प्रवेश करते हैं। प्रभु की इस आनन्द-लीला का क्या प्रयोजन है? इस सम्बन्ध में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने स्पष्ट किया है कि—

"न हि लीलायां किंचित् प्रयोजनमस्ति। लीलाया एव प्रयोजनत्वात्।"[6]

अर्थात् लीला का प्रयोजन केवल लीला है।

"सारावली' में कथन है—

सुर अरु असुर रची हरि रचना सो जग प्रकटहि कीन्हीं॥
क्रीड़ा करी बहुत नाना विधि निगम बात दृढ़ चीन्ही।

---

१. सूरसारावली छन्द १
२. वही, ५
३. प्रश्नोपनिषद १।४
४. सूरसारावली छन्द २
५. वही, ४
६. ब्रह्मसूत्र अध्याय २—पाद १ सूत्र ३३, अणुभाष्य, पृ० ६०१

यहि विधि होरी खेलत खेलत बहुत भाँति सुख पायो।
धरि अवतार जगत में नाना भक्तन चरित दिखायो'[1] ॥

तात्पर्य यह कि स्वयं भगवान् ने लीला के रूप में सृष्टि-रचना का उपक्रम किया और अनेक लीलावतार धारण किए। इस नित्य-विहार लीला का उल्लेख 'सारावली' में कई बार क्रम-क्रम में हुआ है। प्रभु की सृष्टि-रचना के क्रम में ही आसुरी सृष्टि की उत्पत्ति हो गई थी। दानवों के उत्पात से पृथ्वी का बोझ बढ़ जाता है और मानवी सृष्टि संकट में हो जाया करती है। जब-जब इन उत्पातों की चरम सीमा होती है तब-तब प्रभु को लीलावतारों के रूप में आना पड़ता है और खेल-खेल में असुरों का संहार करना पड़ता है—

जब-जब हरि माया ते दानव प्रगट भये हैं आय।
तब-तब धरि अवतार कृष्ण ने कीन्हों असुर-संहार
सो चौबीस रूप निज कहियत वर्णन करत विचार॥'[2]

हरि-लीला का सम्बन्ध पुष्टिमार्गीय भक्ति से है। पुष्टि मार्ग क्या है इसका विवेचन हरिरामजी ने संक्षेप में इस प्रकार किया है—

सर्व साधन राहित्यं फलाप्तौ यत्र साधनं।
फल या साधनं यत्र पुष्टि मार्ग. स कथ्यते।
अनुग्रहेणैव सिद्धिर्लौकिकी यत्र वैदिकी।
न यत्नादन्यथा विघ्नः पुष्टिमार्गः स कथ्यते॥
सम्बन्ध साधनं यत्र फल सम्बन्ध एव हि।
सोपि कृष्णेच्छया जातः पुष्टिमार्ग स कथ्यते॥
यत्र वा सुख सम्बन्धो वियोगे सगमादपि।
सर्व लीलानुभवतः पुष्टिमार्ग स कथ्यते॥'[3]

अर्थात् पुष्टिमार्ग वह है जिसमें समस्त साधनों का रहित होना ही प्रभु-प्राप्ति में साधन है। जहाँ प्रभु का अनुग्रह ही लौकिक तथा वैदिक सिद्धियों का हेतु बन जाता है। जहाँ कोई यत्न नहीं करना पड़ता। जहाँ प्रभु के साथ देहादि का सम्बन्ध ही साधन और फल दोनों बन जाता है, जहाँ प्रभु की समस्त लीलाओं का अनुभव करते हुए वियोग में भी संयोग का सुख हो, वही पुष्टिमार्ग है।

'सारावली' की चौबीस अवतार-लीला में प्रभु के अनुग्रह का ही वर्णन है। समस्त साधनों को यहाँ भ्रम मात्र कहा गया है।

'कर्म जोग पुनि ज्ञान उपासन सबही विधि भरमायो।'

इन सब साधनों से रहित होना ही लीला-भेद जानना है। प्रभु-लीला में भाग

---

१. सूरसारावली, छंद ३२८-२६
२. सूर सारावली, छंद ३६
३. श्री हरिराय वाङ्मुक्तावली, पुष्टिमार्ग लक्षण

लेना ही प्रभु-सेवा है। सेवा की यह क्रिया ही पुष्टिमार्गीय भक्ति है जो सर्वथा निरापद और सरल है।

सरस सम्मतसर लीला गावैं जुगल चरन चित लावैं।
गरभवास बंदीखाने में 'सूर' बहुरि नहिं आवैं।

इस पुष्टिमार्गीय भक्ति का लक्ष्य था प्रेमपूर्ण प्रभु के प्रेम को प्राप्त करना और गोपियों के भाव का अनुसरण करना। गोपियाँ प्रभु के सुख-विलास की सारी साज-सज्जा करतीं और राधा-कृष्ण के संयोग-संभोग को जालरंध्रों से देखकर अमित आनन्द का अनुभव करती हैं। भक्त भी प्रभु के विलास-लीला में इसी प्रकार तटस्थ भाव से सम्मिलित होता है। वह राधा-कृष्ण के नित्य-विहार का गान अथवा श्रवण करने तथा रसानन्द में मस्त रह कर सब प्रकार के सांसारिक भावों से दूर रह कर आप्तकाम होता है। भक्त भगवान के सुख-विलास के सुख से सुखी होता है। उसका अपना सुख सुख नहीं। जिस प्रकार गोपियाँ राधा-कृष्ण के विलास को देखकर सुख का अनुभव करती हैं उसी प्रकार भक्त प्रभु के नित्य-विहार का गान कर परमानन्द की प्राप्ति करता है। यही हरि-लीला में भाग लेना है। इस प्रकार हरि-लीला में भाग लेकर प्रभु की सेवा करना पुष्टिमार्गीय भक्ति का चरम लक्ष्य है। यही 'सारावली' का प्रतिपाद्य है।

पुष्टिमार्गीय सेवा-पद्धति—पुष्टिमार्ग का व्यावहारिक रूप सेवाओं में सन्निहित है। सेवा के तीन सोपान माने गए हैं—गुरु-सेवा, संत-सेवा और प्रभु-सेवा। प्रभु चरणों में पहुँचने के लिए गुरु और सन्तों का माध्यम आवश्यक है। गुरु और सन्त दोनों एक ही हैं इसीलिए सूरदासजी ने 'सारावली' में गुरु के प्रति अपनी अपार श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए अपने सारे कृतित्व को गुरु चरणों में समर्पित किया है—

करम जोग पुनि ज्ञान उपासन सबही विधि भरमायो।
श्रीवल्लभ गुरु तत्व बतायो लीला भेद बतायो[1]॥

तात्पर्य यह कि यदि सूरदासजी को महाप्रभु वल्लभाचार्य के चरणों की शरण न मिली होती तो वे कर्म, योग, ज्ञान और उपासना के भ्रम में ही रह गए होते। उन्होंने लीलावतार भगवान श्रीकृष्ण की सरस लीलाओं का जो रस-सागर प्रस्तुत किया वह वे न कर सकते। साथ ही उन्होंने जब गोस्वामी विट्ठलनाथजी के निर्देशन में प्रभु के उज्ज्वल रूप का दर्शन पाया तथा मधुरा भक्ति की रसानुभूति का भादन किया तब उनका हृदय गद्गद् हो उठा और उन्होंने गुरु के प्रति अपने श्रद्धाभाव का इस प्रकार ज्ञापन किया—

'गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।'[2]

इस प्रकार 'सारावली' में महाप्रभु वल्लभाचार्य और गोस्वामी विट्ठलनाथ के प्रति अपने सहज भाव का प्रकाशन करके सूरदासजी ने गुरु सेवा और संत सेवा की

---

१. सूर सारावली, छन्द ११०२
२. वही, पृ० १००२

ओर संकेत प्रस्तुत किए हैं। सम्पूर्ण 'सारावली' प्रभु के लीला के व्याख्यान में ही लिखी गई है। अतः हरि-लीला-प्रतिपादन के अध्ययन से इसमें प्रभु-सेवा की रीति ही प्रस्तुत की गई है।

पुष्टिमार्गीय प्रणाली में हरि-लीला में रमा जाना ही अन्तिम मनोरथ है। भक्त जन प्रभु की वात्सल्य, सख्य और माधुर्य लीला में निशिदिन मग्न होकर आनन्द लाभ करते हैं। 'सारावली' में ललितादिक सहचरियों के माध्यम से भक्तों की आनन्दानुभूति का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

निसा भोर कबहूं नहीं जानत प्रेम मत्त अनुराग।
ललितादिक सोवत सुख नैननि जुर सहचरि बड़भाग' ॥

पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति दो प्रकार की है—नैत्यिक और वार्षिक। नित्य-सेवा विधियाँ आठ हैं—मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती और शयन। वार्षिक सेवा विधि में पर्व, ऋतु-उत्सव और जयन्तियाँ हैं। 'सारावली' में संवत्सर लीला के क्रम में नैत्यिक और वार्षिक सेवाओं पर किंचित संकेत मिलता है। संक्षेप में इनको इस प्रकार देखा जा सकता है—

मंगला— जसुमति मातु जगावति भोरहि जागे अंबुज नैन।
धरी मुखारो और कलेऊ कीने जल अस्नान ॥६०२

शृंगार— करि शृंगार चले दोउ भइया खेलनि को सुखदान ॥६०३

ग्वाल— कहुँ खेलत मिलि ग्वाल मंडली आंख मीचनी खेल।
घड़ा घड़ीको खेल सरवन में खेलत हैं रस-रेल ॥६०४

राजभोग— बहुविधि के पकवान बनाये परसति जसुमति माय।
आरोगत बल मोहन दोऊ सुख देखत ब्रजराज ॥६००

शयन— नंद धाम हरि बहुरि पधारे पौढ़ि रहे निज सैन ॥६०२

वार्षिक सेवा विधि के समस्त पर्वों का उल्लेख तो नहीं मिलता किन्तु जन्माष्टमी का उल्लेख 'सारावली' में मिलता है—

कृष्ण जन्माष्टमी— नित प्रति मंगल रहत महर के, नित प्रति बजत बधाई।
नित प्रति मंगल कलस धरावत नित प्रति वेद पढ़ाई ॥८७०

राधाष्टमी—श्री वृषभानुराय के आंगन नित प्रति बजत बधाई।
नित प्रति मिलि सुनि राज मंडली मंगल घोष कराई ॥८७१

इन दोनों पर्वों के अवसर पर जन्म-बधाई के पद मंदिरों में गाये जाते हैं।

ऋतु उत्सवों में वसन्त-डोल (१०२४-१०५२) और होली (१०५३-१०८६) का विस्तृत वर्णन 'सारावली' में मिलता है। दान-लीला, मानलीला और निकुंज-लीला का निरूपण विस्तार से हुआ है। पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति में वामन-जयन्ती नृसिंह जयन्ती और रामजयन्तियाँ मनाई जाती हैं। 'सारावली' में वामन, नृसिंह और राम अवतार का गान विस्तार से हुआ है। सम्प्रदाय में मनाये जाने के

कारण 'सारावली' में इन जयन्तियों की तिथि-वार आदि का उल्लेख भी हुआ है—

राम जयन्ती— पुष्य नक्षत्र, नौमी जु जनम दिन लगन सुद्ध सुभवार[1]

वामन जयन्ती— भादों श्रवण द्वादशी सुभ दिन पर्‌यौ विप्र हरि-रूप।[2]

श्रीकृष्ण-जयन्ती—आठैं बुद्ध रोहिनी आई शंख चक्र वपु धारी।[3]

बलराम जयन्ती—भादों वदि छठ को शुभ दिन प्रकट भए बलभाई।[4]

'सारावली' में धार्मिक दृष्टि प्रमुख है। पुष्टिमार्ग में दीक्षित भक्तों के लिए इस ग्रन्थ की रचना हुई है। भक्तजन भगवान् के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं। भगवान् की अवतार लीलाओं का पारायण उनका नैत्यिक कर्म होता है। ऐसे सद्‌गृहस्थों के लिए ही प्रभु की अवतार लीलाओं तथा निकुंज लीलाओं के विवरण 'सारावली' में प्रस्तुत किये गये हैं। अवतारों के साथ-साथ पद-पद पर ईश्वरत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ में गम्भीर सैद्धांतिक मीमांसा तथा तत्त्व-दर्शन का अभाव है। कारण यह है कि शास्त्राभ्यासी विद्वत् जनों के लिए ग्रन्थ का निर्माण न होकर साधारण भक्त जनों के लिए हुआ था। ग्रन्थ के अन्त की निम्नलिखित पंक्तियां इस तथ्य की पोषक हैं—

धरि जिय नेम सूर सारावलि उत्तर दक्खिन काल।
मनवाँछित फल सबही पावै मिटे जन्म जंजाल॥
सीखैं सुनैं पढ़ैं मन राखै लिखैं परम चित लाय।
ताके संग रहत हौं निसि दिन आनँद जन्म विहाय॥
सरससमत्सर लीला गावै चरन जुगल चित लावै।
गर्भवास बन्दी खाने में सूर बहुरि न आवै॥[5]

काव्य सौंदर्य—'सारावली' काव्य-ग्रन्थ नहीं है। यह धार्मिक अथवा सिद्धान्त निरूपक ग्रन्थ है। इसलिए इस ग्रन्थ में काव्य-कला का अनुसंधान करना वांछनीय नहीं है। इसमें लीलाओं का संक्षिप्त विवरण देकर प्रभु के ईश्वरत्त्व अथवा सरस लीलाओं पर सांकेतिक मर्मोद्‌घाटन किया गया है। ऐसी प्रक्रिया में काव्यात्मक पद-शैली की कल्पना ही निरर्थक है। फिर भी 'सूरसागर' लिखने वाले सिद्ध कवि की वाणी में यत्र-तत्र काव्याभास के दर्शन होते हैं। ग्रन्थारम्भ में ही जो 'होली-रूपक' प्रस्तुत किया गया है वह काव्यात्मक है। पद की टेक है—

'खेलत यहि विधि हरि होरी हो होरी हो वेद विदित यह बात।[6]

होली एक खेल है। हरि की लीला भी परमेश्वर का खेल है। अतः परब्रह्म

---

१. सूर सारावली, १६०।
४. वही, छन्द ४२२।
२. वही, ३३१
३. वही, ३६५।
५. वही, ११०५-७।
६. वही, १।

के निर्गुण रूप तथा इनके पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम रूप का विवेचन कवि ने होली के खेल के रूपक में प्रस्तुत किया है। पुष्टिमार्गियों के अनुसार प्रभु शाश्वत वृन्दावन में विहार करते हैं जिसमें प्रिया-प्रियतम और सहचरियों का रास और विहार होता है। यह सब होली-रूपक में सटीक हो जाता है। गोपियों का मंडल होली-मंडल के सर्वथा अनुरूप है। रूपक का सांगरूपक-तत्व बड़ी युक्ति से विकसित किया गया है। पहले नित्य-विहार की होली शाश्वत-वृन्दावन में प्रस्तुत की गयी फिर उसे आगे बढ़ाया गया। जिस प्रकार होली खेलने वाले पहले एक स्थल पर रंगोली करते हैं फिर उनका जुलूस आगे बढ़ता है और वे सारे ग्राम में बढ़ते जाते हैं उसी प्रकार पहले अव्यक्त ब्रह्म से प्रभु का पुरुषोत्तम रूप हुआ। अव्यक्त रूप था—

> अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी—

यह व्यक्त बना और उसका प्रिया-प्रियतम रूप हो गया—

> पूरण ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी।

और फिर—

> जहँ वृन्दावन आदि अजर जहँ लता कुंज विस्तार।
> तहँ विहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ॥[1]

शाश्वत वृन्दावन जो शून्य में स्थित है, प्रिया-प्रियतम के विहार का स्थल बना और उसमें गोपियों का मंडल भी रच गया। फिर इसके उपरान्त उसका विकास हुआ—

> खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार।[2]

जिस प्रकार होली के खेलने वाले बढ़ते हैं और उनका मंडल बढ़ता और खेल में व्यापक विस्तार होता है उसी प्रकार प्रभु ने सृष्टि-रचना विचार किया और खेल-खेल में ही समस्त सृष्टि की रचना हो गयी। सृष्टि के अट्ठाईस तत्व, ब्रह्मा और ब्रह्मा द्वारा व्यापक सृष्टि के कार्य चल निकले। होली-खेल के मध्य उपद्रवी तत्व भी यदा-कदा उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार सृष्टि-रचना की प्रक्रिया के अन्तर्गत ही आसुरी सृष्टि का भी प्रादुर्भाव हुआ। समुद्र-मथन-क्रम में देवासुर-संग्राम में यही रूप दृष्टिगोचर होता है—

> दानव देव लड़े आपस में कीन्हों युद्ध अपार।
> विविध शस्त्र छूटत पिचकारी चलत रुधिर की धार ॥[3]

शस्त्रों से रक्त की धारा का निकलना और रंग भरी पिचकारी का रूप-सादृश्य रूपक को बिम्ब प्रदान करता है। होली खेल के उपरान्त होली के खेलने वालों को भोजन-वस्त्र का उपहार दिया जाता है। इस उपहार को फगुआ कहते हैं। 'सारावली' में प्रभु की विराट होली में भी फगुआ का विवरण मिलता है—

---

१. सूर सारावली, छन्द २।
२. वही, ५।
३. वही, २६।

एकन को फगुआ इन्द्रासन इक पताल को साज ।[१]

आठ लोकों, सात द्वीपों और सात पातालों में देवों, मनुष्यों और असुरों को यथास्थान फगुआ दिया गया—

अपने अपने स्थान पर तब फगुआ दियो चुकाय ।[२]

इस प्रकार समस्त सृष्टि-रचना होली खेल के रूपक में प्रस्तुत की गयी है।

२. बाल-लीला—बाल-लीला में सूर की वाणी अनायास काव्यात्मक हो जाती है। स्वभावोक्ति सरस और मनोहारी हो जाती है, उसमें कलात्मकता स्वतः समा जाती है। 'सारावली' में राम और कृष्ण के बाल-वर्णन में अलंकारों के दर्शन होते हैं। राम-बाल-वर्णन—

घुटुरुन चलत कनक आँगन में कौशल्या छवि देखत।
नील नलिन तनु पीत अँगुलिया घन दामिनि द्युति पेखत ॥[३]

कनक आँगन और घन-दामिनि के उपमान ही द्रष्टव्य नहीं हैं, भाषा की ललित शब्द योजना 'सूरसागर' की पदावली का स्मरण दिलाती है। इसी प्रकार बाल-राम का रूप-वर्णन भी आलंकारिक छटा से चमत्कृत है—

अलकावलि मुक्तावलि गूंथी डोर सुरंग विराजै।
मनहु सुरसरी धार सरस्वति यमुना मध्य विराजै ॥[४]
खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार।
खंजन जुग मनों लरत लराई कीर बुझावत रार ॥[५]
कुंडल ललित कपोल विराजत झलकत आभा गंड।
इंदीवर पर मनो देखियत रवि की किरण प्रचंड ॥[६]

इस प्रकार की कमनीय उत्प्रेक्षाएं राम के नखशिख को मनोहारी बना देती हैं और 'सूरसागर' के बाल-कृष्ण को स्मरण कराती हैं। बाल-चेष्टाओं की स्वभावोक्तियाँ भी यहाँ मिलती हैं—

निज प्रतिबिंब विलोकि मुकुर में हँसत राम सुखरास।[७]
लघु लघु ग्रास राम मुख मेलत आपु पिता मुख मेलत ॥[८]

कृष्ण बाल-वर्णन—

पीताम्बर अरु श्याम जलद वपु निरखि सफल दिन लेख्यो ॥[९]

---

१. सारावली, छन्द २७।
२. वही, ३५।
३. वही, १६६।
४. वही, १७३।
५. वही, १७५।
६. वही, १७७।
७. वही, १८३।
८. वही, १८६।
९. वही, ३६६।

जैसे मीन करत जल क्रीड़ा जल में रहत समाई।
ज्यों सुव काल प्रकट इक पतहू लखि न सकत तेहि कोई ॥[1]
जैसे ससि प्रगटत प्राची दिसि सकल कला भरिपूर।
जसुमति कोख आप हरि प्रगटे असुर-तिमिर कर दूर ॥[2]
अति आतुर ह्वै चली भुंड जुरि सिर सुमननि बरसावें।
मानों रीझ मधुप धरनी को रस पराग बरसावें ॥[3]

'सारावली' में बाल-कृष्ण का वैसा सुन्दर वर्णन नहीं है जैसा कि 'सूरसागर' में। कारण यह है कि यहाँ कवि 'भागवत' के ढंग पर कथा-कथन और ईश्वरत्व निरूपण में संलग्न है।

दान-लीला—'सारावली' की दान-लीला में कवि ने 'सूरसागर' की काव्यात्मक लीलाओं की भाँति कुछ विवरण दिये हैं अतः यहाँ भाषा अलंकृत है और उसमें वैसा ही वाग्वैदग्ध्य प्राप्त होता है—

करि शृंगार चली चन्द्रावलि नखशिख भूषन साजें।
ज्यों करिनी गजराज विलोकत ढूँढत है अति गाजें ॥[4]

जिस प्रकार 'सूरसागर' में राधा का हस्तिरूपक[5] है। राधा कामोन्मत्त होकर कृष्ण से मिलने की इच्छा से पनघट पर जाती है और उसी प्रकार यहाँ चन्द्रावली कृष्ण से मिलने जा रही है।

कृष्ण और चन्द्रावली के विनोदात्मक विवाद से वाक्पटुता के दर्शन होते हैं। उसमें व्यंग्योक्ति और तर्कों की कमनीयता मिलती है—

अचल राज गोवर्धन जैसे वृन्दावन मंझार ॥
जो तुम राजा आप कहावत वृन्दावन की ठौर।
लूट लूट दधि खात सबन को सब चोरन के मौर ॥[6]

---

१. सूरसारावली, ३८४।
२. वही, ३९०।
३. वही, छन्द ३९९।
४. वही, ८७६।
५. गति गयंद कुच कुंभ किंकिनी मनहु घंट झहनावें।
मोतिन हार जलाजल मानो खुभी दंत झलकावें ॥
धंदक मनहुं महाउत मुख पर अंकुस बेसरि लावें।
रोमावली सूंड तिरनी लौं, नाभि सरोवर आवें ॥
+ + +
गज सरदार सूर को स्वामी देखि देखि सुख पावें ॥
सूरसागर, पद २०५७।
६. सूरसारावली, छन्द ८८२।

चोरी करत भक्त के चित की अरु दधि अरु नवनीत ।
सखा वृन्द सब मीत हमारे बड़ी राज रजनीत ।।[१]

निकुंज-लीला—

निकुंज-लीला में शब्दावली विषयानुसार सरस हो गयी है। शृंगार रस की ललित पदावली में मधुर वर्णों का उचित प्रयोग दिखाई पड़ता है। जैसे—

नाना केलि सखिन संग विहरत नागर नन्द कुमार ।
आलिगन चुम्बन परिरंभन भेंटत भरि अंकवार ।।[२]

उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का समावेश पदावलियों में मिलता है। जैसे—

स्रम जल विन्दु इन्दु आनन पर राजत अति सुकुमार ।
मानों विविध भाव मिलि विलसत मगन सिंधु रस सार ।।[३]
तो बिन स्याम रहत हैं ऐसे जैसे जल विन मीन ।[४]
तू छवि सिंधु विरह व्रजनायक छुद्र नदी नहिं भावै ।[५]
विरह विराग महायोगी ज्यों बीतत है सब याम ।।[६]

स्मरण और भ्रान्तिमान अलंकार के भी अनेक उदाहरण प्राप्त हैं—

गुंजत श्रवनन मधुप सुनत हैं तव श्रुति की सुधि आवै ।[७]
सुनत कोकिला शब्द मधुर धुनि कमल नयन अकुलात ।
तेरे बोल करन सुधि जिय में विरह मगन ह्वै जात ।।[८]
तुव नासापुट गात मुक्त फल अधर बिम्ब उपमान ।
गुंजाफल सबके सिर धारत प्रगटी मीन प्रमान ।।[९]

दृष्टकूट पदावली—

दृष्टकूट पद-रचना सूर की अपनी विशेषता है। उन्होंने 'सूरसागर' में लगभग सौ दृष्टकूट पदों की रचना की है। 'साहित्य लहरी' तो सारा ग्रन्थ ही दृष्टकूटों में रचा गया है। यहाँ भी मान-लीला प्रकरण में कवि ने दृष्टकूटों की रचना की है। ललिता राधा के पास जाती है और दृष्टकूटों में पहले तो वह राधा को शृंगार करने के लिए प्रेरित करती है—

---

१. सूरसारावली, छन्द ८८३ ।
२. वही, छन्द ८९७ ।
३. वही, छन्द ८९८ ।
४. वही, छन्द ९२३ ।
५. वही, ९२८ ।
६. वही, छन्द ९२९ ।
७. वही, छन्द ९३४ ।
८. वही, छन्द ९३५ ।
९. वही, छन्द ९३६ ।

सिंधु सुता सुत ता रिपु जननी सुन मेरी तू बात।
काम पिता वाहन भख को तनु क्यों न धरत निज गात ॥[1]

अर्थात् हे हंसगमनी तू मेरी बात मान। तू मुक्ता को धारण करके अपना शृंगार क्यों नहीं करती।

वह कहती है कि कृष्णजी तेरे विरह में रात दिन तेरा ही नाम ले रहे हैं और तेरी ही राह पर आँख लगाये हैं—

वायस अजा शब्द मनमोहन रटत रहत दिन रैन।
तारापति के रिपु पर ठाढ़ें देखत हैं हरि नैन ॥[2]

निष्कर्ष यह है कि 'सारावली' काव्य-ग्रन्थ नहीं है, यह एक धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें हरि-लीला का सिद्धान्त-निरूपण प्रमुख रूप से है। पुष्टिमार्गीय भक्तों के लिए पाठ के हेतु इस रचना का निर्माण हुआ था। श्री प्रभुदयाल मीतल जी का मत है कि यह 'पुरुषोत्तम सहस्त्र नाम' के आधार पर रचित 'सूरदास' की एक स्वर्गिम रचना है।[3] किन्तु पुरुषोत्तम सहस्त्र नाम' एक बहुत छोटी पुस्तक है। उसमें भागवत के सूत्र-मात्र ही मिलते हैं। उसके आधार पर सारावली' की रचना नहीं हो सकती। 'सारावली' में 'श्री मद्भागवत' की वृहद् कथा का सार है और दान-लीला, मान-लीला और नित्य बिहार का अलग से विवेचन है। भागवत की लोक-प्रियता निर्विवाद है। धार्मिक गृहस्थ तथा पुष्टिमार्गी कृष्ण-भक्त भागवत के नित्य पाठ में विश्वास रखते हैं। इसीलिए 'सारावली' में भागवत का भावानुवाद इसी रूप में प्राप्त होता है। सूरदास जी ने 'सूरसागर' के भी भागवतीय वृत्तों का भावानुवाद यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है। अनुवाद कला भी काव्य का एक पक्ष है। किन्तु एक तो सूरदास जैसे प्रज्ञाचक्षु सहज कवि के लिए अनुवाद करना सरल नहीं, दूसरे लगता है, इस कार्य में सूरदास जी को सफल नहीं कहा जा सकता। 'सारावली' में अनेक ऐसे स्थान हैं जहाँ न्यूनपदत्व इतना अधिक है कि बिना मूल को सम्मुख रखे विषय का तारतम्य ही नहीं मिलता। 'सूरसागर' में भी ऐसी ही वृत्ति है। जहाँ-जहाँ कवि शब्दशः भागवतानुसार वर्णन करता है वहाँ-वहाँ भाषा बड़ी लचर हो जाती है तथा कथा-कथन भी सफलतापूर्वक नहीं हो पाता, कवि की कल्पना कुण्ठित-सी दृष्टिगत होती है। भाषा का सारा माधुर्य और अलंकरण लुप्त हो जाता है। यही कारण है कि डॉ० टंडन जैसे भाषा-मर्मज्ञ भी 'सारावली' की शिथिल रचना देखकर संशय करने लगते हैं कि यह रचना एक सिद्ध कवि की कैसे हो सकती है ?

'सारावली' अथवा 'सूरसागर' में भागवतीय दृष्टिकोण देखते हुए यह भी ध्यानस्थ है कि सूरदास जी ने भागवत के समस्त इतिवृत्त को ग्रहण करना नहीं चाहा, 'भागवत' तो ज्ञान का भण्डार है उसमें सृष्टि रचना के विस्तार में न केवल अखिल-

---

१. 'सूर सारावली' छन्द ६३७।
२. वही, छन्द ६५५।
३. वही, भूमिका पृ० ४६

ब्रह्माण्ड की रचना प्रक्रिया है वरन उसमें अनेक राजाओं की वंशावलियों और सामाजिक रीति-नीतियों के साथ धर्म, सांख्य, मीमाँसा और वेदान्त आदि का विस्तृत विवेचन है। सूरदास जी ने हरि-लीला मात्र को ही भागवतीय वृत्त का सार समझा है और उसी का निरुपण अपने ग्रन्थों में संक्षेप में प्रस्तुत किया है। कदाचित उनके मत में भक्त-जनों को भागवतीय ज्ञान-विज्ञान में उलझने से कोई लाभ नहीं। अतः हरि-कथा मात्र को ही भागवत से ले लेना उनका उद्देश्य था। इस कारण भी भावानुवाद का कवि-कर्म अपने ही सूत्रों में बँध गया। सूरदास जी सहज प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। जब वे भौतिक रूप से किसी लीला का रस-रूप प्रस्तुत करते थे तभी उनकी कल्पना मुक्त आकाश में स्वच्छन्द विचरती थी और वे सरस काव्य की रचना करते थे किन्तु जब अनुवाद या भावानुवाद के शिकंजों में रुद्ध हो जाते थे तब उनकी वाणी शिथिल हो जाती थी। उसमें पंडिताऊपन का आजाना स्वाभाविक हो जाता था। यही कारण है कि 'सारावली' में रसात्मक ललित-पदावली कम मिलती है। उपरिलिखित पाँच प्रकरण ही ऐसे हैं जहाँ किंचित काव्य-छटा के दर्शन होते हैं। 'सारावली' की रचना सामान्य भक्त-जनोंके पाठादि के निमित्त हुई थी। अतः 'सारावली' की अपनी अलग उपयोगिता है। ज्ञान के साहित्य से जो कुछ प्राप्त हो सकता है, इसमें भी सुलभ है, काव्य-सौष्ठव इस का लक्ष्य नहीं है। अतः काव्य-सौन्दर्य के अपेक्षाकृत अभाव में इसकी अवमानना अथवा इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार भी दुश्शंका करना उचित नहीं है।

———

सूर सारावली

बन्दौं श्री हरिपद सुखदाई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधरे कौं सब कुछ दरसाई ।
बहिरो सुनै गूंग पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई ।
सूरदास प्रभु की सरनागत बारंबार नमो ते पाई ॥

(यह पद ग्रंथ का मंगलाचरण है । 'सूरसागर' में भी यही पद कुछ शब्दों के अन्तर से आदि में ही मिलता है । कदाचित् एक ही पद की पुनरुक्ति मंगलाचरण के लिए की गई है । अर्थ स्पष्ट है ।)

मैं प्रभु के सुखदायी चरणों की वन्दना करता हूँ । (सुखदायी विशेषण की व्याख्या अगली पंक्तियों में है ।) जिसकी कृपा से लंगड़ा पहाड़ को लांघ सकता है और अन्धे को सब-कुछ दिखाई पड़ने लगता है । श्रवण-शक्ति से रहित बहरा सुनने लगता है और गूंगा व्यक्ति बोलने लगता है । दीन-हीन भिखारी राज-छत्र धारण करके चलता है । इस प्रकार प्रभु की शरणागति को पाकर मैं बारम्बार प्रभु को नमस्कार करता हूँ ।[1]

---

१. उपर्युक्त साधारण अर्थ में संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक की छाया प्रतीत होती है—

मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम् ।

इसका अविकल अनुवाद गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में इस प्रकार मिलता है—

मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सु दयाल द्रवहु सकल कलिमल दहन ॥

सूरदास वाले पद में संस्कृत श्लोक अथवा तुलसी के सोरठे से कुछ कथन अधिक है । उन दोनों में केवल मूक और पंगु का ही उल्लेख है, किन्तु सूरदास वाले पद में 'अन्धे को सब कुछ दिखाई पड़ना' और 'रंक का राजा होना' भी कहा गया है । वास्तव में सूरदास ने इन पंक्तियों में अपने निजी अनुभवों को जोड़ दिया है । स्फुट पदों की रचना के उपरान्त जब सूरदासजी को ख्याति मिली, वे अष्टछाप के शिरमौर और 'पुष्टिमार्ग के जहाज' के रूप में माने जाने लगे थे, तब उनके हृदय में प्रभु की कृपा के सम्बन्ध में विशेष आस्था हो गई । पुष्टिमार्गी होने के कारण वे प्रभु के अनुग्रह को ही सारा श्रेय देते थे, इसीलिए आत्म-निरीक्षण करते हुए उन्होंने कहा कि कहाँ मुझ जैसा पंगु—विपन्न अन्धा—सर्वथा अंगहीन और कहाँ सूरसागर की रचना जैसे पहाड़ का लंघन ! पर यह हो ही गया । मैं जन्मांध, जिसने कभी कुछ देखा ही

(नित्य विहार)

रागिनी काफी[१]

खेलति यहि विधि हरि होरी हो, होरी हो, वेद विदित यह वात।

यह वेद विदित है कि प्रभु ने इस प्रकार होली खेली। होली से तात्पर्य हरि-लीला से है। लीला से तात्पर्य प्रभु की 'विलासेच्छा' है। सर्वव्यापक ओंकार ने स्वेच्छा से समस्त सृष्टि की रचना की। यही हरिलीला है, यही होली का खेल है। पुष्टिमार्गियां

नहीं, पर मुझे सव कुछ दीखा और मैंने समस्त दृश्यमान जगत् का 'सूरसागर' में वर्णन किया। मैं तो समस्त ज्ञान के लिए विलकुल वहरा था, पर मैंने सव सुन लिया। मेरे पास वाणी न थी, पर मैं प्रभु के गान में पटु सिद्ध हुआ और केवल इन्द्रियों से ही सम्पन्न न हुआ वरन् मुझ जैसा सूरदास भिखारी अव अष्टछाप के सिरमौर के रूप में छत्रधारी हो गया है। इस प्रकार पद की शब्दावलियाँ विशेष अर्थ को देने वाली हैं। सूरदास की पंक्तियाँ मौलिक हैं। इनमें संस्कृत श्लोक का भावानुवाद मात्र नहीं है। कवि के मन की आनन्दानुभूति, उल्लास और प्रभु-चरणों के प्रति सश्रद्ध आभार-प्रदर्शन इनमें ध्वनित है।

१. सम्पूर्ण सारावली काफी रागिनी में गायी गई है। सूरदास जी संगीतज्ञ थे। उनकी समस्त पद-रचना में संगीत के स्वरों, लोक-धुनों और छन्दों का संपृक्त रूप है। राग काफी में ग नि कोमल तथा शेप स्वर शुद्ध लगते हैं। सुन्दरता के लिए कहीं-कहीं तीव्र गाँधार और तीव्र निपाद भी लगा दिये जाते हैं। इसका वादी स्वर पंचम और संवादी स्वर पड़्ज है। यह राग वड़ा मधुर है। इस राग का तालमेल होली लोकगीत से खूव मिलता है इसीलिए इस राग में होलियां खूव गायी जाती हैं। होली के गान में उल्लास का इतना आधिक्य होता है कि वैठकें लम्वी होती हैं। चौवीस घंटे से भी अधिक लोग निरन्तर गाते रहते हैं। 'सारावली' भी होली गान के रूप में ही लिखी गयी है। पद की टेक होली है और 'सारावली' वर्णित समस्त प्रभुलीला, सृष्टि रचना तथा दशावतार के क्रिया-कलाप होली-रूपक के रूप में गाये गये हैं। इस प्रकार राग के स्वर होरी गान के साथ मेल खाते हैं इसीलिए पद के ऊपर राग काफी का उल्लेख उचित ही हुआ है। टेक के उपरान्त दो तुकों वाले जो छन्द उस ग्रन्थ में हैं वे हैं संरसी या कवीर। यह मात्रिक सम छन्द है जिसके प्रत्येक चरण में २७ मात्राएँ होती है, यति सोलह-ग्यारह पर होती है। अन्त में एक गुरु और लघु का विधान होता है। संगीतज्ञ कभी-कभी अन्त तक ठीक निर्वाह नहीं करता अतः अन्त में दो गुरु हो जाते हैं और कुल मात्राएँ २८ हो जाती हैं।

कवीर छन्द होली के साथ सदा गाया जाता रहा है। प्रायः होली गान के साथ-साथ गायक कवीर भी गाया करते हैं। इस प्रकार सारावली की पद रचना में संगीत (राग काफी) लोकधुन (होरी) और छन्द (कवीर) का अनुरूप योग रखा गया है।

की धारणा है कि प्रभु का आदि रूप पुरुषोत्तम रूप है। यह ब्रह्म सच्चिदानन्द अथवा सदानन्द है। शुद्धाद्वैत के अनुसार ब्रह्म के उभय रूप है—निर्गुण और सगुण। निर्गुण अक्षर ब्रह्म परब्रह्म का ही रूप है किन्तु इसमें आनन्द की मात्रा अपेक्षाकृत न्यून है। जब भगवान को रमण करने की इच्छा होती है तो सत्-चित्-आनन्द में से किसी एक या अधिक का आविर्भाव कर लेते हैं यही सारावली की आरम्भिक पंक्तियों में व्यक्त है—

अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी ॥१॥

ब्रह्म का मूल रूप अविगत है, निराकार है। वही आदि और अनन्त है। उसकी कोई उपमा नहीं है, वह अनिर्वचनीय है। उसे देखा नहीं जा सकता क्योंकि है ही वह अविगत। वह अविनासी और नित्य है। किन्तु यह अक्षर-ब्रह्म ही पूर्ण ब्रह्म के रूप में पुरुषोत्तम रूप मे प्रकट होता है। तात्पर्य यह कि जब प्रभु को रमण करने की इच्छा होती है तो उनका अविगत रूप प्रकट रूप हो जाता है। चित और आनन्द के आविर्भाव से वे अपने शाश्वत निज लोक की अवतारणा करते हैं और वे अपने लोक में शाश्वत विलास करते हैं।

जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहं कुंजलता बिस्तार।
तहँ बिहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ॥२॥

उनके इस लोक मे शाश्वत वृन्दावन है जहाँ सदा नवीन रहने वाले कुंज लताओं का विस्तार है। इस शाश्वत वृन्दावन मे प्रिया और प्रियतम (कृष्ण और राधा) विहार करते हैं और ओंकार के रूप मे भृंगो का गुंजार होता है।

रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहं नीर।
सारस हंस चकोर मोर खगकूजत कोकिल कीर ॥३॥

वहा भी यमुना का रत्नजटित तट है और यमुना जल अत्यन्त पुनीत और स्वच्छ है। उसमें सारस, हंस, चकोर, मोर, कोकिल, कीर आदि पक्षी कूजा करते हैं।

जहं गोबर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिनमण्डल मध्य विराजत निसि दिनि करत बिहार ॥४॥

जहाँ मणिमय गोवर्धन पर्वत है जिसमें अनेक कन्दराएँ हैं। यहाँ गोपियों के मध्य में भगवान् कृष्ण शाश्वत विहार करते हैं।

विशेष—'सूरसागर' मे अनेक स्थलो पर भगवान कृष्ण के नित्य विहार के संकेत मिलते है *किन्तु इस प्रकार का सिद्धान्त-निरूपण नहीं मिलता।*

'सूरसागर' में वसन्त-लीला का पद सारावली के उपर्युक्त पद से साम्य रखता है। वहाँ भी नित्य-विहार मे होली-खेल की कल्पना प्रस्तुत है।[1]

---

१. नित्य धाम वृन्दावन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रज धाम ॥
नित्य रास जल नृत्य विहार। नित्य मान खंडिताभिसार ॥
ब्रह्म रूप येई करतार। करन हरन त्रिभुवन येई सार ॥
नित्य कुंज सुख नित्य हिंडोर। नित्यहिं त्रिविध समीर झकोर ॥

(सृष्टि-रचना)

खेलत खेलत चित में आई, सृष्टि करन विस्तार।
अपने आप करि प्रगट कियो, है ह्वौ पुरुष अवतार ॥५॥

खेल के प्रकरण में ही प्रभु में सृष्टि की रचना की इच्छा हुई
हुआ कि स्वयं प्रभु ने पुरुष का धारण किया।

माया कियो छोभ यहु विधि करि काल पुरुष के अंग।
राजस तामस सात्विक त्रयगुन प्रकृति पुरुष को संग ॥६॥

अब माया को क्षोभ हुआ। काल की प्रेरणा से पुरुष और प्रकृति
के संग से अट्ठाईस तत्त्वों को प्रकट किया।

कीन्हे तत्व प्रगट तेही छिन सबै अष्ट अरु बीस।
तिनके नाम कहत कवि सूरज निर्गुन सब के ईस ॥७॥

इन अट्ठाईस तत्त्वों के नाम इस प्रकार हैं।

पृथिवी अप तेज वायु नभ संज्ञा सब्द परस अरु गन्ध।
रस अरु रूप और मन बुद्धि चित अहंकार मति अन्ध।
पान अपान ब्यान उदान अरु कहियत प्रान समान।
तछक धनंजय देवदत्त अरु पौंड्रक संख धुमान ॥९॥
राजस तामस सात्विक तीनों जीव ब्रह्म सुख-धाम।
अट्ठाईस तत्व यह कहियत सो कवि सूरज नाम ॥१०॥

तथा महत्तत्वों की उत्पत्ति की। भागवत में सृष्टि-रचना का वर्णन विस्तार से है। पाँचवें और छठे के उपरान्त बीसवें अध्याय में भी सृष्टि रचना का वर्णन है। 'सूरसागर' के द्वितीय स्कन्ध में सृष्टि-रचना पर कथन मिलता है।[१]

(ब्रह्मा की उत्पत्ति)

नाभिकमल नारायन को सो वेद गर्भ अवतार।
नाभिकमल में बहुतहि भटक्यो तउ न पायो पार ॥११॥

श्री नारायण की नाभि-कमल से ब्रह्मा जी का अवतार हुआ। ब्रह्मा जी वेद-गर्भ इसलिए कहे जाते हैं कि चारो वेद उनके अन्दर ही थे। ब्रह्माजी की उत्पत्ति के उपरान्त वे नाभि-कमल में बहुत काल पर्यन्त भटकते रहे किन्तु उनको कुछ भी समझ में न आया।[२]

तब आज्ञा भइ यह हरि की अज, करो परम तप आप।
तब ब्रह्मा तप कियो वर्ष सत दूरि भये सब पाप ॥१२॥

तब भगवान ने उन्हें आज्ञा दी कि हे अजन्मा ब्रह्माजी ! तुम तपस्या करो। इस पर ब्रह्माजी ने सौ वर्ष तक तपस्या की।

---

१. आदि निरंजन निराकार कोउ हतो न दूसर।
रचौं सृष्टि—विस्तार भई इच्छा इक औसर।
त्रिगुन प्रकृति में महतत्व, महतत्व तें अहंकार।
मन-इन्द्री सब्दादि पंच तातें कियो विस्तार।
सब्दादिक तें पंचभूत सुन्दर प्रगटाए।
पुनि सबको रचि अण्ड आपु में आपु समाए।
तीनि लोक निज देह में राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष सोई भयो जो प्रभु अगम अपार ॥

सूरसागर, द्वि० स्कन्ध, ३६

२. 'सारावली' में भागवत का सार ही दिया गया है अत इसमें क्रम अस्पष्ट है। भागवत के तृतीय स्कन्ध के आठवें अध्याय में कहा गया है कि आदि में जल ही जल था। उस पर एकमात्र श्री नारायण शेष-शैया पर शयन कर रहे थे। जब उन्होंने सृष्टि-रचना के निमित्त कर्म-शक्ति को जागृत किया तो उनके नाभि-प्रदेश से कमल नाल निकली। इसी से समस्त वेदों के ज्ञानी स्वयंभू ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उस कमल-कली में बैठे हुए ब्रह्माजी को कुछ दिखाई न पड़ा तो वे अपनी गर्दन को चारों ओर घुमाने लगे। इस प्रकार उनके चार मुख हो गये। उन्हें कुछ भी समझ में न आया। तब वे पुन उस नाल को आधार मानकर भगवान की नाभि में बहुत काल तक भटकते रहे। फिर उन्होंने बहुत लम्बे काल तक तपस्या की। 'सारावली' में इस विवरण का संक्षेप ही है।

तब दरसन दीन्हों करुनाकर परमधाम निज लोक।
ताको दरसन देखि भयो अज, सब बातन निःसोक ॥१३॥

तब परम दयालु भगवान ने उन्हें अपने लोक में दर्शन दिये। प्रभु के दर्शन पाकर ब्रह्माजी शोक रहित हुए।

जहाँ आदि निज लोक महानिधि रमा सहस संजूत।
आन्दोलन झूलत करुनानिधि रमा सुखद अति पूत ॥१४॥

ब्रह्माजी ने देखा निज लोक में भगवान लक्ष्मी के साथ आनन्द के साथ झूल रहे हैं।

अस्तुति करै विविध नाना करि परम पुरुष आनन्द।
जय जय जय श्रुति गीत गायकै पढ़त है नाना छन्द ॥१५॥

ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार से भगवान की स्तुतियाँ कीं (श्रीमद् भागवत, तृतीय स्कन्ध, अध्याय ९)। वेद के स्वरों में ब्रह्मा ने नाना छन्दों में प्रभु का जय-जयकार किया।

आज्ञा करी नाथ चतुरानन करो सृष्टि विस्तार।
होरी खेलन की विधि नीकी रचना रची अपार ॥१६॥

भगवान ने आज्ञा दी कि वे सृष्टि-रचना का विस्तार करें। यही होली खेल अर्थात् भगवत्-लीला का सुन्दर रूप है। 'सूरसागर' में भी ब्रह्मा की उत्पत्ति अत्यन्त संक्षेप में गायी गई है।[1]

चौदह लोक करौ नाना विधि रचि बैकुण्ठ पताल।
नाना रचना रची विधाता होरी खेल रसाल ॥१७॥

इस पर ब्रह्मा ने चौदह लोकों की रचना की। वैकुण्ठ और पाताल की रचना की। इस प्रकार होली खेल के सरस रूप में उन्होंने सृष्टि की रचना कर दी।

विशेष—'श्रीमद्भागवत' के तृतीय स्कन्ध के दसवें अध्याय में दस प्रकार की सृष्टि का विवरण है। ये दस प्रकार की सृष्टियाँ इस प्रकार हैं—१. महत्तत्व, २. पंचभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि आदि; ३. पंच तन्मात्राएँ—शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध; ४. इन्द्रियाँ; ५. देव-सृष्टि; ६. तम-मोहादि की सृष्टि; ७. वनस्पतियाँ; ८. पशु-पक्षी; ९. मनुष्य; १०. सनत्कुमार आदि ऐसे ऋषि जो कुमार रूप में ही रह गये। सारावली में यह विवरण नहीं है।

दसही पुत्र भये ब्रह्मा के जिन संच्यो संसार।
स्वायंभुव मनु प्रगट तब कीन्हे अरु सतरुपा नार ॥१८॥

ब्रह्मा के पहले दस पुत्र हुए। इनसे लोक की वृद्धि हुई। इसके पश्चात् उन्होंने

१. नाभि कमल तैं आदि पुरुष मोकौं प्रकटायौ।
खोजत जुग गए बीति नाल को अन्त न पायौ ॥
तिन मोकौं आज्ञा करी रचि सब सृष्टि बनाइ।
थावर जंगम सुर असुर रचे सबै मैं आइ ॥ (द्वितीय स्कन्ध, ३६)

स्वायंभुव मनु और नारी शतरूपा को प्रकट किया।

भागवत के तृतीय स्कन्ध के बारहवें अध्याय में सृष्टि का विस्तार इस प्रकार वर्णित है कि ब्रह्मा ने आदि में दस पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद। इन ऋषियों ने सृष्टि-विस्तार में योग दिया अवश्य, किन्तु बिना नारी के सृष्टि का विस्तार ठीक रूप से न हुआ। तब उन्होंने अपने ही शरीर के दो भाग करके उनसे एक पुरुष-नारी का जोड़ा पैदा किया। ये थे स्वायंभुव मनु और शतरूपा। इस युग्म के उत्पन्न होने के उपरान्त मिथुन-धर्म से प्रजा की वृद्धि होने लगी।

भुव की इच्छा करन जु कारन धरि बराह अवतार।
पीछे कपिल रूप हरि धार्‌यो कीन्हों सांख्य विचार ॥१६॥

पृथ्वी की रक्षा करने के लिए भगवान् ने वाराह अवतार धारण किया। इसके उपरान्त उन्होंने कपिल रूप धारण करके सांख्यशास्त्र को प्रस्तुत किया।

विशेष – भागवत के तेरहवें अध्याय (तृतीय स्कन्ध) में वाराह अवतार की कथा है। ऊपर मनु और शतरूपा के सम्बन्ध में कथन है। जब ब्रह्माजी ने मनु और शतरूपा को सृष्टि विस्तार की आज्ञा दी तब मनु ने निवेदन किया कि पृथ्वी तो जलमग्न है। मैं कहाँ पर जाकर सृष्टि विस्तार का कार्य करूँ। ब्रह्माजी यह सुनकर चिन्तामग्न हो गये। इतने में भगवान ने शूकर रूप धारण करके जल में प्रवेश कर दिया। वे अपने दाँतों पर पृथ्वी को उठा लाये। रास्ते में हिरण्याक्ष राक्षस ने विघ्न डालने का प्रयास किया, किन्तु भगवान ने उसे सहज ही मार डाला। भागवत के कई अध्यायों में हिरण्याक्ष-वध की लम्बी कथा है। इसके उपरान्त (इक्कीसवें अध्याय, तृतीय स्कन्ध में) मनु-शतरूपा के पुत्रों और पुत्रियों का वर्णन है। मनु के दो पुत्र—प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा एक पुत्री देवहूति हुई। देवहूति कर्दम प्रजापति को ब्याही गई। कर्दम-देवहूति के पुत्र कपिलदेव जी हुए (श्रीमद् भागवत चौबीसवां अध्याय)। कपिलदेव ही सांख्यशास्त्र के रचयिता हुए।

दीन्हों ज्ञान आप माता को कीन्हों भव निस्तार।
आठों लोकपाल तब कीये अपन अपन अधिकार ॥२०॥

कपिल मुनि ने अपनी माता देवहूति को भक्तियोग का उपदेश किया। (भागवत के तृतीय स्कन्ध के २५ से ३३वें अध्याय तक उनके उपदेशों का ही विवरण है।) इसके उपरान्त आठ लोकपालों को अपने-अपने अधिकार दिये। आठ लोकपालों का कोई उल्लेख भागवत में नहीं मिलता। वहाँ तो (तृतीय स्कन्ध के दसवें भाग में) ७ लोक—भूः, भुवः, स्वह, महः, जन, तपः और सत्य लोक—का ही कथन हुआ है।

तेज अग्नि, जम, मरुत, वरुन औ सूर्य चन्द्र ये नाम।
मृत्यु, कुबेर, जच्छपति कहियत अह संकर को धाम ॥२१॥

आठ लोकपालों के नाम हैं—तेजमय अग्नि, यमराज, वायु, वरुण, सूर्य-चन्द्र, मृत्यु और यक्षपति कुबेर।

विशेष—यह नामावली भ्रामक है। इसकी पुष्टि कहीं नहीं होती। भागवत के अनुसार तो सकाम कर्म करने वालों को भूः, भुवः, और स्वः लोक ही प्राप्त होते हैं किन्तु जो निष्काम कर्म करने वाले हैं उन्हें महः, तपः, जनः और सत्यलोक प्राप्त होते हैं।

सत्यलोक, जनलोक, लोकतप और महर निजलोक।
जहं राजत ध्रुवराज महानिधि निसिदिन रहत असोक ॥२२॥

सत्यलोक, जनलोक, तपलोक और महःलोक भगवान के निजलोक हैं। यहां पर ध्रुवजी जैसे परमानन्द को प्राप्त होने वाले लोक शोक रहित होकर सदानन्द रूप में सदा निवास करते हैं।

जननी आज्ञा पाय चले वन पाँच वरष सुकुमार।
ताकों आप कृपा हरि कीन्ही धरि आये अवतार ॥२३॥

ध्रुवजी ने अपनी माँ की आज्ञा पाकर पाँच वर्ष की सुकुमारावस्था में वन की ओर प्रस्थान किया था। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने उन पर कृपा की थी और उन्हें अपने निजलोक में स्थान दिया था।

पाछे पृथु को रूप हरि लीन्हों नाना रस दुहि काढ़े।
तापर रचना रची विधाता बहुविधि जतननि बाढ़े ॥२४॥

पीछे पृथु रूप धारण करके गोरूप पृथ्वी से प्रभु ने सारे रस-दोहन किये और उस पर सभी प्रकार की रचना विधाता ने की।

विशेष—भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के सत्रहवें और अठारहवें अध्याय में कथा है कि एक बार पृथ्वी ने अपनी उर्वरा शक्ति को अपने में छिपा लिया। सारी प्रजा समाप्त हो गई। चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग भूखों मरने लगे। राजा पृथु ने विचार किया तो ज्ञात हुआ कि पृथ्वी ने ही यह सब किया है। उन्होंने धनुष-बाण चढ़ाया कि वे पृथ्वी पर वार करें, तभी पृथ्वी डर के मारे गाय का रूप धारण करके भागने लगी। वह जानती थी कि राजा गाय पर वार न करेगा। तब उसे बांध कर जिस प्रकार दुष्टतावश दूध न देने वाली गाय से दूध निकाला जाता है उसी प्रकार राजा ने उसका दोहन कर सभी प्रकार की उर्वरा शक्ति निकाल ली। अन्नादि तथा वनस्पतियाँ फूट निकलीं और प्रजाजन का दुःख दूर हो गया। राजा पृथु के द्वारा ऐसा किये जाने के कारण ही भूमि को पृथ्वी कहा गया।

रचि नव खण्ड द्वीप सातों मिलि कीन्हों होरि समाज।
वन उपवन पर्वत बहु फूले सब वसन्त को साज ॥२५॥

पृथ्वी के नव खण्ड किये गये, उसमें सात महाद्वीप बने और वन, उपवन, पर्वतों आदि पर वसन्ती हरियाली और पुष्प आदि छा गये।

दानव देव लड़े आपस में कीन्हो युद्ध प्रकार।
विविध सस्त्र छूटत पिचकारी चलत रुधिर की धार ॥२६॥

सृष्टि के क्रम में ही देवताओं और दानवों का पारस्परिक युद्ध हुआ। यह युद्ध

भी हरिलीला के रूप में हुआ। प्रारम्भ में हरिलीला को होली का रूप कहा था, होली के खेल में भी रंगारंग युद्ध होता है। दोनों ओर से तीर रूप पिचकारियां चलीं, खून की धारें निकलीं, सबके शरीर लाल हो गये।

विशेष—हरिलीला को 'सारावली' में होली रूपक से प्रस्तुत किया है। उसी होली को देवासुर संग्राम में चरितार्थ किया है।

दीन्हे मार असुर हरि ने तब देवन दीन्हो राज।
एकन को फगुवा इन्द्रासन इक पताल को साज ॥२७॥

होली के खेल के उपरान्त ब्रज में फगुआ होता है। फगुआ से तात्पर्य खेलने वालों को वस्त्रादि के उपहार से है इसलिए प्रभु की कृपा से देवताओं को फगुआ में इंद्रासन का राज्य मिला और दानवों को पाताल का।

विद्याधर, गन्धर्व, अप्सरा गान करत सब ठाढ़े।
चारन, सिद्ध पढ़त बिरदावलि लै फगुआ सुख बाढ़े ॥२८॥

विद्याधर (देव-चारण) गंधर्व और अप्सरा गान और नृत्य करने लग गये। चारण और सिद्ध प्रभु का यश गान करने लगे। इस प्रकार फगुआ के उपरान्त सबको बड़ा सुख प्राप्त हुआ।

चन्द्रलोक दीन्हो ससि को तब फगुआ में हरि आप।
सब नक्षत्र को राजा कीन्हो ससि-मण्डल में थाप ॥२९॥

फगुआ के क्रम में शशि को चन्द्रलोक दिया और उसे तारागणों का अधिपति बनाया।

मंगल बुध शुक्र अरु सनि अरु राहु केतु ग्रह जान।
रवि अरु ससि सबहिन को फगुआ दीन्हो चतुर सुजान ॥३०॥

इसी प्रकार मंगल, बुध, शुक्र, शनि, राहु-केतु, सूर्य आदि सभी ग्रहों को उपहार मिले।

अतल वितल अरु तलातल और महातल जान।
पाताल और रसातल मिलिकै सातौं भुवन प्रमान ॥३१॥

दानवों को फगुआ में पाताल के सात लोक मिले। ये सात पाताल हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल और रसातल।

संकर्षन को धाम परम रुचि तहं राजत निज वीर।
सेषनाग ताके तर कूरम बसत महा धन धीर ॥३२॥

ये सातों पाताल शेषनाग के लोक हैं। शेषनाग के नीचे भगवान् कूर्म रहते हैं, जो पृथ्वी को धारण किये हैं।

इलावर्त्त औ किम्पुरुष्या कुरु औ हरिवर्ष केतुमाल।
हिरनमय रमनक भद्राश्व भरत खण्ड सुखपाल ॥३३॥

जम्बू द्वीप (एशिया महाद्वीप) के नव खण्ड हैं। इनके नाम हैं—इलावृत्त, किम्पुरुष, कुरु, हरिवर्ष, केतुमाल, हिरण्मय, रम्यक, भद्राश्व और भरतखण्ड

विशेष—यह नामावली भ्रामक है। इसकी पुष्टि कहीं नहीं होती। भागवत के अनुसार तो सकाम कर्म करने वालों को भूः, भुवः, और स्वः लोक ही प्राप्त होते हैं किन्तु जो निष्काम कर्म करने वाले हैं उन्हें महः, तपः, जनः और सत्यलोक प्राप्त होते हैं।

सत्यलोक, जनलोक, लोकतप और महर निजलोक।
जहं राजत ध्रुवराज महानिधि निसिदिन रहत असोक ॥२२॥

सत्यलोक, जनलोक, तपलोक और महःलोक भगवान के निजलोक हैं। यहाँ पर ध्रुवजी जैसे परमानन्द को प्राप्त होने वाले लोक शोक रहित होकर सदानन्द-रूप में सदा निवास करते हैं।

जननी आज्ञा पाय चले बन पाँच बरष सुकुमार।
ताकौ आप कृपा हरि कीन्ही धरि आये अवतार ॥२३॥

ध्रुवजी ने अपनी माँ की आज्ञा पाकर पाँच वर्ष की सुकुमारावस्था में वन की ओर प्रस्थान किया था। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने उन पर कृपा की थी और उन्हें अपने निजलोक में स्थान दिया था।

पाछे पृथु को रूप हरि लीन्हों नाना रस दुहि काढ़े।
तापर रचना रची विधाता बहुविधि जतननि वाढ़े ॥२४॥

पीछे पृथु रूप धारण करके गोरूप पृथ्वी से प्रभु ने सारे रस-दोहन किये और उस पर सभी प्रकार की रचना विधाता ने की।

विशेष—भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के सत्रहवें और अठारहवें अध्याय में कथा है कि एक बार पृथ्वी ने अपनी उर्वरा शक्ति को अपने में छिपा लिया। सारी प्रजा समाप्त हो गई। चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग भूखों मरने लगे। राजा पृथु ने विचार किया तो ज्ञात हुआ कि पृथ्वी ने ही यह सब किया है। उन्होंने धनुष-बाण चढ़ाया कि वे पृथ्वी पर वार करें, तभी पृथ्वी डर के मारे गाय का रूप धारण करके भागने लगी। वह जानती थी कि राजा गाय पर वार न करेगा। तब उसे बाँध कर जिस प्रकार दुष्टतावश दूध न देने वाली गाय से दूध निकाला जाता है उसी प्रकार राजा ने उसका दोहन कर सभी प्रकार की उर्वरा शक्ति निकाल ली। अन्नादि तथा वनस्पतियाँ फूट निकलीं और प्रजाजन का दुःख दूर हो गया। राजा पृथु के द्वारा ऐसा किये जाने के कारण ही भूमि को पृथ्वी कहा गया।

रचि नव खण्ड द्वीप सातों मिलि कीन्हों होरि समाज।
वन उपवन पर्वत बहु फूले सब वसन्त को साज ॥२५॥

पृथ्वी के नव खण्ड किये गये, उसमें सात महाद्वीप बने और वन, उपवन, पर्वतों आदि पर वसन्ती हरियाली और पुष्प आदि छा गये।

दानव देव लड़े आपस में कीन्हो युद्ध प्रकार।
विविध सस्त्र छूटत पिचकारी चलत रुधिर की धार ॥२६॥

सृष्टि के क्रम में ही देवताओं और दानवों का पारस्परिक युद्ध हुआ। यह युद्ध

भी हरिलीला के रूप मे हुग्रा । ग्रारम्भ मे हरिलीला को होली का रूप कहा था, होली के खेल मे भी रंगारग युद्ध होता है । दोनों ग्रोर से तीर रूप पिचकारियां चलीं, खून की धारें निकली, सबके शरीर लाल हो गये ।

विशेष—हरिलीला को 'सारावली' में होली रूपक से प्रस्तुत किया है । उसी होली को देवासुर संग्राम में चरितार्थ किया है ।

दीन्हे मार ग्रसुर हरि ने तब देवन दीन्हो राज ।
एकन को फगुवा इन्द्रासन इक पताल को साज ॥२७॥

होली के खेल के उपरान्त व्रज में फगुग्रा होता है । फगुग्रा से तात्पर्य खेलने वालो को वस्त्रादि के उपहार से है इसलिए प्रभु की कृपा से देवताग्रों को फगुग्रा में इन्द्रासन का राज्य मिला ग्रौर दानवों को पाताल का ।

विद्याधर, गन्धर्व, ग्रप्सरा गान करत सब ठाढ़े ।
चारन, सिद्ध पढ़त विरुदावलि लै फगुग्रा सुख बाढ़े ॥२८॥

विद्याधर (देव-चारण) गधर्व ग्रौर ग्रप्सरा गान ग्रौर नृत्य करने लग गये । चारण ग्रौर सिद्ध प्रभु का यश गान करने लगे । इस प्रकार फगुग्रा के उपरान्त सबको बड़ा सुख प्राप्त हुग्रा ।

चन्द्रलोक दीन्हो ससि को तब फगुग्रा में हरि ग्राप ।
सब नक्षत्र को राजा कीन्हो ससि-मण्डल में छाप ॥२६॥

फगुग्रा के क्रम मे शशि को चन्द्रलोक दिया ग्रौर उसे तारागणो का ग्रधिपति बनाया ।

मंगल बुध सुक्र ग्ररु सनि ग्ररु राहु केतु ग्रह जान ।
रवि ग्ररु ससि सबहिन को फगुग्रा दीन्हो चतुर सुजान ॥३०॥

इसी प्रकार मगल, बुध, शुक्र, शनि, राहु-केतु, सर्य ग्रादि सभी ग्रहों को उपहार मिले ।

ग्रतल वितल ग्ररु तलातल ग्रौर महातल जान ।
पाताल ग्रौर रसातल मिलिकै सातों भुवन प्रमान ॥३१॥

दानवों को फगुग्रा मे पाताल के सात लोक मिले । ये सात पाताल हैं—ग्रतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल ग्रौर रसातल ।

संकर्षन को धाम परम रुचि तहं राजत निज धौर ।
सेषनाग ताके तर कूरम बसत महा घन धीर ॥३२॥

ये सातों पाताल शेषनाग के लोक हैं । शेषनाग के नीचे भगवान् कूर्म रहते हैं, जो पृथ्वी को धारण किये हैं ।

इलावर्त ग्रौ किम्पुरुषा कुरु ग्रौ हरिवर्ष केतुमाल ।
हिरनमय रमनक भद्रासन भरत खण्ड गुलपाल ॥३३॥

जम्बू द्वीप (एशिया महाद्वीप) के नव खण्ड हैं । इनके नाम हैं—इलावृत्त किम्पुरुष, कुरु, हरिवर्ष, केतुमाल, हिरण्मय, रम्यक, भद्राश्व ग्रौर भरतखण्ड ।

सातों द्वीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर।
जंबू, प्लच्छ, क्रौंच, साक, सालमलि, कुस, पुष्कर भरपूर ॥३४॥

शुकदेव ने सातों द्वीपों का वर्णन (श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध में १६ से २० अध्यायों में) किया है। ये सात द्वीप (महाद्वीप) हैं—जम्बू, प्लक्ष, क्रौंच, शाक, शाल्मली, कुश और पुष्कर।

विशेष—भागवत के पंचम स्कन्ध के २०वें अध्याय में जम्बू द्वीप को छोड़कर शेष छह द्वीपों का वर्णन विस्तार से है। 'सारावली' में भागवत में वर्णित सृष्टि-रचना का सार यहीं तक है।

(अवतार-लीला)

अपने अपने स्थानन पर तब फगुवा दियो चुकाय।
जब जब हरि माया ते दानव प्रगट भये हैं आय ॥३५॥
तब तब धरि अवतार कृष्ण ने कीन्हों असुर संहार।
सो चौबीस रूप निज कहियत वर्णन करत विचार ॥३६॥

इस प्रकार सभी को भगवान ने उपहार रूप में सभी प्रकार के वैभव दिये। सृष्टि के उपरान्त जब-जब राक्षसों ने संसार में उत्पात किये तब-तब भगवान ने अवतार धारण करके असुरों का विनाश किया। इन अवतारों की कुल संख्या चौबीस है।[1]

१. वाराह अवतार

प्रथम किये स्वायंभुव मनु नृप अज आज्ञा यह दीन्हीं।
भू पर जाय राज तुम करिहौ सृष्टि विस्तार यह कीन्हीं ॥३७॥

(ऊपर १८वें पद में स्वायंभुव मनु का उल्लेख हुआ था। अब अवतार-लीला के क्रम में पुनः सृष्टि-रचना पर कथन है—) ब्रह्माजी ने स्वायंभुवमनु को आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी पर जाकर राज्य करो और सृष्टि का विस्तार करो।

---

१. सर्वत्र भगवान के आदि रूप का नाम कृष्ण ही लिखा है। महात्मा सूरदास भगवान कृष्ण को ही ईश्वर का रूप आदि मानते हैं। यहां भी गीता की निम्नलिखित पंक्ति का ही कथन हुआ है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अवतारों की कुल संख्या चौबीस है। ये चौबीस अवतार हैं—१. वाराह, २. यज्ञ पुरुष, ३. कपिल, ४. दत्तात्रेय, ५. सनत्कुमार, ६. नर-नारायण, ७. हरि, ८. हंस, ९. पृथु, १०. ऋषभदेव, ११. हयग्रीव, १२. मत्स्य, १३. कच्छप, १४. नृसिंह, १५. गजेन्द्र-मोक्ष करने वाले नारायण, १६. मनु, १७. मोहिनी, १८. धन्वन्तरि, १९. वामन, २०. परशुराम, २१. राम, २२. कृष्ण, २३. बुद्ध, २४. कल्कि।

स्वायंभुव मनु अरु सतरूपा तुरत भूमि पर आये।
जल में मगन भये भुव देखे फिर अज पै चलि आये ॥३८॥

स्वायंभुव मनु और सतरूपा जब अवतरित हुए तो उन्होंने देखा कि भूमि तो जलमग्न है तब वे फिर लौट कर ब्रह्मा के पास आए।

तासों आय कही सबहीं विधि भुव द्रव देखियत नाहीं।
तब अति ध्यान कियो श्रीपति को केशव भयो सहाहीं ॥३९॥

उन्होंने ब्रह्माजी से कहा कि भूमि तो कहीं दिखाई ही नहीं पड़ती, फिर हम कहाँ सृष्टि-विस्तार करें। यह सुनकर ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो गये। वे सोचने लगे कि मैंने तो भूमि का निर्माण किया था, वह गई तो कहाँ ? जब वे इस प्रकार से चिन्ता-मग्न थे, तभी भगवान (केशव) ने उनकी सहायता की।

आई छींक नाक ते प्रगटे सूकर अति लघु रूप।
देखत गज-से होय गये हैं कीन्हों बृहत् स्वरूप ॥४०॥

ब्रह्माजी को छींक आ गई। छींक से जो बूँद गिरी वही क्षण भर में बढ़कर शूकर-रूप हो गई। पहले शूकर छोटा था, पर देखते-ही-देखते वह हाथी जैसा विशाल रूप मे बदल गया।

विशेष—छींक से वाराह रूप का होना 'श्रीमद्‌भागवत' के तृतीय स्कन्ध के १३वें अध्याय में वर्णित है।

जय जय करत सकल सुर नर मुनि जल में कियो प्रवेस।
जाय पताल बाट गहि लीन्हीं धरनी रमा नरेस ॥४१॥

सभी सुर, नर, मुनियों ने जय-जयकार किया और वाराह भगवान ने जल में प्रवेश किया और पाताल में जाकर उन्होंने पृथ्वी को उठा लिया।

ते भुव-कमल कुसुम की नाईं चले मनहुं गजराज।
कछु डर नाहिन जिय मैं डरपत अति आनन्द समाज ॥४२॥

वे पाताल से धरणी को इस प्रकार उठाकर चले, जैसे हाथी कमल के फूल को लेकर। इस प्रकार निश्शंक आनन्द से चले आए।

जोगी साधु सनकादिक चारों गये हरि के निज लोक।
कीन्हें क्रोध मने जब कीन्हें दियो साप अति सोक ॥४३॥
जय अरु विजय असुर योनिन को भये तीन अवतार।
तिनमें प्रथम लियो कस्यप गृह दिति की कोख मंझार ॥४४॥

विशेष—असुरो की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इसका कथन इन दो पदों में हुआ है—असुरों की उत्पत्ति भगवान के अवतारों का कारण है। भगवान वाराह ने हिरण्याक्ष असुर को मारा था अत. उनके मारे जाने से पूर्व उसका वर्णन दिया गया है।

ब्रह्माजी ने सनकादि चारों भाइयों (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) को पहले उत्पन्न किया और उनसे कहा कि तुम जाकर सृष्टि का विस्तार करो। वे योगी थे। उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया कि वे माया-मोह में नहीं पड़ेंगे और इस

प्रकार सृष्टि-विस्तार में योग न देंगे। ऐसा सुनकर ब्रह्माजी को क्रोध आ गया। उनके क्रोध से ही असुर-योनि की उत्पत्ति हुई। असुरों की उत्पत्ति की यह कथा भी है कि सनकादि चारों भाई भगवान के दर्शन के लिए पहुँचे। उनके द्वारपाल जय और विजय ने उन्हें प्रवेश करने से रोका तो सनकादि ने उन्हें शाप दिया कि तुम लोग तीन बार असुर बनोगे। इसके फलस्वरूप कश्यप ऋषि के घर में उनकी पत्नी दिति की कोख से दैत्यों की उत्पत्ति हुई।

विशेष—'सूरसागर' में भी सनकादिक की कथा संक्षेप से तृतीय स्कन्ध के पद छह में वर्णित है।

प्रथम भयो हिरन्याच्छ महाबल जिन जीते लोकपाल।
नारद सीख गयो सूकर पै देखो रूप विकराल ॥४५॥

इन असुरों में सर्वप्रथम दैत्य हिरण्याक्ष था। उसने लोकपालों को जीत लिया। नारदजी ने उसे शिक्षा दी कि तू वाराह भगवान से लड़। इसलिए वह उनसे लड़ने लगा और उनके विकराल रूप को देखा।

सहस वर्ष लौं जल में जूझे कियो दनुज संहार।
पाछे आप भूमि को थापी कियो जग्य विस्तार ॥४६॥

उसी हिरण्याक्ष राक्षस ने वाराह भगवान से सहस्र वर्ष पर्यन्त जल के भीतर युद्ध किया। भगवान ने उसका संहार किया और भूमि को जल से निकाल कर ऊपर स्थित किया। फिर उस पर सृष्टि-यज्ञ का विस्तार हुआ।

विशेष—'सूरसागर' में भी हिरण्याक्ष और वाराह अवतार की कथा तृतीय स्कन्ध, पद ११ में है।

स्वायंभुव सतरूपा तनया कहियत तीन प्रमान।
आकूती देवहूती औ परसूती चतुर सुजान ॥४७॥

अब पृथ्वी के आ जाने से सृष्टि का क्रम आरम्भ हुआ। स्वयंभुव मनु और शतरूपा के तीन पुत्रियां हुईं। इनके नाम हैं—आकूति, देवहूति और प्रसूति।

परसूती दई दच्छप्रजापति तिनकी सती सयान।
सो दीन्हीं महादेव देव को अति आनन्द सुजान ॥४८॥

प्रसूति का उन्होंने दक्ष प्रजापति के साथ विवाह किया, जिनकी पुत्री सती हुई। सती का विवाह शंकर जी के साथ हुआ।

तज्यो देह अपमान पाय के बहुरि दच्छ गृह जाई।
पातिव्रतहिं धर्म जब जान्यो बहुरो रुद्र विहाई ॥४९॥

सती अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ के अवसर पर वहां पधारीं। वहां उन्होंने देखा कि उनके पिता ने और सभी देवताओं को बुलाया है पर भगवान् शिव का अपमान करने के उद्देश्य से उनको नहीं बुलाया। ऐसा देख कर अपने पातिव्रत के कारण वे अपने रुद्रगणों को छोड़कर यज्ञकुण्ड में कूद पड़ीं और जल गयीं।

विशेष—'सूरसागर' के चतुर्थ स्कंध पद ५ में सती की कथा है।

२. यज्ञ पुरुष अवतार

आकुती दई रुचि प्रजापति भये जग्य अवतार ।
इन्द्रासन बैठे सुख बिलसत दूर किये भुव-भार ॥५०॥

स्वायंभुव मनु की दूसरी कन्या आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से हुआ । (भागवत के चतुर्थ स्कंध के पहले अध्याय में लिखा है कि) आकूति के गर्भ से एक पुत्र और कन्या का जोड़ा उत्पन्न हुआ । पुरुष यज्ञस्वरूप भगवान थे और स्त्री लक्ष्मीजी की अंशस्वरूपा 'दक्षिणा' थी । यज्ञरूप प्रभु ने आनन्द की सृष्टि की और संसार के कष्टों को दूर किया ।

विशेष—यही कथा 'सूरसागर' के चतुर्थ स्कंध, पद संख्या ५ में है ।

३ कपिल अवतार

देवहुती कर्दम को दीन्हीं तिन कीन्हों तप भारी ।
बिन्दु सरोवर आये माधव किये गरुड़ असवारी ॥५१॥

मनु की तीसरी कन्या देवहूति का विवाह कर्दम ऋषि के साथ हुआ था । कर्दम ऋषि ने बिन्दु सरोवर पर बड़ी तपस्या की । तपस्या के परिणामस्वरूप भगवान् विष्णु गरुड पर सवार होकर आये ।

दियो बरदान सृष्टि करिबे को अस्तुति करी प्रमान ।
मेरो अंस अवतार होयगो कहि भये अन्तर्धान ॥५२॥

भगवान् ने उनको वरदान दिया कि मेरा अंश तुम्हारे पुत्र के रूप में अवतरित होगा । ऐसा कह कर उन्होंने ऋषि को सृष्टि करने को कहा ।

पाछे रिषि निज तप मन लायो कीन्हो प्रगट बिमान ।
तामें बैठि सकल जग देख्यो कन्या नौ सुखदान ॥५३॥

इसके उपरान्त ऋषि ने फिर तप में मन लगाया । इस पर, (जैसा कि भागवत के तृतीय स्कंध के २३वें अध्याय में विस्तार से वर्णित है,) उनकी पत्नी देवहूति ने ऋषि कर्दम से प्रार्थना की कि वे विवाह के समय की गृहस्थाश्रम में रहने की प्रतिज्ञा को पूरी करें । इस पर ऋषि कर्दम ने अपने योगबल से एक ऐसे विमान की रचना की जो सभी प्रकार की सुख-सामग्रियों से भरपूर था और इच्छानुसार सर्वत्र जा सकता था । इस पर बैठ कर वे सर्वत्र संसार में विहार करने रहे । इसी बीच उनके नौ कन्याएं

पाछे कपिल रूप हरि प्रगटे दर्शन करि मुनिराय।
कीन्हो त्याग गये वन को तव ब्रह्म परम पद पाय ॥५४॥

पीछे देवहूति के गर्भ से अंशावतार श्री कपिलदेव प्रकट हुए। इनका दर्शन कर मुनि कर्दम तपस्या के लिए वन को चले गये और उन्हें अन्त में ब्रह्मपद की प्राप्ति हुई।

पाछे विविध ज्ञान जननी को दीन्हो कपिल दृढ़ाय।
सांख्य जोग अरु ज्ञान भक्ति दृढ़ वरनी विविध वनाय ॥५५॥

वड़े होने पर कपिल मुनि ने अपनी माता को ज्ञानोपदेश किया। सांख्ययोग, ज्ञान और भक्ति की विशद व्याख्या उनसे की।

जल को रूप तुरत ह्वै गई वह हरि के रूप समाय।
चले मगन ह्वै ब्रह्म ध्यान कर गंगासागर न्हाय ॥५६॥

यह सव ज्ञान सुनकर देवहूति पिघलकर जलरूप हो गयी और ब्रह्म में लीन हो गई। कपिल मुनि ब्रह्म-ध्यान में तल्लीन होकर गंगासागर की ओर चले गये।

अजहूँलौं राजत नीरधि तट करत सांख्य विस्तार।
सांख्यायन से वहुत महामुनि सेवत चरन सुचार ॥५७॥

कपिल मुनि अनन्त काल तक वहीं समुद्र तट पर निवास करते रहे और सांख्यायन जैसे वहुत से मुनियों ने उनकी सेवा की।

विशेष—'सूरसागर' के ३ स्कंध, पद १३ में कपिल अवतार की कथा वर्णित है।

४. दत्तात्रेय अवतार

अत्रै पुत्र भये व्रह्मा के तिन कीन्हों तप जाय।
आये तीन देव ताके ढिग व्रह्मा सिव हरिराय ॥५८॥

व्रह्मा के पुत्र अत्रि थे, जिन्होंने वड़ी तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर तीनों देव व्रह्मा, विष्णु और शिव वरदान देने के लिए प्रस्तुत हुए।

तव उन मांग्यो सुत तुमहीं से तीनों प्रगटे आय।
अज ससि अंस, रुद्र दुर्वासा, दत्तात्रेय हरिराय ॥५९॥

तव अत्रि ने उनसे वरदान मांगा कि मेरे आप जैसे पुत्र हों। तव व्रह्मा, विष्णु और शिव स्वयं उनके घर अंश रूप में प्रकटे। व्रह्मा के अंश थे चन्द्रमा, शिव के अंश थे दुर्वासा और विष्णु के अंश थे दत्तात्रेय।

विशेष—'सूरसागर' के चतुर्थ स्कंध, पद २ में यह कथा वर्णित है।

अनसूया के गर्भ प्रगट ह्वै कियो जोग आराधि।
जम अरु नियम प्राणा प्रत्याहार धारण ध्यान समाधि ॥६०॥

अनुसूया के गर्भ से ऋषि दत्तात्रेय के रूप में भगवान् का अवतार हुआ। इन्होंने योग की आराधना की। यम, नियम, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि को इन्होंने सिद्ध किया।

आसन के सब सिद्ध जोग कर प्रगट कला जगदीस ।
दीन्हो भोग सहस नृप को बहु करुनानिधि जगदीस ॥६१॥

सभी योगासनों को इन्होंने सिद्ध करके योग की कला को प्रकट किया । सहस्रार्जुन राजा ने इनको प्रसन्न किया, तब इन्होंने उसे सब प्रकार के भोगों से सुखी किया ।

कीन्हें गुरु चौबीस सीस लै जदु को दीन्हों ज्ञान ।
पातंजलि से मुनि पद सेवत करत सदा धज ध्यान ॥६२॥

ऋषि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये थे । राजा यदु इनके शिष्य थे । उनको इन्होंने ज्ञानयोग का उपदेश किया था । योग-दर्शन के व्याख्याता पातंजलि इन्हीं के शिष्य थे ।

५. सनकादि अवतार

जब सृष्टिनि पर किरपा कीन्हीं ज्ञान कला बिस्तार ।
सनक सनंदन और सनातन चारों सनतकुमार ॥६३॥

जब ब्रह्मा सृष्टि कर रहे थे तब उनके परमज्ञानी चार पुत्र हुए थे जिनके नाम हैं—सनक, सनन्दन, सनातन और सनतकुमार ।

उनसे कह्यो सृष्टि नाना विधि रचना करो बनाय ।
उन नहिं मान्यो तब चतुरानन खीझे क्रोध उपाय ॥६४॥

इन चारो से ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण करने को कहा। इन लोगो ने उनकी आज्ञा नही मानी । इस पर ब्रह्मा क्रुद्ध हुए ।

संकर प्रगट भये भृकुटी ते, करी सृष्टि निर्मान ।
भूत प्रेत बैताल रचे बहु दौरे विधि को खान ॥६५॥

क्रोध के कारण उनकी विकट भृकुटियो से रुद्र की उत्पत्ति हुई और भूत, प्रेत, बैताल आदि उनके गण प्रकट हुए । वे ब्रह्मा को खाने दौड़े ।

पूरन करौ कह्यो चतुरानन सृष्टि महा दुख दैन ।
तब संकर तपस्या को निकसे चितै कमलदल नैन ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा कि तुम सब ससार में *दुख-दायी सृष्टि करो । यह* सुनकर शंकरजी दुखी हुए और वे तपस्या के लिए चल पड़े ।

विशेष—'सूरसागर' के तृतीय स्कध पद सख्या छह में सनकादि अवतार तथा तामसी सृष्टि का वर्णन इसी प्रकार है ।

६. नर-नारायण अवतार

मुरति प्रिया जु भई धर्म की तिनके हरि अवतार ।
नारायन जब भये प्रगट वपु तिन मेट्यो भव-भार ॥६७

धर्म की पत्नी मूर्ति (*दक्षकन्या) के गर्भ से हरि का नर-नारायण अवतार हुआ,* जिन्होंने संसार के भार को दूर किया ।

पाछे कपिल रूप हरि प्रगटे दर्शन करि मुनिराय ।
कीन्हो त्याग गये वन को तब ब्रह्म परम पद पाय ॥५४॥

पीछे देवहूति के गर्भ से अंशावतार श्री कपिलदेव प्रकट हुए । इनका दर्शन कर मुनि कर्दम तपस्या के लिए वन को चले गये और उन्हें अन्त में ब्रह्मपद की प्राप्ति हुई।

पाछे विविध ज्ञान जननी को दीन्हो कपिल दृढ़ाय ।
सांख्य जोग अरु ज्ञान भक्ति दृढ़ बरनी विविध वनाय ॥५५॥

बड़े होने पर कपिल मुनि ने अपनी माता को ज्ञानोपदेश किया । सांख्ययोग, ज्ञान और भक्ति की विशद व्याख्या उनसे की ।

जल को रूप तुरत ह्वै गई वह हरि के रूप समाय ।
चले मगन ह्वै ब्रह्म ध्यान कर गंगासागर न्हाय ॥५६॥

यह सब ज्ञान सुनकर देवहूति पिघलकर जलरूप हो गयी और ब्रह्म में लीन हो गई । कपिल मुनि ब्रह्म-ध्यान में तल्लीन होकर गंगासागर की ओर चले गये ।

अजहूँलौं राजत नीरधि तट करत सांख्य विस्तार ।
सांख्यायन से बहुत महामुनि सेवत चरन सुचार ॥५७॥

कपिल मुनि अनन्त काल तक वहीं समुद्र तट पर निवास करते रहे और सांख्यायन जैसे बहुत से मुनियों ने उनकी सेवा की ।

विशेष—'सूरसागर' के ३ स्कंध, पद १३ में कपिल अवतार की कथा वर्णित है ।

४. दत्तात्रेय अवतार

अत्रै पुत्र भये ब्रह्मा के तिन कीन्हों तप जाय ।
आये तीन देव ताके ढिग ब्रह्मा सिव हरिराय ॥५८॥

ब्रह्मा के पुत्र अत्रि थे, जिन्होंने बड़ी तपस्या की । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु और शिव वरदान देने के लिए प्रस्तुत हुए ।

तब उन मांग्यो सुत तुमहीं से तीनों प्रगटे आय ।
अज ससि अंस, रुद्र दुर्वासा, दत्तात्रेय हरिराय ॥५९॥

तब अत्रि ने उनसे वरदान मांगा कि मेरे आप जैसे पुत्र हों । तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वयं उनके घर अंश रूप में प्रकटे । ब्रह्मा के अंश थे चन्द्रमा, शिव के अंश थे दुर्वासा और विष्णु के अंश थे दत्तात्रेय ।

विशेष—'सूरसागर' के चतुर्थ स्कंध, पद २ में यह कथा वर्णित है ।

अनसूया के गर्भ प्रगट ह्वै कियो जोग आराधि ।
जम अरु नियम प्राणा प्रत्याहार धारण ध्यान समाधि ॥६०॥

अनुसूया के गर्भ से ऋषि दत्तात्रेय के रूप में भगवान् का अवतार हुआ । इन्होंने योग की आराधना की । यम, नियम, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि को इन्होंने सिद्ध किया ।

आसन के सब सिद्ध जोग कर प्रगट कला जगदीस ।
दीन्हो भोग सहस नृप को बहु करुनानिधि जगदीस ॥६१॥

सभी योगासनों को इन्होंने सिद्ध करके योग की कला को प्रकट किया । सहस्रार्जुन राजा ने इनको प्रसन्न किया, तब इन्होंने उसे सब प्रकार के भोगों से सुखी किया ।

कीन्हें गुरु चौबीस रीति लै जदु को दीन्हों ज्ञान ।
पातंजलि से मुनि पद सेवत करत सदा अज ध्यान ॥६२॥

ऋषि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये थे । राजा यदु इनके शिष्य थे । उनको इन्होंने ज्ञानयोग का उपदेश किया था । योग-दर्शन के व्याख्याता पातंजलि इन्ही के शिष्य थे ।

५. सनकादि अवतार

जब सृष्टिनि पर किरपा कीन्हीं ज्ञान कला बिस्तार ।
सनक सनंदन और सनातन चारो सनतकुमार ॥६३॥

जब ब्रह्मा सृष्टि कर रहे थे तब उनके परमज्ञानी चार पुत्र हुए थे जिनके नाम हैं—सनक, सनन्दन, सनातन और सनतकुमार ।

उनसे कह्यो सृष्टि नाना बिधि रचना करो बनाय ।
उन नहिं मान्यो तब चतुरानन खीझे क्रोध उपाय ॥६४॥

इन चारो से ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण करने को कहा। इन लोगों ने उनकी आज्ञा नही मानी । इस पर ब्रह्मा क्रुद्ध हुए ।

संकर प्रगट भये भृकुटी ते, करी सृष्टि निर्मान ।
भूत प्रेत बैताल रचे बहु दौरे बिधि को खान ॥६५॥

क्रोध के कारण उनकी विकट भृकुटियों से रुद्र की उत्पत्ति हुई और भूत, प्रेत, बैताल आदि उनके गण प्रकट हुए । वे ब्रह्मा को खाने दौड़े ।

पूरन करौ कह्यौ चतुरानन सृष्टि महा दुख दैन ।
तब संकर तपस्या को निकसे चितै कमलदल नैन ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा कि तुम सब संसार मे दुख-दायी सृष्टि करो । यह सुनकर शंकरजी दुखी हुए और वे तपस्या के लिए चल पड़े ।

विशेष—'सूरसागर' के तृतीय स्कध पद सख्या छह मे सनकादि अवतार तथा तामसी सृष्टि का वर्णन इसी प्रकार है ।

६. नर-नारायण अवतार

मुरति त्रिया जु भई धर्म की तिनके हरि अवतार ।
नारायन जब भये प्रगट बपु तिन मेट्यो भुव-भार ॥६७

धर्म की पत्नी मूर्ति (दक्षकन्या) के गर्भ से हरि का नर-नारायण अवतार हुआ, जिन्होंने संसार के भार को दूर किया ।

सहस कवच इक असुर संहारेउ बहुरि कियो तप भारी ।

सोच परेउ सुरपति को तब उन पठइ अप्सरा नारी ॥६८॥

पहले इन्होंने सहस कवच नामक दैत्य का संहार किया। फिर ये तपस्या में लीन हो गये। इनके तप को देखकर इन्द्र को शंका हुई। उसने बहुत-सी अप्सराएं इनका तप भंग करने को भेजीं।

बहुत भाँति उन कियो परम छल तप में उनके काज ।

कछु नहि चली ब्रह्म नारायन सुख समाज तिय साज ॥६९॥

लेकिन उनका कोई प्रभाव इन पर न पड़ा। भगवान् नर-नारायण अपने आनन्द में रहे। स्त्रियाँ भी अपने दोपी स्वभाव को खोकर आनन्दित हो गयीं।

इक उर्वसी हृदय उपजाई दई सक्र को ताय ।

ताको देखि देखि जीवत हैं अजहुँ इन्द्र सुख पाय ॥७०॥

भगवान नर-नारायण ने एक अपूर्व अप्सरा उर्वशी को अपने हृदय से निकाल कर इन्द्र को उपहार स्वरूप भेजी जिसे देखकर आज भी इन्द्र सुख पाता है।

विशेष—नर-नारायण की यह कथा भागवत के ११वें स्कंध के ४ अध्याय में है।

७. हरि अवतार

स्वायंभुव के द्वितीय पुत्र उत्तानपाद मतिवीर ।

तिनके ध्रुव बालक जो जाये औ उत्तम गंभीर ॥७१॥

स्वायंभुव मनु के द्वितीय पुत्र धीरमति उत्तानपाद थे (प्रथम पुत्र देवव्रत थे)। उनके दो पुत्र ध्रुव और उत्तम हुए।

नृप के पास गये गोदी में बैठन को सुकुमार ।

तव लघु मात कह्यौ तव बैठो जब मेरे अवतार ॥७२॥

एक दिन ध्रुव अपने पिता की गोद में बैठने को गये तब उनकी छोटी मां सुरुचि ने कहा कि तुम गोदी में बैठने के अधिकारी तभी होगे जब मेरे गर्भ से उत्पन्न हो।

सुनि कटुवचन गयो माता पै तव उन ज्ञान दृढ़ायो ।

हरि की भक्ति करो सुख नीके जो चाहौ सुख पायो ॥७३॥

सौतेली मां के कटु वचनों को सुनकर वे अपनी मां सुनीति के पास गये। उनकी मां ने कहा कि ठीक है भगवान् ही ऐसा कर सकते हैं अतः तुम हरि-भक्ति करो और सुखी हो।

पांच वर्ष के निकसि चले तब मधुवन पहुँचे आय ।

बिच नारद मुनि तत्व बताओ जपै मन्त्र चित लाय ॥७४॥

यह सुन कर पांच वर्ष वाले ध्रुव घर से निकल पड़े और वे मधुवन में पहुँचे। वहाँ उन्हें नारद ऋषि मिले और उन्हें हरि-मन्त्र दिया।

कछु दिन पत्र भच्छ करि बीते कुछ दिन लीन्हों पानी ।

कछु दिन पवन कियो अनप्रासन रोक्यो स्वास यह जानी ॥७५॥

ध्रुव ने मन्त्र का जाप करते हुए कुछ दिन पत्ते खाये फिर कुछ दिन जल पिया फिर कुछ दिन उन्होंने हवा ही पी। फिर स्वास को भी रोक लिया।

दारुन तप जब कियो राजसुत तब कांप्यो सुरलोक ।
त्राहि-त्राहि हरि सों सब भाख्यो दूर करो सब सोक ॥७६॥

इस प्रकार जब इस राजपुत्र ने कठिन तपस्या की तो सारा सुरलोक काँप उठा। सबने भगवान् के पास 'रक्षा करो' 'रक्षा करो' की पुकार की।

तब हरि कह्यौ कोउ जनि डरपो अबहिं तुरत मैं जैहौं ।
बालक ध्रुव बन करत गहन तप ताहि तुरत फल दैहौं ॥७७॥

तब भगवान् हरि ने कहा कि तुम मत डरो, मैं तुरन्त ही जाऊँगा और वन में कठिन तपस्या करने वाले बालक को फल दूँगा।

इतनी कहत गरुड़ पर चढ़िकै तुरतहिं मधुवन आये ।
कंबु कपोल परसि बालक के बानी प्रगट कराये ॥७८॥

ऐसा कह कर गरुड़ पर चढ़ कर भगवान् तुरन्त ही मधुवन आये। उसके कपोलों और ठुड्डी का स्पर्श करके वरदान देने को कहा।

अस्तुति करी बहुत ध्रुव सब बिधि सुनि प्रसन्न भये आप ।
दियो राज भूमंडल को सब बिधि थिर करि थाप ॥७९॥

ध्रुव ने भगवान् की स्तुतियाँ कीं। भगवान् ने ध्रुव को भूमंडल का राज्य दिया और उन्हें सब प्रकार से स्थिर कर दिया।

हरि बैकुण्ठ सिधारे पुनि ध्रुव आये अपने धाम ।
कीन्हों राज तीस षट बर्षन कीन्हें भक्तन काम ॥८०॥

हरि वैकुण्ठ चले गये और ध्रुव अपने घर पधारे। ध्रुव ने छत्तीस वर्ष राज्य और भक्ति का काम किया।

जच्छ प्रबल बाढ़े भुव मंडल तिन मार्‌यो निज भ्रात ।
तिनके काज ध्वंस हरि प्रगटे ध्रुव जगत विख्यात ॥८१॥

इसी समय यक्ष बड़े प्रबल हुए। उन्होंने ध्रुव के छोटे भाई उत्तम को मार डाला। ध्रुव ने इन यक्षों को पराजित किया।

बहुत वर्ष लौं राज कियो ध्रुव फिर आये निज लोक ।
सब के ऊपर सदा बिराजत ध्रुव सदा निःशोक ॥८२॥

राजा ध्रुव ने बहुत वर्षों तक राज्य किया और फिर अपने ध्रुवलोक में अटल रूप से विराज रहे हैं।

विशेष—सूरसागर के चतुर्थ स्कंध, पद ९ और १० में भी ध्रुव की कथा इसी प्रकार है।

८. हंस अवतार

सनकादिक पूछ्यो चतुरानन ब्रह्म जीव को बीच ।
प्रगट हंस बपु धर्‌यो जगतगुरु जो पै गौर सुभीच ॥८३॥

एक बार सनकादि ऋषियों ने ब्रह्मा जी से प्रश्न किया कि ब्रह्म और जीव में क्या अन्तर है? ब्रह्मा जी चिन्ता में पड़ गये। इतने में वहीं भगवान् हंस रूप में

अवतरित हुए। उन्होंने पै (दूध) और पानी के मिश्रित रूप को अलग करके दूध का दूध और पानी को पानी के रूप में अलग कर दिया अर्थात् ब्रह्म और जीव का भेद भली प्रकार से समझा दिया।

नोट—सूरसागर में हंस अवतार की कथा ग्यारहवें स्कंध के पद संख्या ४ में है।

९. पृथु अवतार

यह भुव मंडल को रस काढ़्यो भांति-भांति निज हाथ।
धरि पृथु रूप कियो जग आनंद अखिल लोक के नाथ।।८४।।

(सृष्टि रचना-क्रम में पीछे पद संख्या २४ में पृथ्वी दोहन का उल्लेख हो चुका है। चौबीस अवतारों में पृथु भी एक अवतार माना गया है इसलिए अवतारों के क्रम में पुनः पृथु की कथा संक्षेप में कही है।) प्रभु ने गौ रूप पृथ्वी का दोहन करके उसमें अंतर्हित समस्त रस और वनस्पतियों को निकाल लिया। इस प्रकार पृथु रूप धारण करके सम्पूर्ण लोकों के नाथ प्रभु ने सबको आनन्द दिया।

विशेष—सूरसागर के चतुर्थ स्कंध, पद संख्या ११ में पृथु-अवतार की कथा है।

१०. ऋषभदेव अवतार

प्रियव्रत वंस धरेउ हरि निज वपु ऋषभदेव यह नाम।
कीन्हें काज सकल भक्तन को अंग-अंग अभिराम।।८५।।

स्वायंभुव मनु के प्रथम पुत्र प्रियव्रत के वंश में राजा नाभि की पत्नी सुदेवी के गर्भ से भगवान ऋषभदेव ने अवतार लिया। उन्होंने सभी भक्तों के लिए सुन्दर कार्य किये।

कीन्हों गर्व महा मघवा ने वरषो वर्षा नाहिं।
तब हरि आप मेघ ह्वै वरषे करी परम सुख छाहिं।।८६।।

उस काल में इन्द्र को अभिमान हो गया अतः उन्होंने संसार पर वृष्टि नहीं की। तब ऋषभदेव भगवान ने स्वयं बादल बन कर वृष्टि कर दी और सर्वत्र सुख शान्ति स्थापित कर दी।

ज्ञान उपदेश कियौ पुत्रनि को ब्रह्मावर्त मंझार।
पाछे करि सन्यास जगत में विखरे परम उदार।।८७।।

फिर उन्होंने ब्रह्मावर्त में अपने पुत्रों को ज्ञान-उपदेश किया। बाद में उन्होंने संन्यास धारण करके संसार में विचरण किया।

आठों सिद्धि भई सन्मुख जय करी न अंगीकार।
जय जय जय श्री ऋषभदेव मुनि परब्रह्म अवतार।।८८।।

उनकी तपस्या के कारण उनके सम्मुख सिद्धियाँ उपस्थित हुईं, किन्तु उन्होंने उन्हें स्वीकार न किया। इस प्रकार परब्रह्म के अवतार श्री ऋषभदेव मुनि की जय हो।

विशेष—ऋषभदेव की कथा सूरसागर के पंचम स्कन्ध पद दो में है।

११. हयग्रीव अवतार

ब्रह्म सभा में जज्ञ कियो जब करत वेद उच्चार ।
प्रकट भये हयग्रीव महानिधि परब्रह्म अवतार ॥८९॥

एक बार ब्रह्मा ने यज्ञ किया । वेदों का उच्चारण हुआ । उस समय भगवान को हयग्रीव (घोड़े की गर्दन वाले) अवतार लेना पड़ा ।

चार वेद ले गयो सखासुर जल में रह्यौ छुपाय ।
धरि हयग्रीव रूप हरि मार्‌यो लीन्हें वेद छुड़ाय ॥९०॥

कारण यह था कि शंखासुर वेदों को चुराकर सागर के नीचे पाताल में चला गया । तब भगवान हयग्रीव बन कर सागर में कूदे, उन्होंने शंखासुर का संहार किया और वेदों को लेकर ऊपर आए ।

विशेष—सूरसागर में हयग्रीव की कथा आठवें स्कन्ध के पद १६-१७ में है ।

१२. मत्स्यावतार

सत्यव्रत राजा रविबसी प्रथम भये मनु-बस ।
कीन्हों तप बहु भांति परम रुचि प्रगट भये हरि अंस ॥९१॥

मनु वंश में राजा सत्यव्रत सर्वप्रथम व्यक्ति थे । ये सूर्य के पुत्र थे । [illegible] कर इनको विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र वैवस्वत मनु कहा गया । ये बड़े तपस्वी थे । उस समय भगवान् के अंशावतार रूप में मत्स्यावतार हुआ ।

धरि लघु रूप मीन को मोहन आये उनके पानि ।
तब उन जल में डारि दियो फिर तब बोले हरि बानि ॥९२॥

जब वे अंजलि में जल ले रहे थे तब एक छोटी मछली बन कर भगवान इनके हाथ में आये । मछली देखते ही उन्होंने उसे पानी में डाल दिया । तब वह मछली मनुष्य की वाणी में बोली ।

जल के बीच डारि जनि मोकों बड़े मच्छ डर लाग ।
यह कहि बृहत रूप हरि धारेउ सत्यव्रत के भाग ॥९३॥

तुम मुझे जल में न डालो, क्योंकि मुझे बड़ी मछलियों से डर लगता है । राजा ने उसे उठाकर अपने कमंडल में डाल लिया । पर वह तो बड़ी हो गयी । राजा ने उसे वहाँ से हटाकर जलाशय में डाला पर वह तो बहुत बड़ा मच्छ हो गया ।

सतयें दिवस होयगो परलय, आवेगी इक नाव ।
तामें बैठि सप्तरिषि अरु तुम करो भजन मम भाव ॥९४॥

तब महामत्स्यरूपधारी भगवान् ने राजा सत्यव्रत से कहा कि आज के सातवें दिन प्रलय होगी । सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायगी । तब एक नाव आयेगी । तुम सप्तऋषियों के साथ संसार के सभी धान्यों के बीज लेकर इस नाव में बैठ जाना, मेरा भजन करना ।

इतनी कहि हरि नृप देखत ही भये अन्तर्धान ।
सातें दिवस भयो जब परलय तब कीन्हों नृप ज्ञान ॥९५॥

इतना कह कर भगवान् अन्तर्धान हो गये । सातवें दिन प्रलय हुई । समस्त पृथ्वी जलमग्न होने लगी ।

सर्वहि अन्न को वीज लियो नृप और लियो रिषि साथ ।
वैठो नाव ध्यान हरि को करि दरसन दीन्हों नाथ ॥९६॥

तव राजा ने सभी अन्नों के वीज इकट्ठे कर लिये । उन्होंने सप्तऋषियों को बुलाया और नाव में वैठ गये और भगवान् का ध्यान करने लगे ।

वासुकि नाग आय तहं तत्छण वांधी दृढ़ करि नाव ।
पूंछ्यो ज्ञान कह्यो सो सव हरि तत्व विधान बनाव ॥९७॥

इसी समय शेषनाग आये । उन्होंने नाव को महामत्स्य से वांध दिया । मत्स्य रूप धारी भगवान् को देखकर राजा सत्यव्रत ने उनसे आत्म तत्व के ज्ञान के सम्बन्ध में प्रश्न किये । भगवान् ने जल में विचरण करते हुए सारे आत्म-तत्त्वों का विस्तार से उपदेश किया ।

वहुत काल लौं विचरे जल में तव हरि भये सुसांति ।
वीत्यो प्रलय विविध नाना करि सृष्टि रची वहु भांति ॥९८॥

इस प्रकार जव तक प्रलय-काल रहा, मत्स्यरूपी भगवान जल में विचरण करते रहे । अन्त में शान्ति हुई और दुवारा सृष्टि की रचना हुई ।

यह हरि मच्छरूप जव लीन्हों कियो चरित विस्तार ।
जय जय जय श्री मीन महावपु जय जय जगत अधार ॥९९॥

इस प्रकार भगवान् के मत्स्य रूप में अवतार हुआ । अतः संसार के आधार रूप मत्स्यावतार भगवान् की जय हो ।

विशेष—मत्स्यावतार की विस्तृत कथा भागवत के अष्टम स्कंध अध्याय २४ में और सूरसागर के आठवें स्कंध के १६वें पद में वहुत ही संक्षेप में है ।

१३. कूर्मावतार

सुर अरु असुर मथन कीन्हों निधि चौदह रतन निकार ।
पर्वत पीठ धरेउ हरि नीके लियो कूर्म अवतार ॥१००॥

जव सुर और असुरों ने मिल कर समुद्र-मंथन किया और उसमें से चौदह रत्न निकाले तो मंदराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करने के लिए भगवान् ने कच्छप रूप धारण किया था ।

समुद्र मंथन के लिए मंदराचल पर्वत को मथानी वनाया गया था । शेषनाग की रस्सी लगी थी, जिसके एक ओर देवता और दूसरी ओर असुर लगे हुए थे । मंदराचल का भार अधिक होने से सागर की तलहटी कटने लगी अतः आधार के लिए किसी कठिन भूमि की आवश्यकता थी । इस समस्या का हल भगवान ने अपने कच्छप रूप

से किया । कच्छप की पीठ पर मंदराचल की स्थिति हो गयी और मंथन कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ ।

विशेष –सूरसागर के अष्टम स्कंध मे कथा कुछ अधिक विस्तार मे है ।

१४. नृसिंह अवतार

हिरन्यकसिपु अति प्रबल दनुज हूं तप कीन्हों परचंड ।
तब उन वर दीन्हों चतुरानन कीन्हों अमर अखंड ॥१०१॥

हिरण्यकश्यप असुर अत्यन्त प्रबल था । उसने बड़ा प्रचंड तप किया । इस पर ब्रह्मा ने उसे वरदान द्वारा अमर और अखंड कर दिया । (उसे वरदान दिया कि उसे मनुष्य या जानवर नही मार सकता और न उसे अस्त्र-शस्त्र ही काट सकते हैं ।)

जब तप गयो तबहि मघवा ने सब संपति गहि लीन्हीं ।
गहे कच कामिनि जब राजा की तब नारद सिख दीन्हीं ॥१०२॥

जब हिरण्यकश्यप तपस्या के लिए जंगल मे गया था तब उसकी राजधानी को अरक्षित समझ कर इन्द्र ने हमला किया और उसकी सारी सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया । उसने उसकी पत्नी की चोटी भी पकड़ ली । उस समय नारद ने उसे ऐसा करने से मना किया और शिक्षा दी ।

याके गर्भ बसत है हरि-जन सुनु सुरपति यह बात ।
तब तजि दई आप लै आये निज आस्रम विख्यात ॥१०३॥

नारद ने कहा कि इसके गर्भ मे भगवान के परम भक्त का निवास है । ऐसा सुनकर इन्द्र ने उस स्त्री को छोड़ दिया । तब नारद ऋषि उस नारी को अपने आश्रम पर ले आये ।

नित प्रति ज्ञान-कथा हंसन सों कहत रहत मुनिराज ।
सुनि प्रहलाद प्रसन्न कोखि में अति आनन्द समाज ॥१०४॥

यहाँ आश्रम में महामुनि नित्य प्रति ज्ञान की कथाएँ संतो से कहते थे, जिसे मा की कोख मे बैठा हुआ प्रह्लाद सुना करता था ।

ता पाछे तप कियो असुर बहु फिर देख्यो निज धाम ।
तब नारद मुनि दई कयाध्रुव लै आयो है गाम ॥१०५॥

तपस्या के उपरान्त हिरण्यकश्यप अपने घर आया । तब नारद ने उसकी पत्नी कयाधू को उसे दिया । वह उसे लेकर अपने स्थान पर आया ।

पाछे लोकपाल सब जीते सुरपति दियो उठाय ।
वरुण कुबेर अग्नि जम मारुत सुबस कियो छन मांय ॥१०६॥

पीछे हिरण्यकश्यप ने सारे लोकपालों को जीत लिया । इन्द्र को भी हरा दिया । वरुण, कुबेर, अग्नि, यम और पवन सब उसके वश मे हो गये ।

हाहाकार भयो सुरलोकनि गये सबै अज पास ।
तब अज ध्यान कियो माधव को बानी भई अकास ॥१०७॥

सारे सुरलोक मे हाहाकार हुआ । सभी ब्रह्मा के पास गए । तब ब्रह्मा ने भगवान् का ध्यान किया और आकाशवाणी हुई ।

सकल लोक यह देत असुर दुख तऊ न करौं संहार ।
जब मेरे जन को दुख देहै छिनहिं में डारौं मार ॥१०८॥

यह असुर सारे लोकों को दुख दे रहा है, किन्तु जब यह मेरे भक्त को दुःख देगा, तब मैं इसे मारूँगा ।

जब प्रहलाद प्रगट ताके गृह पांच वर्ष के भैहैं ।
आदर बहु कीन्हों राजा ने पढ़न विप्र गृह गैहैं ॥१०९॥

जब प्रह्लाद हिरण्यकश्यप के घर पर पाँच वर्ष के हुए तब राजा ने बड़े आदर और प्यार के साथ उनको ब्राह्मण के घर पढ़ने को भेजा ।

जब वह विप्र पढ़ावैं कुछ कुछ सुनके चित धरि राखैं ।
जब वह जाय तबहिं सबहिनि सों राम राम मुख भाखैं ॥११०॥

जब ब्राह्मण उनको कुछ पढ़ाया करता था, तो उसको सुनकर मन में रख लेते थे। जब वह गुरु कहीं अन्यत्र चला जाता था तब प्रह्लाद सभी बच्चों को इकट्ठा करके उन्हें 'राम राम' पढ़ाया करते थे ।

लरिका और पढ़त साला में तिनहिं करत उपदेश ।
हरि को भजन करो सबही मिलि और जगत सुख लेश ॥१११॥

जो बालक पाठशाला में पढ़ते थे उनको प्रह्लाद पढ़ाते थे कि तुम सब मिलकर भगवान् का भजन करो। संसार का और सब सुख मिथ्या है ।

यह विधि कर उपदेस सबन को किये भजन रसलीन ।
पंडामर्क जो पूंछन लाग्यो तब यह उत्तर दीन ॥११२॥

इस प्रकार से उपदेश करके सभी बच्चों को प्रह्लाद ने रसमग्न कर दिया। जब गुरु पंडामर्क को यह सब मालूम हुआ तो उन्होंने प्रह्लाद से पूछा। प्रह्लाद ने उन्हें उत्तर दिया—

राम कृष्ण अवतार मनोहर भक्तन के हित काज ।
सोई सार जगत में कहियत सुनो देव द्विजराज ॥११३॥

हे ब्राह्मण देवता ! भगवान् भक्तों के लिए अवतार लेते हैं। भगवान् ही जगत का सार है ।

एही बात जगत में नीकी सोई पढ़त हम आज ।
जबहिं विप्र कहेउ जो असुर सों पुत्र पढ़त बिन काज ॥११४॥

यही बात संसार में अच्छी है । उसे ही हम पढ़ते हैं । यह सुनकर ब्राह्मण ने जाकर राजा से कह दिया कि बालक प्रह्लाद तो बेकार की बातें पढ़ रहा है ।

तबहिं असुर प्रहलाद बुलाये लियो गोद भरि अंक ।
कहो पुत्र तुम कहा पढ़े हो, पूंछत कहेउ निसंक ॥११५॥

तब हिरण्यकश्यप ने पुत्र को बुलाया। गोद में बिठाया और पूछा कि बेटे तुम क्या पढ़ते हो ?

स्रवन, कीरतन, स्मरन, पादरत, अरचन, बंदन, दास।
सख्य और आतमा-निवेदन प्रेम लच्छना जास॥११६॥

प्रह्लाद ने कहा कि मैं तो श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन और प्रेम-लक्षणा भक्ति ही पढ़ना हूँ।

विशेष—यहां नवधा भक्ति में प्रेमलक्षणा भक्ति जोड़ी गयी है। नवधाभक्ति भागवतीय है किन्तु प्रेमलक्षणा भक्ति कृष्ण-भक्तों की मधुरा-भक्ति है। 'सारावली' में मधुरा-भक्ति को प्रमुखता दी गयी है, इसीलिए यहां प्रेम-लक्षणा-भक्ति का उल्लेख हुआ है।

सुनो पिता हौं यही पढ्यो हूं और बात नहिं जानूँ।
इतने और मोहि जो कहियत सो कबहूं नहिं मानूँ॥११७॥

प्रह्लाद ने कहा कि हे पिता, मैंने तो यही पढ़ा है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता। यदि कोई और कुछ कहता है तो मैं उसे नहीं मानता।

दीन्हों पटकि भूप धरनी पर कहेउ विप्र सों खीझ।
रे मूरख तू कहा पढ़ायो कैसे देउ तोहि रीझ॥११८॥

यह सुनकर राजा ने बेटे को उठाकर भूमि पर पटक दिया और उसने ब्राह्मण से कहा कि हे मूर्ख! तुमने यह क्या पढ़ाया? मैं तुमसे कैसे प्रसन्न हो सकता हूँ?

जो यह मेरो बैरी कहियत ताको नाम पढ़ायो।
देहु गिराय याहि पर्वत तें छिन मत जीव करायो॥११९॥

जो मेरा वैरी है, उसी का नाम इसे पढ़ाता है। पर्वत पर से गिरा कर इसे मार डालो।

दीन्हों डारि सैल तें भू पर पुनि जल भीतर डारो।
डारि अग्नि में सस्त्रनि मारो नाना भांति प्रहारो॥१२०॥

पहले प्रह्लाद को पर्वत पर से गिराया फिर जल में डुबाया। उसे अग्नि में जलाया और शस्त्रों से मरवाया।

तऊ न घात भई अंग न को जहं तहं राम बचायो।
तब नृप आप शस्त्र कर गहिकै बहुतहि त्रास दिखायो॥१२ ॥

फिर भी उसके अंगों में कोई घाव न लगे। हर बार भगवान ने उसे बचाया। तब राजा ने स्वयं शस्त्र लेकर उसे पकड़ा और भय दिखाया।

कहां है राम-कृष्न वह तेरो यों कहि गर्जन कीन्हों।
घट घट जल थल व्योम धरनि मैं व्यापक यह धुनि लीन्हों॥१२२॥

उसने कहा कि तेरा राम-कृष्ण कहाँ है? ऐसा कह कर वह गरजा। घट-घट, जल-थल, आकाश और पृथ्वी में उसके गर्जन की ध्वनि गूंज उठी।

तब सैं खड्ग खम्भ में मारयो भयो सब्द अति भारी।
प्रगट भये नरहरि वपु धरि हरि कटक्ट करि उच्चारी॥१२३॥

उसने प्रह्लाद को खम्भे से बांध दिया और तलवार लेकर बड़े जोर से गरजा। तब उस खम्भे से भगवान् नृसिंह प्रकट हुए। उन्होंने कट-कट की आवाज की।

पकरि लियो छिन मांझ असुर वल डारो नखन विदारी ।
रुधिर पान करि आँत माल धरि जय जय सब्द उचारी ॥१२४॥

उन्होंने ताकत से असुर को पकड़ लिया और नाखूनों से उसे चीर डाला। उसका खून पी डाला और आंतें निकाल डाली। भगवान् का चारों ओर जय-जयकार हुआ।

मारो दैत्य दुष्ट इक क्षण में जय नृसिंह वपु धारे ।
पुष्पन वृष्टि करत सुर नर मुनि भये भक्त रखवारे ॥१२५॥

भगवान् ने नर-सिंह शरीर धारण करके एक क्षण ही में दुष्ट हिरण्यकश्यप को मार डाला। देवता, मनुष्य और मुनियों ने पुष्पों की वर्षा की।

रमा निकट नहिं आवत हरि के ऐसो वपु हरि धारो ।
अज सनकादि देव नारद मुनि जालन रूप निहारो ॥१२६॥
अपनी अपनी अस्तुति करिके सबहिन यहै सुनायो ।
गंधर्व अरु विद्याधर चारण विमल विमल यश गायो ॥१२७॥

भगवान् ने नृसिंह रूप का ऐसा भयंकर रूप धारण कर रखा था कि भयवश लक्ष्मी जी उनके निकट नहीं जाती थीं। ब्रह्मा, सनकादि मुनियों और देवताओं ने स्तुति की तथा गन्धर्व और विद्याधर-चारणों ने उनके विमल यश का गान किया।

जब प्रहलाद आय हरिपद सों शीश नाय यह भाख्यो ।
जय जय जय जगदीस जगत गुरु मोर अधम प्रन राख्यो ॥१२८॥

प्रह्लाद जी उपस्थित हुए और प्रभु के चरणों में सिर नवाकर कहा कि हे जगदीश, जगद्गुरु आपकी जय हो। आपने मुझ जैसे अधम की प्रतिज्ञा की रक्षा की।

तुमहीं आदि अखंड अनूपम अशरन शरन मुरार ।
देव देव परब्रह्म परि पूरन भक्त हेतु अवतार ॥१२९॥

आप आदि, अखंड और अनूप हैं, अशरण देने वाले हैं। हे देवों के देव, परिपूर्ण परब्रह्म प्रभु, आप अपने भक्तों के उद्धार के लिए अवतार लेते हैं।

जहं जहं भीर परत भक्तन को तहं तहं होत सहाय ।
अस्तुति करि मन हर्ष बढ़ायो लेहन जीभ कराय ॥१३०॥

और जब-जब भक्तों पर कठिनाई आ पड़ती है तब तब आप उनकी सहायता करते हैं। प्रह्लाद ने इस प्रकार स्तुति की और प्रभु को प्रसन्न किया तब प्रभु ने अपनी जिह्वा को मुख के भीतर कर लिया।

तब बोले नरसिंह कृपा करि सुनहु भक्त मम बात ।
मनवंतर को राज दियो तोहि. धर्‌यो सीस पर हाथ ॥१३१॥

तब नृसिंह भगवान् कृपा करके बोले, हे भक्त ! मेरी बात सुनो। मैंने तुम्हें इस मन्वन्तर का राज्य दे दिया। ऐसा कहकर उनके सिर पर हाथ रखा।

निर्गुन, सगुन, होय मैं देख्यो तो सो भक्त न पाऊं ।
जहं जहं परत भीर भक्तन की तहां प्रकट हो आऊं ॥१३२॥

उन्होंने फिर कहा, मैंने निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में देखा तुझ-सा भक्त नहीं पाया। मेरा तो नियम है कि जब-जब भक्तों पर भीड़ पड़ती है, मैं वहाँ प्रकट होता हूँ।

सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, तो को कबहुं न त्यागूं ।
जैसे धेनु बच्छ को चाटत, तैसे मैं अनुरागूं ॥१३३॥

तुम मेरी प्रतिज्ञा सुनो, मैं तुझे कभी नहीं छोड़ूँगा। जिस प्रकार गाय अपने बच्चे को प्यार से चाटती है, उसी प्रकार मैं तुझे प्यार करता हूँ।

जो मांगो सो देहुं तुरत ही नहिं विलम्ब कछु लाग ।
तब प्रहलाद यही बर मांग्यो चरन कमल अनुराग ॥१३४॥

इस समय जो मांगो, तत्काल दूँगा। तब प्रह्लाद ने यही वर मांगा कि मुझ में आपके चरणों के प्रति सच्चा अनुराग हो।

करी कृपा दीन्हो करुनानिधि अटल भक्ति थिर राज ।
अन्तर्धान भये हरि तहँ ते सफल भये सब काज ॥१३५॥

इस पर भगवान् ने कृपापूर्वक उसको अचल भक्ति और अटल राज्य दिया। ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

विशेष—यह कथा 'सूरसागर' के सप्तम स्कध पद सख्या २-५ मे अति संक्षेप में है। सारावली मे कथा भागवत के अनुसार कुछ विस्तार से है।

नारद रूप जगत उद्धारण विचरत लोकन माय ।
करि उपदेश ज्ञान हरि भक्तहि अरु बैराग्य दृढ़ाय ॥१३६॥

भगवान् ने जगत के उद्धार के लिए नारद रूप धारण किया। वे सारे लोको में शुद्ध भाव से विचरण करते थे। भक्त को ज्ञान का उपदेश करते और जगत् के प्रति वैराग्य भावना उत्पन्न करते थे। नारद को भी अंशावतार कहा है किन्तु इनकी गणना चौबीस अवतारों मे नहीं है।

१५ मनु अवतार

स्वायंभुव सतरूपा दोऊ कहियत हैं अवतार ।
जग को धर्म प्रचार कियो भुव भक्ति-कर्म आचार ॥१३७॥

स्वायभुव मनु और सतरूपा भी अवतार कहे गये हैं। इन लोगो ने ससार में धर्म प्रचार किया और पृथ्वी मे सदाचार के कर्म किये।

१६. धन्वन्तरि अवतार

करुणा कर जलनिधि ते प्रकटे सुधा कलस लै हाथ ।
आयुर्वेद विस्तारन कारन सब ब्रह्मांड के नाथ ॥१३८॥

जब समुद्र मन्थन हुआ तब धन्वन्तरि रूप धारण करके अमृत का घडा लिए हुए ये प्रकट हुए। इनका अवतार आयुर्वेद के प्रसार के लिए हुआ था।

विशेष—'सूरसागर' के अष्टम स्कध के पद ८ मे धन्वन्तरि का उल्लेख है।

१७. परशुराम अवतार

क्षत्रिय दुष्ट बढ़े जो भुव पर लियो कृष्ण अवतार ।
परशुराम ह्वै के द्विज थापे दूर कियो भू भार ।।१६६।।

जब पृथ्वी में क्षत्रियों में दुष्टता आ गयी, तब भगवान् कृष्ण ने परशुराम अवतार लिया। उन्होंने क्षत्रियों को नष्ट करके ब्राह्मणों को स्थापित किया। इस प्रकार पृथ्वी का बोझ दूर हुआ।

विशेष—पुष्टिमार्गी होने के कारण सूरदास जी कृष्ण को अवतार मात्र नहीं मानते, उन्हें अवतारी मानते थे। इसीलिए स्थल-स्थल पर लिखा है कि कृष्ण ने अवतार धारण किए।

नोट—सूरसागर में परशुराम अवतार की कथा नवम स्कंध में है।

१८. रामावतार

रघुकुल वंश चतुर चूड़ामणि पुरुषोत्तम अवतार ।
दशरथ के गृह जन्म लियो हरि रामरूप सुकुमार ।।१४०।।

रघुवंश में राजा दशरथ के घर श्रीराम के रूप में पुरुषोत्तम का अवतार हुआ।

विशेष—पुरुषोत्तम शब्द यहाँ साभिप्राय है। इसका अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम रूप कृष्ण जिसे आरम्भ के प्रथम पद में ही व्यक्त किया गया है। 'सारावली' में रामावतार की प्रस्तावना विस्तार से है। 'सूरसागर' में यह प्रस्तावना नहीं है। भागवत में भी यह प्रस्तावना-अंश इस रूप में नहीं है। 'सारावली' में अनेक बार कहा है कि कवि ने राम कथा के लिए वाल्मीकि का आधार लिया है। इसलिए यहां रामावत,र की प्रस्तावना वाल्मीकि-रामायण से मिलती है। अनेक पौराणिक कथाओं का जो विकास सूर-काल तक प्राप्त था उसका किंचित प्रभाव भी यहाँ प्राप्त हो जाता है।

रावण कुम्भकरण असुराधिप वढ़े सकल जग मांहि ।
सवहिन लोकपाल उन जीते कोऊ बाँच्यो नांहि ।।१४१।।

रावण-कुम्भकर्ण असुर-राज बहुत बढ़ गये थे। उन्होंने सारे लोकपालों को जीत लिया।

विशेष—यहाँ रामावतार के कारणों पर उसी प्रकार प्रकाश डाला गया है जैसे कि अध्यात्म रामायण या तुलसीकृत रामायण में है।

सकल देव मिलि जाय पुकारे चतुरानन के पास ।
लै शिव संग चले चतुरानन क्षीर सिंधु सुखवास ।।१४२।।

सभी देवताओं ने मिल कर ब्रह्मा के पास पुकार की। तब ब्रह्माजी शिवजी को साथ लेकर सुख-सिन्धु भगवान् के निवास क्षीरसागर के तट पर पहुंचे।

अस्तुति करि बहु भाँति जगाये तब जागे निज नाथ ।
आज्ञा दई जाय कपि कुल में प्रगटो सब सुर साथ ॥१४३॥

सभी देवताओं ने अनेक प्रकार से स्तुति की और प्रभु को जगाया। जगने पर उन्होंने आज्ञा की, तुम सब चलकर के वानरो के कुल में उत्पन्न हो। तात्पर्य यह कि मैं तो राजा दशरथ के यहाँ रामावतार लूँगा, तुम सब देवता पहले से ही वानर रूप में *वहाँ विद्यमान रहो।*

तब ब्रह्मा सबहिन सों भाष्यो सोई सब सुर कीन्हों ।
सातों द्वीप जाय कपिकुल में आय जन्म सुर लीन्हों ॥१४४॥

तब ब्रह्मा ने सबसे कहा और उन सबने उनका आदेश माना। सभी देवताओं ने सातो द्वीपों मे वानर-कुल मे जन्म धारण कर लिया।

अपने अंश आप हरि प्रकटे पुरुषोत्तम निज रूप ।
नारायण भुव भार हरो है अति आनन्द स्वरूप ॥१४५॥

भगवान् ने अपने पुरुषोत्तम आनन्दस्वरूप मे अवतार लिया और पृथ्वी का भार उतारा।

विशेष राम और कृष्ण अवतार ही पुरुषोत्तम के पूर्णावतार हैं। इनमे ही आनन्द का आविर्भाव है। शेष अवतार तो केवल जगत् के उद्धार के निमित्त हैं।

वासुदेव यों कहत वेद में हैं पूरन अवतार ।
शेष सहस मुख रटत निरंतर तऊ न पावत पार ॥१४६॥

प्रभु का पूर्णावतार वेद विदित है। इसकी महिमा अनन्त है। शेषनाग अपनी हजार जिह्वा से उसका वर्णन करते है किन्तु वे इसका पार नही पा सकते।

विशेष—प्रभु की अनन्त महिमा के संदर्भ मे 'तऊ न पावत पार' पद की आवृत्ति सारावली में अनेक बार हुई है।

सहस वर्ष लौं ध्यान कियो शिव रामचरित सुख सार ।
अवगाहन करिकै सब देख्यो तऊ न पायो पार ॥१४७॥

शिव ने हजार वर्ष पर्यन्त रामचरित के आनन्द तत्त्व का अवगाहन किया, फिर भी वे पार न पा सके।

बिती समाधि सती तब पूछ्यो कहो मर्म गुरु ईश ।
काको ध्यान करत उर अन्तर को पूरन जगदीश ॥१४८॥

जब शिव की समाधि बीती तब सती ने उनसे प्रश्न किया। मैं आप में गुरु रूप मानकर पूछती हूँ कि आप किसका ध्यान कर रहे थे। पूर्ण पुरुषोत्तम कौन है?

तब शिव कहेउ राम अरु गोविंद परम इष्ट इक मेरे ।
सहस वर्ष लौं ध्यान करत हौं राम कृष्ण सुख केरे ॥१४९॥

तब शंकरजी ने कहा—राम गोविन्द हैं, वही मेरे इष्ट हैं। उनके आनन्द रूप का मैं हजार वर्षों तक ध्यान लगाता रहा।

विशेष— यहाँ भी राम और कृष्ण दोनों का नाम लिया है कि यही दो पूर्णावतार हैं।

तामें राम समाधि करी अब सहस वर्ष लौं वाम।
अति आनन्द मगन मेरो मन अंग अंग पूरन काम ॥१५०॥

हे वामा ! उसमें मैंने हजार वर्ष की समाधि लगाई और मेरा मन आनन्द मग्न हो गया। अब मेरी सब प्रकार की इच्छाएँ पूरी हो गयीं।

दाया करि मोको यह कहिये अमर होहुँ जेहि भांत।
मोहिं नारद मुनि तत्व बतायो ताते जिय अकुलात ॥१५१॥

इस पर सती ने कहा—आप दया करके यह रामचरित कहिए जिसे सुन कर मैं भी अमरता पाऊँ। मुझे नारद जी ने इस सम्बन्ध में संकेत किया था इसीलिए उसे जानने के लिए मैं व्याकुल हूँ।

महादेव तब थिर करिकै यह चरित कियो विस्तार।
सो ब्रह्मांडपुरान व्यास मुनि कियो वदन उच्चार ॥१५२॥

तब शंकरजी ने कृपा करके इस राम-कथा का प्रकाशन सती के प्रति किया। इसके उपरान्त इसी को व्यास मुनि ने ब्रह्मांड पुराण में कहा।

विशेष—इस पद से आरम्भ करके राम-कथा का विस्तार किस प्रकार हुआ उस पर प्रकाश डाला गया है।

मुनि वाल्मीकि कृपा सातो ऋषि राम मंत्र फल पायो।
उलटो नाम जपत अघ बीत्यो पुनि उपदेश करायो ॥१५३॥

वाल्मीकि जी पर सप्तर्षियों ने दया की, उन्हें राम-नाम का मन्त्र दिया। वाल्मीकिजी ने उल्टे राम-नाम का जप किया। ऐसा करने से उनके पाप कट गये। फिर ऋषियों ने उन्हें उपदेश दिया।

(तात्पर्य यह कि वाल्मीकि तीसरे व्यक्ति हैं जिन्हें रामचरित की प्राप्ति हुई।)

रामचरित वर्णन के कारन वाल्मीकि अवतार।
तीनों लोक भये परिपूरन रामचरित सुखसार ॥१५४॥

रामचरित वर्णन करने के लिए ही वाल्मीकिजी इस जगत में अवतरित हुए। उनके द्वारा वर्णित पूर्ण रामचरित से तीनों लोकों को सुखसार प्राप्त हुआ।

शतकोटी रामायन कीनों तऊ न लीन्हों पार।
कह्यो वशिष्ठ मुनि रामचन्द्र सों रामायन उच्चार ॥१५५॥

उन्होंने सौ करोड़ श्लोकों में रामायण की, रचना की फिर भी वे प्रभु के रहस्य का पार न पा सके। फिर वशिष्ट मुनि ने रामचन्द्र के प्रति योग वाशिष्ट रूप में कहा।

कागभुसुंडि गरुड़ सों भाष्यो रामचरित अवतार।
सकल वेद अरु सास्त्र कह्यो है रामचन्द्र जससार ॥१५६॥

कागभुशुण्ड ने गरुड़जी से रामावतार का वर्णन किया। इस क्रम से सभी वेद-शास्त्रों के सार रूप रामचन्द्र जी के यश का वर्णन किया।

कछु संक्षेप सूर अब बर्नत लघुमति दुर्बल बाल ।
यह रसना पावन के कारन मेटन भव जंजाल ॥१५७॥

(ऊपर कही गई रामाचरित की कथा के उपरान्त सूरदास जी बड़ी नम्रता से कहते हैं कि—)

मैं एक लघु दुर्बल और बाल बुद्धि वाला व्यक्ति सक्षेप मे उसी रामचरित का वर्णन कर रहा हूँ । यह मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मेरी जिह्वा पवित्र हो जाय और सांसारिक जंजाल मिट जाये ।

तीनों व्यूह संग लै प्रगटे पुरुषोत्तम श्रीराम ।
संकर्षन प्रद्युम्न लक्ष्मन भरत महासुख धाम ॥१५८॥
शत्रुघ्नहिं अनिरुध कहियतु है चतुर्व्यूह निजरूप ।
रामचन्द्र प्रगटे जब गृह में हरषे कोसल भूप ॥१५९॥

पुरुषोत्तम रूप श्रीराम अपने तीनों व्यूहो के साथ प्रकटे । सकर्षण (बलराम) लक्ष्मण हैं, प्रद्युम्न भरत और अनिरुद्ध शत्रुघ्न । इस प्रकार राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न के रूप मे पूर्ण पुरुषोत्तम का चतुर्व्यूहो समेत अवतार हुआ । इस प्रकार जब भगवान् रामचन्द्रजी प्रकटे तब राजा दशरथ बडे प्रसन्न हुए ।

विशेष—पुष्टिमार्ग के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम के चार व्यूह है—श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध । जैसा कि ऊपर कहा गया है पुष्टिमार्गी सत कृष्ण को परब्रह्म का मूल रूप मानते हैं । कृष्ण-बलराम आदि अवतार हैं अत. रामावतार जो कृष्णावतार से भी पहले हुआ था, पुष्टिमार्गियो के मत मे मूल रूप पुरुषोत्तम (कृष्ण) का रूप हुआ ।

पुष्य नक्षत्र नौमी जु परम दिन लग्नसुद्ध सुभवार ।
प्रगट भये दशरथ गृह पूरन चतुर्व्यूह अवतार ॥१६०॥

पुष्य नक्षत्र नवमी के शुभ दिन चतुर्व्यूह के अवतार रूप मे प्रभु राजा दशरथ के घर प्रकट हुए ।

विशेष—सभी कुशल कवियों ने भगवान् के अवतार का प्रकट होना ही लिखा है, जन्म मनुष्य का होता है । भगवान् तो प्रकट होते है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है—'भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी' । 'सूरसागर' में है—'रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर' ।

अति फूले दशरथ मनहीं मन कौसल्या सुख पायो ।
सौमित्रा कैकइ मन आनद ये सबहिन सुत जायो ॥१६१॥

राजा दशरथ मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुए, कौशल्याजी को बड़ा सुख मिला । सुमित्रा और कैकेयी को भी आनन्द हुआ क्योंकि सब ने पुत्र को जन्म दिया ।

गुरु बशिष्ट नारद मुनि ज्ञानी जन्मपत्रिका कीनी ।
रामचन्द्र विख्यात नाम यह सुर मुनि की सुधि लीनी ॥१६२॥

गुरु वशिष्ट नारद के समान भक्त और ज्ञानी थे, उन्होंने जन्मपत्रिका लिखी

और इनको रामचन्द्र नाम से विख्यात किया। इस प्रकार अवतार धारण करके प्रभु ने देवताओं और मुनियों की सुधि ली।

देत दान नृप राज द्विजन को सुरभी हेम अपार।
सब सुन्दरि मिलि मंगल गावत कंचन कलस दुआर ॥१६३॥

राजा दशरथ ब्राह्मणों को गायें और बहुत-सा सोना दान करने लगे और सारी नारियों ने मिलकर मंगल गान किया। दरवाजे पर सोने के कलश रखे गये।

आये देव और मुनि जन सब दे असीस सुख भारी।
अपने अपने धाम चले सब परम मोद रुचिकारी ॥१६४॥

सभी देवता और ऋषि लोग आये। उन्होंने आशीर्वाद देकर बड़ा सुख अनुभव किया। ऐसा करके परमानन्द प्राप्त करते हुए सभी अपने-अपने स्थान को गये।

मन वांछित फल सबहिन पायो भयो सबन आनन्द।
बाल रूप ह्वै के दशरथ सुत करत केलि स्वच्छन्द ॥१६५॥

भगवान के दर्शन से सब की मनोकामना पूरी हुई, सबको आनन्द मिला। भगवान ने बालरूप होकर खेलना आरम्भ किया।

घुटुरुन चलत कनक आंगन में कौसल्या छवि देखत ॥
नील नलिन तसु पीत झंगुलिया घन दामिनि द्युति पेखत ॥१६६॥

राजा दशरथ के सोने से बने हुए आंगन में वे घुटने चलने लगे। उनके इस रूप की शोभा कौशल्याजी देखती हैं। उनके नील कमल के समान शरीर पर पीली झंगुली ऐसी शोभायमान लगती है जैसे बादलों में बिजली हो।

विशेष—'झंगुली' प्राचीन काल में बच्चों को ढीली फ्राक की भाँति एक पहिनावा थी।

कबहूं माखन रोटी लैके खेल करत पुनि मांगत।
मुख चुम्बत जननी समुझावत आय कंठ पुनि लागत ॥१६७॥

कभी मक्खन-रोटी लेकर रामजी खेल करते और फिर फिर मांगते। मां बच्चे का चुम्बन करती है, समझाती है और गले लगाती है।

विशेष—यहां से राम का बाल वर्णन है। इसमें वात्सल्य का चित्रण है। सूरदास जी वात्सल्य के सिद्ध कवि थे। इसीलिए राम के वात्सल्य-चित्रण में भी उन्होंने कमनीयता दिखाई है।

कागभुशुण्ड दरस को आये पांच वर्ष लौं देखे।
स्तुति करी आपु बर पायो जन्म सफल करि लेखे ॥१६८॥

कागभुशुण्ड दर्शन के लिए आए। वे पांच वर्ष तक वहां रहे और रामजी के दर्शन करते रहे। उन्होंने भगवान की स्तुति की, उन्हें वर मिला और उन्होंने अपने

जन्म को सफल समझा।[1]

कृपा करी निज धाम पठायो अपनो रूप दिखाय।
वाके आश्रम कोउ बसत है माया लगत न ताय ॥१६६॥

उन्होने मुझ पर कृपा की, अपने रूप को दिखा कर अपने स्थान को भेज दिया। जो भी कोई उस आश्रम पर बसता है उसे माया नही लगती।

विशेष—रामचरितमानस मे भी कागभुशुण्ड को भगवान राम ने अपना विराट रूप दिखाया था।[2]

प्रातकाल उठि जननि जगावत उठो मेरे बारे राम।
उठि बैठे दँतुवन लै आई करी मुखारी स्याम ॥१७०॥

प्रात काल, माता कौशल्या यह कह कर उन्हे जगाती कि 'हे मेरे राम अब जागो।' यह सुनकर रामजी उठ बैठे, मा दातुन लेकर आयी और रामजी ने दन्त मंजन किये।

चारों भ्रात मिल करत कलेऊ मधु मेवा पकवान।
जल आचमन आरतो करकै फिरि कीन्हों अस्नान ॥१७१॥

चारों भाई मिलकर कलेवा (प्रात कालीन भोजन) करते, उन्हे शहद, मेवा, मिष्ठान आदि मिलते, फिर अन्त मे वे स्नान करते।

करत शृंगार चार भइया मिलि शोभा वरनि न जाई।
चित्र विचित्र सुभग चौतनिया इन्द्र धनुष छबि छाई ॥१७२॥

फिर चारो भाई मिलकर शृगार करते। इस शृंगार की शोभा अवर्णनीय है। अनेक रगों एव बेल-बूटों से चिचित चार तनियो वाली झँगुली उन्होने पहनी। उसकी शोभा इन्द्र धनुष जैसी थी।

---

१. रामचरितमानस मे कथन है कि जब-जब भगवान का अवतार होता है कागभुशुण्डजी दर्शन के लिए जाते और पांच वर्ष तक वहा रहते है —

जब जब राम मनुज तन धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥
तब-तब अवधपुरी मे जाऊं। बाल चरित बिलोकि हरषऊ॥
जन्म महोत्सव देखउं जाई। बरस पांच तहं रहउं लोभाई॥

२. मोंहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहसत तुरत गयउ मुख माहीं॥
उदर मांझ सुनु अंडज राजा। देखेउं बहु ब्रह्माडनिकाया॥

... ...

जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूं न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउं बरनि कवनि विधि जाइ ॥८०॥

काकभुशुण्ड के आश्रम में गरुड जब पहुँचे थे तभी आश्रम के वातावरण से ही उनके सभी भ्रम दूर हो गये थे। गरुण ने कहा था—

देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

(रामचरितमानस—उत्तरकाण्ड)

अलकावलि मुक्तावलि गूंथी डोर सुरंग विराजै ।
मनहुं सुरसरी धार सरस्वति यमुना मध्य विराजै ॥१७३॥

उनके वालों में मोती की लड़ी लाल डोरे में गुंथी हुई शोभायमान है। यह ऐसी लगती है मानों गंगा और यमुना के बीच सरस्वती की धारा विराजमान है।

त्रिवेणी में गंगा की धार श्वेत है यहां पर मोती की लड़ी सफेद धारा जैसी है। काले वालों में यमुना धारा (काली) की छवि है और आंख के लाल डोरों में सरस्वती की धारा है। सरस्वती है अदृश्य पर उसका रंग लाल माना जाता है।

अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीनो।
मानो तीन लोक की शोभा अधिक उदय सो कीनो ॥१७४॥

उनके मस्तक पर गोरोचन का तिलक अत्यन्त सुन्दर लग रहा है। ऐसा लगता है कि तीनों लोकों की शोभा से भी अधिक यहाँ दिखाई पड़ती है।

खंजन नैन बीच नासापुट राजत यह अनुहार।
खंजन जुग मानों लरत लराई कीर बुझावत रार ॥१७५॥

उनके दोनों नेत्रों के बीच में नासिका इस प्रकार सुन्दर लगती है मानो दो खंजन लड़ रहे हों और तोता उनके बीच में बीच बिचाव कर रहा है। यहाँ पर नेत्रों की उपमा खंजन से और नाक की तोते से दी गयी है।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा।[1]

नासा के वेसर में मोती वरन विराजत चार।
मनों जीव सनि सुक्र एक ह्वै वाढै रवि के द्वार ॥१७६॥

राम की नाक में जड़ाऊ वेसर है, उसमें चार रंग के मोती हैं। ये चार रंग हैं—पीला, काला, सफेद और लाल। ये ऐसे लगते हैं मानों वृहस्पति, शनि, शुक्र और सूर्य एक द्वार पर सुशोभित हैं।

विशेष—वृहस्पति का नाम जीव है इनका रंग पीला है। शनि का रंग काला, शुक्र का श्वेत और रवि का लाल है।[2]

कुण्डल ललित कपोल विराजत झलकत आभागंड।
इन्दीवर पर मनौं देखियत रवि की किरन प्रचण्ड ॥१७७॥

उनके कपोलों पर सुन्दर कुण्डल विराज रहे हैं। उन कुण्डलों की आभा कपोलों

---

१. यही उपमा 'सूरसागर' में भी प्राप्त होती है।
मनों खंजन बीच सुक मिलि, बैठे हैं इक पांति।—सूरसागर २४३७
सजल लोचन चारु नासा, परम रुचिर बनाइ।
जुगल खंजन करत अविनति, बीच कियो बनराइ॥—सूरसागर ८४३

२. इस प्रकार की उपमाएं 'सूरसागर' में अनेक प्राप्त होती हैं। जैसे—
नील सेत अरु पीत लाल मनि लटकन भाल रुलाई।
सनि गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि मानौ भौम सहित समुदाई॥
—सूरसागर ७२६

पर पड़ रही है। यह इस प्रकार लगती है मानो कमल पर सूर्य की प्रचण्ड किरणें दिखाई पड़ रही हैं।[1]

अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

अरण अधर दमकत दसनावलि चारु चिबुक मुसक्यान।
अति अनुराग सुधाकर सींचत दाड़िम बीज समान ॥१७८॥

उनके लाल होंठों पर दांतों की पंक्ति चमकती रहती है। उनकी ठुड्डी सुन्दर है, मुस्कराहट अत्यन्त मनोहर है। ऐसा लगता है कि बड़े अनुराग से चन्द्रमा अनार और बिजली को सींच रहा है।

अनुराग का रंग लाल माना जाता है। होंठों की ललाई में जो मुस्कान है वही अनुराग रंजित सुधाकर की सिंचन है। दांतों की उपमा दाड़िम से और दांतों की चमक की उपमा बिजली से दी गयी है।[2]

अलंकार—उपमा।

कंठसिरी बिच पदिक बिराजत बहुमनि मुक्ताहार।
दहिनावर्त देत ध्रुवतारे सकल नखत बहु बार ॥१७६॥

उनके गले में कंठ-श्री है, जिसमें जड़ाऊ पदक है। साथ में अनेक मणियों व मोती का हार है। ये ऐसे लगते हैं जैसे ध्रुवतारे की दाहिनी ओर से नक्षत्र-लोक अनेकाकार घूम रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

रत्नजटित कंकण बाजूबन्द नगन मुद्रिका सोहै।
डार-डार मनु मदन विटप तरु विकच देखि मन मोहै ॥१८०॥

रत्न जड़ा हुआ कंगन और बाजूबन्द तथा अंगूठी उनके हाथ में शोभायमान है। ऐसा लगता है मानो कामदेव रूपी वृक्ष डाल-डाल में फूला है और बड़ा ही मनोहर लग रहा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और रूपक।

कटि किंकिणि रुनु भुनु सुनि तन की हंस करत किलकारी।
नूपुर ध्वनि पग लाल पन्हैयां उपमा कौन बिचारी ॥१८१॥

उनकी कटि में किंकिणी रुनभुन की ऐसी ध्वनि करती है जैसे हंस किलकारी मार रहे हों। उनके पैरों में पायजेब की ध्वनि सुनाई पड़ती है। वे पांव में लाल जूते पहने हैं। इनकी उपमा के लिए क्या विचार करें।

---

१. 'सूरसागर' में भी ये पंक्तियां मिलती हैं—
मनिमय जटित लोल कुण्डल की आभा झलकति गंड।
मनहुं कमल ऊपर दिनकर की पसरी किरन प्रचण्ड ॥—सूरसागर २४३६

२. यह उपमा भी 'सूरसागर' की उपमाओं में मिलती है। जैसे—
अरन अधर कपोल नासा सुभग ईषद हास॥
दसन की दुति तड़ित नव ससि भृकुटि मदन विलास ॥—सूरसागर २४४०

लाल जूती का कथन 'सूरसागर में भी है—

खेलत फिरत कनकमय आंगन, पहिरें लाल पनहियाँ ॥

विशेष—ऊपर पद संख्या १७३ से १८१ तक राम के वाल रूप का शिख-नख अर्थात् सिर के वालों से लेकर पाँव तक का वर्णन किया गया है। इस शिख-नख में 'सूरसागर' में वर्णित कृष्ण के शिख-नख का अनुसरण है। कुछ सूरसागर के उदाहरणों से इसकी पुष्टि हो जाती है। आगे भी वाल-राम की जो चेष्टाएँ वर्णित हैं वे भी 'सूरसागर' में प्रस्तुत वालकृष्ण की चेष्टाओं से मिलती हैं।

भूषन वसन आदि सव रचि रचि माता लाड़ लड़ावै।
रामचन्द्र की देख माधुरी दर्पन देख दिखावै ॥१८२॥

भूषण और वस्त्रों से सजा-सजाकर माता कौशल्या प्यार करती हैं। श्री रामचन्द्र के रूप-सौन्दर्य को देखकर वे प्रसन्न होती हैं। स्वयं भी दर्पण में उनकी छवि देखती हैं और राम को भी दिखाती हैं।

निज प्रतिविम्व विलोकि मुकुर में हँसत राम सुखरास।
तैसेइ लक्ष्मन भरत शत्रुहन खेलत डोलत पास ॥१८३॥

दर्पण में अपने प्रतिविम्व को देखकर आनंदकन्द राम हँसते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी खेलते और रामजी के पास चलते रहते हैं।

दशरथ राय न्हाय भोजन को वैठे अपने धाम।
लावो वेगि राम लक्ष्मन को सुनि आये सुख धाम ॥१८४॥

राजा दशरथ स्नान करके भोजन के लिए वैठे। उन्होंने कहा कि राम लक्ष्मण को भी लाओ। यह सुनकर श्रीराम जी आ गये।

वैठे संग वावा के चारों भैया जेंवन लागे।
दशरथ राय आपु जेंवत हैं अति आनँद अनुरागे ॥१८५॥

अव चारों भाई पिताजी के साथ वैठ गये और भोजन करने लगे। राजा दशरथ इन सवके साथ वड़े आनन्द से खाने लगे।

लघु लघु ग्रास राम मुख मेलत आपु पिता मुख मेलत।
वाल केलि को विसद परस सुख सुख समुद्र नृप झेलत ॥१८६॥

रामचन्द्र जी स्वयं छोटे कौर मुख में डालने लगे। फिर वे पिता के मुख में भी ग्रास डालने लगे। इस प्रकार वाल-क्रीड़ा का परमानन्द राजा पाने लगे।

दाल भात घृत कढ़ी सलोनी अरु नाना पकवान।
आरोगत नृप चारि पुत्र मिलि अति आनन्द निधान ॥१८७॥

उन लोगों ने दाल, भात, घी, नमकीन, कढ़ी और नाना प्रकार के पकवान खाए। इस प्रकार राजा ने अपने चारों पुत्रों के साथ अत्यन्त आनन्द से भोजन किया।

अँचवन कर पुनि जल अँचवायो जव नृप वीरा लीनो।
रामलखन अरु भरत शत्रुहन सवहिन अँचवन कीनो ॥१८८॥

इसके वाद जल पीकर हाथ धुलाए। फिर राजा ने पान का वीड़ा लिया।

इसके बाद राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ने भी हाथ धोये।

बीरा खाय चले खेलन को मिलिकै चारौं बीर।
सखा संग सब मिले बरावर आये सरयू तीर ॥१८६॥

पान खाकर चारों भाई खेलने को चले। फिर सरयू नदी के किनारे वे अपने साथियों से मिले।

तीर चलावत शिष्य सिखावत धर निशान देखरावत।
कबहुंक सबै अश्व चढ़ि आपुन नाना भाँति नचावत ॥१६०॥

श्रीरामचन्द्रजी ने बाण विद्या की शिक्षा ली। गुरु ने उन्हें तीर चलाना, निशाना लगाना और घोड़े पर चढ़ना सिखाया। अत. कभी वे तीर चलाते, कभी निशाना लगाते और कभी घोड़े पर चढ़कर उसे नचाते थे।

कबहुँक चार भ्रात मिलि अगिम्रा जात परम सुख पावत।
हरिन आदि बहु जंतु किये बध निज सुरलोक पठावत ॥१६१॥

कभी-कभी चारो भाई आखेट के लिए जाया करते थे। हिरण आदि बहुत से जंगली जानवरों को स्वर्ग भेज देते थे।

यहि विधि वन उपवन बहु क्रीडा करी राम सुखदाई।
वाल्मीकि मुनि कही कृपा कर कछु यक सूर जो गाई ॥१६२॥

इस प्रकार रामचन्द्र जी ने बहुत-सी बाल-क्रीडा की। इसका विस्तृत वर्णन वाल्मीकि जी ने किया है, थोड़ा-सा सूरदास ने भी वर्णन किया।

भई साँझ जननी टेरत है कहाँ गये चारौं भाई।
भूख लगी ह्वै है लालन को लावो वेगि बुलाई ॥१६३॥

सायंकाल होते ही मां पुकारने लगी। चारो भाई कहां हैं। उन्हें भूख लगी होगी, जल्दी से बुला लाओ।

इतने माँझ चार भैया मिलि आये अपने धाम।
मुख चुम्बत आरती उतारत कौशल्या अभिराम ॥१६४॥

इतने मे ही चारो भाई अपने घर आ गये। मा कौशल्या उनके मुख चूमने और आरती उतारने लगी।

सौमित्रा कैकयि सुखपावत बहुविधि लाड़ लड़ावत।
मधु मेवा पकवान मिठाई अपने हाथ जेंवावत ॥१६५॥

सुमित्रा और कैकेयी भी बडा सुख पाती हैं और बच्चो को अनेक तरह से प्यार करती हैं। वे शहद, मेवा और पकवान अपने हाथ से इन्हें खिलाती हैं।

चारौं भ्रातन श्रमित जानिकै जननी तब पौढ़ावे।
चापत चरन जननि अप अपनी कछुक मधुर स्वर गावे ॥१६६॥

चारों भाइयों को थका हुआ जानकर माँ ने उन्हें लिटा दिया। माँ ने पांव दबाये और मीठे स्वरो मे लोरी गायी।

आई नींद राम सुख पायो दिन को श्रम बिसरायो ।
जागे भोर दौरि जननी ने अपने कण्ठ लगायो ॥१९७॥

रामचन्द्र जी को नींद आ गई। वे सुख से सो गये। उनकी दिन की थकावट भूल गई। प्रातःकाल जब वे जगे तो मां ने दौड़कर उन्हें कण्ठ से लगा लिया।

विश्वामित्र बड़े मुनि कहियत जज्ञ करत निजधाम ।
मारिच और सुबाहु महासुर विघ्न करत दिन जाम ॥१९८॥

विश्वामित्र जी श्रेष्ठ मुनि के नाम से जाने जाते हैं। अपने स्थान पर वे यज्ञ किया करते थे। मारीच और सुबाहु नाम के दो राक्षस सारे दिन उनके यज्ञादि में विघ्न उपस्थित किया करते थे।

परब्रह्म अवतार जानिकैं आये नृप के पास ।
दशरथ राय बहुत पूजा विधि किये प्रसन्न हुलास ॥१९९॥

उन्होंने समझ लिया कि परब्रह्म ने राम का अवतार धारण किया है। तब वे राजा दशरथ के पास आये। राजा ने बड़ी प्रसन्नता से उनकी पूजा की।

भोजन कर जबही जु विराजे तब भाष्यो मुनिराय ।
जज्ञ सुफल कीजै मेरो अब दीजै राम पठाय ॥२००॥

जब भोजन करके राजा दशरथ वहां विराजमान हुए तब मुनि जी ने कहा कि मेरे यज्ञ को सफल बनाइए और इसके लिए राम को भेज दीजिए।

तब नृप कह्यो राम हैं बालक मोको आज्ञा कीजै ।
तब द्विज कह्यो राम परमेश्वर वचन मान यह लीजै ॥२०१॥

तब राजा दशरथ ने कहा कि राम बालक हैं। आप मुझे आज्ञा दीजिए। इस पर विश्वामित्र जी ने कहा कि रामचन्द्र जी परमात्मा के अवतार हैं। आप मेरी बात मान लीजिए।

गुरु वशिष्ठ सब विधि समुझाये राम लषन संग दीन्हे ।
मारग में अहिल्या उद्धारी नावक निज प्रद छीने ॥२०२॥

गुरु वशिष्ठ ने भी सब प्रकार से राजा दशरथ को समझाया। तब उन्होंने राम-लक्ष्मण को उनके साथ कर दिया। मार्ग में रामचन्द्र जी ने अहिल्या का उद्धार किया और अपने चरणों के स्पर्श से उसके शाप रूपी तीर को नष्ट किया।

नावक—छोटे तीर को कहते हैं—'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।'

विशेष—रामचरितमानस में अहिल्या तब हुआ था, जब ये लोग जनकपुर जा रहे थे। नावक से यदि नाविक अर्थात् केवट का उद्धार का अर्थ लगाया जाय तो वह प्रसग-विरुद्ध होगा, क्योंकि केवट का उद्धार वनगमन के समय हुआ था किन्तु केवट उद्धार की बात 'सारावली' में नहीं है। 'सूरसागर' में जनकपुरी पहुंचने से पहिले गंगातट पर अहिल्या का उद्धार वर्णित है। कदाचित् गंगातट के प्रसंग में केवट की याद आई हो किन्तु 'सूरसागर' में केवट-उद्धार की चर्चा यहाँ न होकर वनगमन-

प्रसंग में ही है।[1]

विश्वामित्र सिखाई बहु विधि विद्या धनुष प्रकार।
मारग में ताड़का जु धाई धाई बदन पसार ॥२०३॥

यहीं पर विश्वामित्र जी ने राम-लक्ष्मण को अनेक प्रकार से बाणविद्या सिखा दी। रास्ते में ही ताड़का राक्षसी दिखाई पड़ी। वह अपने मुँह को फैलाकर दौड़ी।

छिन में राम तुरत सो मारी नेक न लागी बार।
दीन्हीं मुक्ति जान निज महिमा आये ऋषि के द्वार ॥६०४॥

क्षण भर में ही रामचन्द्र जी ने उसे मार डाला, मारने में तनिक देर भी न लगी। अपनी महिमा से भगवान ने उस राक्षसी को मोक्ष दे दिया और फिर ऋषि के आश्रम पर पहुँचे।

कीन्हें विप्र जज्ञ परिपूरण असुर विघ्न को आये।
अग्निबाण कर दहन कियो है एक समुद्र पठाये ॥२०५॥

अब उन्होंने ऋषि के यज्ञ को परिपूर्ण किया। उस समय दोनों राक्षस—सुबाहु और मारीच विघ्न करने के लिए आए। इस पर रामचन्द्र जी ने सुबाहु को तो अग्नि बाण से जला दिया और दूसरे मारीच को समुद्र के किनारे फेंक दिया।

जनक विदेह कियो जु स्वयंवर बहु नृप विप्र बुलाये।
तोरन धनुष देव त्र्यम्बक को काहू जतन न पायें ॥२०६॥

विदेहराज जनक ने सीता का स्वयंवर किया और उसमें उन्होंने बहुत से राजा और ब्राह्मणों को बुलाया। इसमें वे शंकरजी के धनुष को तुड़वाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त और कोई यत्न वे नहीं कर सके।

विश्वामित्र मुनि बेग बुलाये सकल शिष्य लै संग।
रामलषन संग लिए आपने चले प्रेम रस रंग ॥२०७॥

उन्होंने ऋषि विश्वामित्र को बुलाया। मुनिजी तुरन्त शिष्यों और राम-लक्ष्मण को साथ लेकर बड़े प्रेम के साथ चल पड़े।

जहं जहं उझकि झरोखा झांकत जनक नगर की नार।
चितवनि कृपा राम अवलोकत दीन्हीं सुख जो अपार ॥२०८॥

जब रामचन्द्रजी जनकपुरी में जा रहे थे तो नगर की नारियां जहाँ-तहाँ झरोखों में बैठी हुई उझक-उझक कर देख रही थीं। रामचन्द्र जी ने कृपा करके उनकी ओर देखा और उन्हें अपार सुख दिया।

विशेष—राम का नारियों की ओर देखना और उन्हें सुख देना कवि की पुष्टि-मार्गीय मनोवृत्ति का द्योतक है। मर्यादावादी राम तो परनारियों की ओर दृष्टि-पात ही नहीं करते थे।

---

१. अहिल्या उद्धार वाला पद है—

गंगा तट आए श्रीराम।
तहाँ पषान-रूप पग परसे, गौतम रिषि की वाम॥

केवट उद्धार का पद है—

नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
प्रगट प्रताप चरन को देखो, ताहि कहाँ पुनि पाऊँ॥

कियो सन्मान विदेह नृपति ने उपवन वासी कीन्हों ।
देखन राम चले निज पुर को सुख सबहिन को दीन्हों ॥२०९॥

राजा जनक ने ऋषि विश्वामित्र का आदर किया और उन्हें उपवन में निवास दे दिया। रामचन्द्रजी नगर देखने को चले और सभी पुरवासियों को बड़ा सुख दिया।

सब पुर देखि धनुपपुर देख्यो देखे महल सुरंग ।
अद्भुत नगर विदेह विलोकत सुख पायो सब अंग ॥२१०॥

रामचन्द्र जी ने सारे नगर को देखा और वह स्थल भी देखा जहाँ धनुष रखा हुआ था। इन्होंने सुन्दर महलों का अवलोकन किया। जनकपुरी के अद्भुत नगर को देखकर सर्वांग से प्रसन्न हुए।

कहत नारि सब जनक नगर की विधि सों गोद पसार ।
सीता जू को वर यह चहियै है जोरी सुकुमार ॥२११॥

जनकपुरी की सभी नारियाँ भगवान् से गोद पसार कर मांगती हैं कि यह वर तो सीता जी को मिलना चाहिए, दोनों की बड़ी सुन्दर जोड़ी है।

अपने धाम फिरे तब दोऊ आये जान भई साँझ ।
कर दण्डवत परसि पद ऋषि के बैठे उपवन मांझ ॥२१२॥

तब दोनों अपने घर वापस आये, क्योंकि उन्होंने समझा कि अब सायंकाल हो गया है। उन्होंने ऋषि के पैर छूकर प्रणाम किया और उस वाटिका में बैठ गये।

संध्या भई कृत्य नित करिकै कीन्हों ऋषि परनाम ।
पौढ़े जाय चरन सेवा द्विज करके अति विश्राम ॥२१३॥

सन्ध्या हुई तो नित्य-कर्म करके उन्होंने ऋषि को प्रणाम किया और गुरु के चरण दबाने की सेवा के उपरान्त वे सो गये।

ब्रह्म मुहूरत भयो सवेरो जागे दोऊ भाई ।
कर परनाम देव द्विज गुरु को जल सुस्नान कराई ॥२१४॥

प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में दोनों भाई जागे। उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और स्नान किया।

आये भूप देश देशन के जुरी सभा अति भारी ।
तहाँ बुलाये सकल द्विजन को जनक सभा मंझारी ॥२१५॥

राजा जनक की सभा हुई जहाँ देश-देश के राजा आये। फिर राजा ने सारे ब्राह्मणों को भी बुलवा भेजा।

कौशिक मुनि तहं छवि सों पधारे लिये शिष्य संग सात ।
चले नित्य आह्लिक सब कर द्विज उर आनन्द न समात ॥२१६॥

विश्वामित्रजी प्रातःकालीन नित्य-कर्म के उपरान्त अपने सात शिष्यों साथ चले। उन्हें अत्यन्त ही हर्ष हुआ।

दोनों भ्रात संग में लीन्हें आये राज दुआर ।
जहं बैठे सब नृप शोर सों आइयो गर्व अपार ॥२१७॥

दोनों भाइयों के साथ ऋषिजी राजद्वार पर पहुँचे, जहाँ बहुत से राजा लोग अपार घमंड से भरे हुए बैठे थे ।

अपने अपने भुजबल तौलत तोरन धनुष पुरारि ।
कछु नहिं चलत खिसाय गये सब रहे बहुत पचिहारि ॥२१८॥

शंकर के धनुष को तोड़ने के लिए सभी राजाओं ने अपनी-अपनी भुजाओं का बल तौला । सब पूरी शक्ति लगाकर हार गये । उनका वश न चला तब सब क्रुद्ध होकर पीछे हट गये ।

सीता कहत सहेलिन सों पुनि यही कहत रघुनन्द ।
तब उन कह्यो सकल गुण सागर सो ये परमानन्द ॥२१९॥

सीता जी ने सहेलियों से कहा कि क्या ये ही रघुनन्दन श्री रामचन्द्र हैं ? तब उन सहेलियों ने उत्तर दिया कि हाँ, ये ही गुण के सागर परमानन्द राम हैं ।

बारंबार जिय सोच करत हैं बिधि सों बचन उचारी ।
मन क्रम बचन यहै बर दीजो मांगत गौद पसारी ॥२२०॥

सीता जी रामचन्द्रजी को देखकर बार-बार सोच करने लगीं । कदाचित् उनके मन में शंका हुई कि सुकुमार रामचन्द्र जी शंकर के धनुष को तोड़ न सकेंगे । फिर वे भगवान् से आँचल फैला कर वर माँगने लगीं मैं मन, वचन और कर्म से इसी वर को चाहती हूँ, मुझे आप यही दें ।[1]

एक बार गुरदेवी पूजत भयो दरस सखि मोहिं ।
ता दिन ते छिन कल न परत है सत्य कहत हौं तोहि ॥२२१॥

सीता जी ने सखी से कहा कि एक दिन देवी की पूजा करते हुए मैंने इनके दर्शन कर लिए थे । मैं तुम से सत्य कहती हूँ तभी से मुझे चैन नहीं मिल रहा है ।

सब नृप पचे धनुष नहिं टूटयो तब विदेह दुख पायो ।
क्रोध बचन कहि सब से बोले क्षत्री कोउ न रहायो ॥२२२॥

सारे राजा प्रयत्न करके हार गये, धनुष किसी से नहीं टूटा । तब जनक जी बड़े दुखी हुए । क्रुद्ध होकर उन्होंने सभी से कहा कि अब तो पृथ्वी पर कोई क्षत्रिय नहीं रहा अर्थात् अब तो पृथ्वी में कोई वीर ही नहीं है, जो धनुष को तोड़ सके ।[2]

---

१. 'सूरसागर' में भी इसी से मिलता-जुलता पद है—

चितै रघुनाथ बदन की ओर ।
रघुपति सों अब नेम हमारो, विधि सों करति निहोर ।
यह अति दुसह पिनाक, हिता-प्रन राघव बयस किसोर ।
इन पै बोरप धनुष चढ़ै क्यों, सखि यह संसय मोर ॥

२. "अब जनि कोउ भाखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥'
—रामचरितमानस

यह सुनि लक्ष्मन भये क्रोध युत विषम वचन यों बोले ।

सूरज वंश नृपति भूतल पर जाके बल बिन तोले ॥२२३॥

यह सुनकर लक्ष्मण जी कुछ क्रुद्ध हुए और वे कठोर वचनों में बोले । अभी सूर्यवंशी राजा पृथ्वी पर हैं । उनके बल को तोले बिना ही आपने ऐसी अनुचित बात कह दी ।

कितक बात यह धनुष रुद्र को सकल विश्व कर लैहौं ।

आज्ञा पाय देव रघुपति की छिनक मांझ हठ गैहौं ॥२२४॥

यह शंकर का धनुष उठाने की क्या बात है, मैं तो सारे विश्व को हाथ पर उठा सकता हूँ । श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाने पर क्षण भर में ही हठपूर्वक कर दिखाऊँगा ।

सबके मन को देख अंदेशो सीता आरत जानी ।

रामचन्द्र तबहीं अकुलाने लीन्हों सारंगपानी ॥२२५॥

रामचन्द्र जी ने देखा कि सब के मन में बड़ा अन्देशा है और सीता जी बड़ी घबराई हुई हैं अतः बड़ी ही तेजी के साथ उन्होंने धनुष को उठा लिया ।

'सूरसागर' में भी कथन है कि सीता जी की व्याकुलता देखकर रामचन्द्र जी ने धनुष को जल्दी ही तोड़ा[१]—

छिन में कर लैके जु चढ़ायौ देखत है सब भूप ।

डार्‌यो तोर अघात शब्द भयो जैसे काल को रूप ॥२२६॥

क्षण भर में ही जो उन्होंने उसे उठाकर चढ़ाया, सब राजा लोग देखते रह गये । उन्होंने धनुष को तोड़ डाला । ऐसा भयंकर शब्द हुआ मानो प्रलय-काल हो ।

सबही दिशा भई अति आतुर परशुराम सुनि पायो ।

परशु सम्हार शिष्य संग लैके छिनहीं में तहं आयो ॥२२७

सभी दिशाएँ चमत्कृत हो गयीं । परशुरामजी ने सुना कि शिवजी का धनुष टूट गया । तब अपने फरसे को सम्भाले हुए अपने शिष्यों के साथ क्षण भर में ही वे चल पड़े ।

विशेष—'छिन ही में तहं आये' इसका अर्थ यह नहीं कि क्षण भर में ही वे जनक की सभा में पहुंच गये वरन् यह कि वे क्षण भर में ही चल पड़े । जनकपुरी में उनका पहुंचना तो आगे है ।

जय जयकार भयो जगती पर जनक राज अति हरषे ।

सुर विमान सब कौतुक भूले जय ध्वनि सुमनन बरषे ॥२२८॥

यहाँ संसार में राम का जयजयकार हुआ । राजा जनक अत्यन्त हर्षित हुए । देवता लोग अपने-अपने विमानों पर बैठ हुए इस कौतुक में मग्न हो गये । उन्होंने जय-जयकार की और पुष्पों की वर्षा की ।

---

१. सिय अन्देस जानि 'सूरज' प्रभु लियो करज की कोर ।

टूटत धनु नृप लुके जहां तहं ज्यों तारागन भोर ॥

सूरसागर, स्कंध ९, पद २६

जनक राज तब विप्र पठाये बेग बरात बुलाई ।
दशरथ राज बाजि गज संके सबहीं सोज जुराई ॥२२९॥

राजा जनक ने तुरन्त ही ब्राह्मण भेजकर राजा दशरथ के यहाँ से बारात बुलवा भेजी । राजा दशरथ हाथी घोड़ा तथा अन्य सभी प्रकार की सजावट लेकर चल पड़े ।

चलो बरात विपुल धन संके जुरे मनुज महि पार ।
सोभासिन्धु कहत नहिं भावे बर्नन करत उचार ॥२३०॥

बड़े ऐश्वर्य के साथ बारात चल पड़ी, मनुष्यों की गणना नहीं की जा सकती । ऐसी अपार शोभा थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ।

गुरु वशिष्ठ मुनि लग्न दियो सुभ सुभ नक्षत्र सुभवार ।
आये जान नृपति सनमाने कीन्हों अति मनुहार ॥२३१॥

गुरु वशिष्ठ ने मुहूर्त निकाले । शुभ नक्षत्र और शुभ दिन में लग्न निश्चित किया । जब सारी बरात आ गई तो राजा जनक ने उसका विधिवत सम्मान और आतिथ्य किया ।

ब्याह केलि सुख बर्नन कीन्हों मुनि वाल्मीकि अपार ।
सो सुख सूर कह्यो यह कीरति जगत करी विस्तार ॥२३२॥

यद्यपि वाल्मीकि ने श्री रामचन्द्रजी के विवाह सम्बन्धी सुखों का सुन्दर वर्णन किया है । उसी सुख को सूरदासजी ने भी कहा और भगवान् के यश का प्रकाशन किया।

वेद शास्त्र मथि करी ब्याह विधि सोइ कीन्हीं नृपराय ।
राम लषन अरु भरत शत्रुहन चारों दिये बियाय ॥२३३॥

गुरु वशिष्ठ ने वेद-शास्त्रों का मन्थन कर विवाह-विधि निकाली और विधिवत् राम, लक्षण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाइयों का विवाह कर दिया ।

होम हवन द्विज पूजा गनपति सूरज सक्र महेस ।
दीन्हों दान बहुत विप्रन को राजा मिथिल नरेस ॥२३४॥

हवन हुए, गणेश, सूर्य इन्द्र और शंकर की पूजा हुई । फिर राजा जनक ने ब्राह्मणों को बहुत दान दिया ।

उत्सव भयो परम आनँद को बहुत दायजो दीन्हों ।
भये बिदा दसरथ नृप नृपसों गमन अवधपुर कीन्हों ॥२३५॥

विवाहोत्सव बड़े आनन्द से हुआ । राजा ने बहुत-सा दहेज दिया । राजा दशरथ राजा जनक से विदा हुए और उन्होंने अवधपुरी के लिए प्रस्थान किया ।[1]

---

१. सूरसागर में भी विदाई ठीक इसी प्रकार है –
दसरथ चले अवध आनन्दत ।
जनक राइ बहु दाइज दै करि, बार बार पद बंदत ।
तनया जामातनि को समदत, नैन नीर भरि आए ।
'सूरदास' दसरथ आनन्दित, चले निसान बजाए ॥

भृगुपति आय जानि जब रघुपति मिले धाय सिरनाय ।
दसरथराय विनय बहु कीन्हीं जिय में अति डरपाय ।।२३६।।

परशुराम जी रास्ते में मिले। उन्हें देखकर रामचन्द्र जी ने दौड़कर शिर नवाया। राजा दशरथ जी मन में बहुत डरे और उन्होंने उनसे बड़ी विनय की।

विशेष—रामचरित मानसमें परशुराम धनुप-यज्ञ के बीच मिले,किन्तु वाल्मीकि रामायण में उनकी मुलाकात रास्ते में हुई थी। सूरदास जी ने, जैसा उन्होंने कई बार कहा है, वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है।[1]

तब मुनि कह्यो धनुष क्यों तोरेउ रुद्र परम गुरु मेरे ।
रामचन्द्र पूरन पुरुषोत्तम नेक नयन जब हेरे ।।२३७।।

तब मुनि ने कहा कि शंकर जी मेरे परम गुरु हैं, उनके धनुप को क्यों तोड़ डाला। पूर्ण पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी ने तनिक इनकी ओर देखा।

लीन्हों अंस खैंचि भृगुपति को अपने रूप समायो ।
करो जाय तप शैल महेंद्र पै सुनि मुनिवर सिरनायो ।।२३८।।

श्री रामचन्द्र जी ने अपने ईश्वरीय अंश को उनके अन्दर से खींच लिया और उसे अपने भीतर समा लिया। उन्होंने कहा कि अब हिमालय पर जाकर तप करो। ऐसा सुनकर मुनि परशुराम ने आदेश को शिरोधार्य किया।

अति आनन्द अयोध्या आये कियो नगर शृंगार ।
कदली खंभ चौक मोतिन के बांधी वंदनवार ।।२३९।।

बड़े आनन्द के साथ अयोध्या पहुँचे। सारे नगर में सजावट की गयी। केले के खंभे लगाये लगाये, मोतियों की चौक पूरी गयी और जगह-जगह वंदनवारें बांधी गईं।

कियो प्रवेश राजभवननि में रामचन्द्र सुखरास ।
अद्भुत भवन विराजत रत्नन सूरज कोटि प्रकास ।।२४०।।

सुखराशि रामचन्द्रजी ने, राजमहल में प्रवेश किया। अद्भुत भवनों में रत्न विराज रहे थे मानों सूर्य का प्रकाश हो।

द्वादश वरष विराजे बालक फिर भूभार हरो ।
कैकेयी वचन प्रमान किये नृप तब यह काज करो ।।२४१।।

बारह वर्ष तक बालक रूप में विराजे, इसके उपरान्त उन्होंने पृथ्वी के भार को दूर किया। ऐसा करने के लिए राजा ने कैकेयी के वचन को प्रमाणित किया।

---

१. सूरसागर में भी परशुराम विदाई के पश्चात् मिले हैं। सूरसागर और सारावली दोनों रचनाओं का वर्णन बिल्कुल समान है—

परसुराम तेहि औसर आए ।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यो, क्रोधित वचन सुनाए ।।
विप्र जानि रघुबीर धीर दोउ हाथ जोरि सिर नायौ ।
× × ×
'सूरदास' प्रभु रूप समुझि मन परसुराम पग धार्‌यौ ।।१५०।।

विशेष—भगवान् ने पृथ्वी के भार को उतारने और राक्षसों का विनाश करने के लिए ही अवतार लिया था किन्तु ऐसा करने के लिए निमित्त कारण कैकेयी के वरदानों को देना था। राजा ने कैकेयी को दो वरदान दिये थे। कैकेयी ने एक वरदान में भरत को राजगद्दी और दूसरे में राम को चौदह वर्ष का वनवास मांगा। राम चौदह वर्ष के लिए वन को गये। इस प्रकार कैकेयी का वरदान पूरा हुआ। इसी के साथ ही पृथ्वी के भार उतारने का लक्ष्य भी पूरा हुआ।

वचन समुझि नृप आज्ञा कीन्हीं देव उपाय करो।
रामचन्द्र पितु आज्ञा मानी जिय में अवत धरो ॥२४२॥

कैकेयी के वचनों को समझ कर राजा दशरथ ने राम को वन जाने की आज्ञा दी। ऐसा करने से देवताओं का कार्य हुआ। रामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा मानी।

यह भूभार उतारत रघुपति बहुत ऋषिन सुखदेन।
बनोवास को चले सिया संग सुखनिधि राजिव नैन ॥२४३॥

रामचन्द्र जी ने मन में विचार किया कि वनवास में पृथ्वी का भार उतारने का और ऋषियों को सुख देने का काम हो सकेगा। इसलिए कमल नेत्र श्री रामचन्द्र जी सीता जी के साथ वन को चले।

विशेष—'सारावली' में भगवान् के भूभार उतारने की ईश्वरीय लीला को प्राथमिकता दी गयी है। इसीलिए ऊपर के पदों में ऐसा कथन बार-बार हुआ है।

मारग में हरि कृपा करी है परम भक्त इक जान।
तहं ते गये जु चित्रकूट को जहां मुनिन को स्थान ॥२४४॥

मार्ग में उनका एक परम भक्त[1] रहता था, उसके भाव को समझकर भगवान् ने उस पर कृपा की। उसके उपरान्त वे चित्रकूट गये जहाँ अनेक मुनि निवास करते थे।

बाल्मीकि मुनि बसत निरन्तर राम मन्त्र उच्चार।
ताको फल यह आज भयो मोहिं दर्शन दियो कुमार ॥२४५॥

बाल्मीकि बहुत काल से अपने आश्रम में निवास करते थे और राम मन्त्र का उच्चारण करते थे। रामचन्द्र जी ने उन्हें दर्शन दिया, तो उन्होंने समझा कि तपस्या का फल आज ही मिला।

पूजाकर पधराय भवन में रामचन्द्र परनाम।
कियो विविध विधि पूजा करिकैं ऋषि चरननि सिरनाय ॥२४६॥

रामचन्द्रजी ने आश्रम में बिठाकर अनेक प्रकार से ऋषि की पूजा की और उन्हें सिर नवाया।

१. रामचरितमानस में इस भक्त की चर्चा है—

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥
कवि अलखित गति वेषु विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥
सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि॥
राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा॥
मनहुं प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सब कोऊ॥

अयोध्याकाण्ड—११०

बहुत दिवस लों बसे जगतगुरु चित्रकूट निज धाम।
किये सनाथ बहुत मुनिकुल को वहु विधि पूरे काम ॥२४७॥

श्री रामचन्द्र जी बहुत समय तक चित्रकूट में रहे। वहाँ उन्होंने मुनियों को सनाथ किया और उन के सभी कार्यों को विधिपूर्वक पूरा कराया।

भरत जान जिय में रघुपति को दु:सह परम वियोग।
आये धाय संग सब लैके पुरवासी गृहजोग ॥२४८॥

जब भरत ने राम के वनवास को सुना तो उन्हें राम के वियोग का अत्यन्त कष्ट हुआ। सारे पुरवासी और घर के लोगों को लेकर भरत जी राम से मिलने चले।

बिन दशरथ सब चले तुरत ही कोसलपुर के वासी।
आये रामचन्द्र मुख देख्यो सब की मिटी उदासी ॥२४९॥

राजा दशरथ मर चुके थे। उनके अलावा शेप सभी अवधपुरवासी भरत जी के साथ चित्रकूट आये। राम के दर्शन कर लेने से उनकी उदासी मिट गई।

रामचन्द्र पुनि सब जन देखे पिता न देखन पाये।
पूछी वात कह्यौ तव काहू मन वहुविधि विलखाये ॥२५०॥

श्री रामचन्द्रजी ने सबको देखा, किन्तु पिताजी को नहीं देखा। तब उन्होंने पिताजी के सम्बन्ध में पूछा। उत्तर पाकर वे बड़े दु:खी हुए।

वेद रीति करि रघुपति सब विधि मर्यादा अनुसार।
बहुत भाँति सब विधि समझाये भरत करी मनुहार ॥२५१॥

इसके उपरान्त रामचन्द्र जी ने वेद रीति तथा अन्य सभी रीतियों से मर्यादा पालन के लिए भरत जी को समझाया। अन्त में भरतजी ने रामचन्द्रजी की आज्ञा मान ली।

गुरु वशिष्ट मुनि कह्यो भरत सों राम ब्रह्म अवतार।
वन में जाय बहुत मुनि तारें दूर करें भुव भार ॥२५२॥

गुरु वशिष्ट ने भरत से कहा कि रामजी परब्रह्म के अवतार हैं। वन में आकर उन्होंने बहुत से मुनियों को तारा है और इन्होंने पृथ्वी के भार को उतारने के लिए ही अवतार लिया है।

पुनि निज विश्वरूप जो अपनो सो हरि जाय देखायो।
आज्ञा पाय चले निजपुर को प्रभुहि गीत समझायो ॥२५३॥

इसके वाद रामचन्द्रजी ने भरत को अपना विराट रूप दिखाया और गीता (तत्त्वज्ञान) को समझाया। तब भरतजी मान गये और वे अपने पुर (अयोध्या) को चल पड़े।

कछु दिन बसे जु चित्रकूट में रामचन्द्र सह भ्रात।
तहं ते चले दंडकावन को सुखनिधि सांवलगात ॥२५४॥

कुछ दिन तक रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण के साथ चित्रकूट में रहे। इसके बाद वे दण्डक वन के लिए चल पड़े।

मारग में बहु मुनि जन तारे श्ररु विराध रिपु मारे ।
वन्दन कर शरभंग महामुनि श्रपने दोष निवारे ॥२५५॥

मार्ग में उन्होंने बहुत से मुनियों का उद्धार किया और विराध नामक राक्षसको मारा। यहा पर शरभंग ऋषि ने इनकी वन्दना की और अपने दोषो से मुक्ति पाई।

दरसन दियो सुतीछन गौतम पंचवटी पगधारे ।
तहाँ दुष्ट शूर्पनखा नारी करि बिन नाक उधारे ॥२५६॥

श्रीरामजी ने सुतीक्ष्ण और गौतम ऋषि को दर्शन दिया। फिर वे पंचवटी में पधारे। यहाँ पर उन्होंने दुष्ट शूर्पणखा राक्षसी के नाक-कान काट लिए।

यह सुनि असुर प्रबल दल श्राये छिन में राम संहारे ।
कीन्हें काज सकल सुर मुनि के भुव के भार उतारे ॥२५७॥

यह सुनकर राक्षसो के प्रबल दल (खर, दूषण और त्रिशिरा आदि) आये, किन्तु रामचन्द्रजी ने उन्हें क्षण भर मे ही उन्हें मार डाला। इस प्रकार उन्होने देवता और मुनियों के कार्य किये और पृथ्वी का भार हल्का किया।

मुनि अगस्त्य श्राश्रम जु गये हरि बहु विधि पूजा कीन्हीं ।
दिव्य वसन दीने जब मुनि ने फिर यह श्राज्ञा दीन्हीं ॥२५८॥

श्री रामचन्द्रजी अगस्त ऋषि के आश्रम पर गये, उन्होने इनकी विधिवत् पूजा-वन्दना की। मुनि ने इनको दिव्य वस्त्र दिये और आदेश किया।

दशकंधर को वेगि संहारो दूर करो भुवभार ।
लोपामुद्रा दिव्य वस्त्र से दीन्हें राजकुमार ॥२५९॥

आप रावण का शीघ्र ही सहार कर पृथ्वी का भार दूर कीजिए। लोपामुद्रा ने भी दिव्य वस्त्र इन्हें दिये।

शूर्पनखा जब जाय पुकारी नाक कान ले हाथ ।
रावन क्रोध कियो श्रति भारी श्रधर फरक श्रति गात ॥२६०॥

जब शूर्पणखा अपने कटे हुए नाक और कान लेकर रावण के पास पुकारती हुई गई तब रावण को बड़ा क्रोध आया। उसके होठ और अंग फड़कने लगे।

गयो मारीच श्राश्रमहिं तबही बानें बहु समझायो ।
तब मारीच कह्यो दशकंधर बिनती बहुत करायो ॥२६१॥

वह मारीच के आश्रम पर गया। उसने मारीच को बहुत समझाया। इस पर मारीच ने रावण से बहुत बिनती की और कहा —

रामचन्द्र श्रवतार कहत हैं मुनि नारद मुनि पास ।
प्रगट भये निसिचर मारन को सुनि वह भयो उदास ॥२६२॥

मैंने नारद मुनि से सुना है कि श्री रामचन्द्रजी भगवान के अवतार है। इन्होंने राक्षसों को मारने के लिए ही अवतार लिया है। यह सब सुनकर रावण उदास हो गया।

कर गहि खंग तोर वध करिहौं सुनि मारिच डर मान्यो।
रामचन्द्र के हाथ मरूँगो परम पुरुष फल जान्यो ॥२६३॥

रावण ने तलवार निकालकर कहा कि मैं तेरा वध करूँगा। यह देखकर मारीच डर गया। उसने मन में सोचा कि मैं तो श्री रामचन्द्रजी के हाथ से ही मरूँगा और वह जीवन का परम फल होगा।

कपट कुरंग रूप धरि आयो सीता विनती कीन्हीं।
रामचन्द्र कर सायक लैकै मारन की विधि कीन्हीं ॥२६४॥

मारीच हिरण का कपट रूप धारण करके आया। सीताजी ने राम जी से विनती की कि मैं इस हिरण को लेना चाहती हूँ। इस पर श्री रामचन्द्र जी हाथ में धनुष लेकर उसे मारने चले।

मार्‍यो धनुषवाण ले ताको लक्ष्मन नाम पुकारेउ।
लक्ष्मन नाम सुनत तहं आये अवसर दुष्ट विचारेउ ॥२६५॥

रामचन्द्र जी ने जब मारीच को वाण मारा तो उसने लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा। लक्ष्मण जी अपना नाम सुनकर वहाँ आये। इस अवसर का लाभ दुष्ट रावण ने उठाया।

धरिकै कपट वेष भिक्षुक को दसकंधर तहं आयो।
हरि लीन्हों छिन में माया करि अपने रथ वैठायो ॥२६६॥

रावण भिखारी का कपट वेश धारण कर वहाँ आया। उसने माया करके सीता जी को क्षण भर में ही हर लिया और अपने रथ पर बिठा लिया।

चल्यो भाजि गोमायु जन्तु ज्यों लैकै हरि को भाग।
इतनै रामचन्द्र तहँ आये परम पुरुष वड़ भाग ॥२६७॥

वह सीता को लेकर इस प्रकार भागा, जैसे गीदड़ सिंह का भाग लेकर भाग चले। इतने में श्री रामचन्द्रजी वहाँ आ गये।

जव माया सीता नहिं देखी जिय में भये उदास।
पूछन लगे राम द्रुमगन सों बहुत बढ़ी दुखरास ॥२६८॥

जब उन्होंने श्री सीताजी को नहीं देखा तो जी में बड़े उदास हुए। तब अत्यन्त दुःखी होकर वे वृक्षों से पूछने लगे।[1]

मारग में जटायु खग देख्यो विकल भयो तनु हीन।
विनती करों राम मैं तासों बहुत लड़ाई कीन ॥२६९॥

मार्ग में जटायु गीध मिला। उसका शरीर कटा था। वह व्याकुल पड़ा था। उसने रामचन्द्र जी से निवेदन किया कि मैंने सीता को छुड़ाने के लिए रावण से बड़ा युद्ध किया।

---

१. मानस में भी ऐसा ही कथन है—
हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी! तुम देखी सीता मृगनैनी।

जब तनु तज्यो गृद्ध रघुपति तब बहुत कर्म विधि कीनी।
जान्यो सखा राय दशरथ को अपनी निज गति दीनी ॥२७०॥

जब गृद्ध जटायु ने अपने शरीर को छोड़ दिया, तब रामचन्द्र जी ने विधिवत् उसके दाहकर्म किये। उन्होंने उसको इस प्रकार माना मानो वह राजा दशरथ का सखा हो। अन्त में उसे अपनी गति देकर मोक्ष प्राप्त कराया।

मारग में कबंध रिपु मार्‌यो सुरपति काज संवार्‌यो।
पंपापुर प्रभु तुरत पधारे जन को दोष निवार्‌यो ॥२७१॥

मार्ग में उन्होंने कबन्ध राक्षस का संहार किया और इस प्रकार देवताओं का कार्य सिद्ध किया। फिर भगवान पम्पापुर पधारे। वहाँ के तालाब के दोष दूर किये।

शबरी परम भक्त रघुपति की बहुत दिनन की दासी।
ताके फल आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकासी ॥२७२॥

शबरी भगवान की परम भक्त थी। वह बहुत दिनों से भक्तिभाव में लगी थी। इनके दिये फलों को खाया और भक्ति का प्रकाशन किया।

दीन मुक्ति निज पुर को ताको तब रघुपति चले आगे।
सीता-सीता विलपत डोलत परम विरह सों पागे ॥ ७३॥

शबरी को उन्होंने अपने लोक की मुक्ति दी और आगे बढ़े। विरह के मारे 'सीता-सीता' कहते हुए विलाप कर रहे थे।

रविनन्दन जब मिले राम को अरु भेटे हनुमान।
अपनी बात कहा उन हरि सों बालि बड़ो बलवान ॥२७४॥

रविनन्दन[1] सुग्रीव रामचन्द्रजी से मिले। हनुमानजी को भगवान ने गले लगाया। सुग्रीव ने श्रीरामजी से अपनी बात कही। उसने कहा कि उसका भाई बालि बड़ा बली है।

सप्तलाल बेधन हरि कीन्हों बालि छिनक में तारो।
दीन्हों राज राम रविनन्दन सब विधि काज संवारो ॥२७५॥

किष्किन्धा में सात ताल के वृक्ष थे। बालि को वर प्राप्त था कि जो एक बाण में सातों वृक्षों को नष्ट कर देगा वही बालि को मार सकता है। सुग्रीव ने रामचन्द्र जी की परीक्षा लेने के लिए इन वृक्षों को एक ही बाण से गिरा देने को कहा। श्री रामचन्द्र जी ने एक ही तीर में सातों वृक्षों को गिरा दिया। बाद में उन्होंने बालि-सुग्रीव के युद्ध में बालि को मार डाला और उसे मोक्ष दिया। इसके उपरान्त सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य दिया।

सप्तद्वीप के कपिदल आये जुरी सेन अति भारी।
सीता की सुध लेन चले कपि ढूंढत विपिन मंझारी ॥२७६॥

सुग्रीव के बुलाने पर सप्त द्वीपों के सभी बानर आये। उनकी एक सेना ही एकत्र हुई। सारे बन्दर सीताजी की खोज लगाने के लिए चारों ओर जंगलों के बीच से बढ़ते हुए चले।

---

1. सुग्रीव और बालि सूर्य के पुत्र थे। 'साहित्य लहरी' में भी सुग्रीव को 'सूर्य'-सुत कहा गया है—
गृह पति सुत हित अनुचर को सुत जारत रहत हमेस।
ग्रहपति=सूर्य, सूर्य-सुत=सुग्रीव

जलनिधि तीर गये सब कपि मिलि सुनि संपाति की बानी।
लंक बसत सीता रिपु बन में सब बानरि यह जानी ॥२७७॥

जब वानर सीता को खोजते हुए समुद्र के तट पर पहुँचे तो उन्हें संपाति नामक गीध मिला। उसने बताया कि लंका के वन में शत्रुओं के मध्य सीताजी रहती हैं।

रामचरन कर सुमिरन मन में चले पवनसुत धाय।
रामप्रताप विघ्न सब मेटे पैठि नगर सुख पाय ॥२७८॥

श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके हनुमान जी सीता की खोज के लिए भाग चले। रास्ते की सारी विघ्न-बाधाओं को मिटाकर वे नगर में प्रविष्ट हुए तो उन्हें सुख मिला।

(विघ्न-बाधाओं से कदाचित् तात्पर्य सुरसा, सिंहिका और लंकिनी आदि से था, जिसका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है।)

धरि लघु रूप प्रवेश कियो कपि लंका नगर मँझार।
राम भक्त निज जान विभीषण भेटे हरि अंकवार ॥२७९॥

हनुमानजी ने अत्यन्त छोटा रूप धारण करके लंका में प्रवेश किया। उस लंका में उन्हें रामभक्त विभीषण मिला जिसे इन्होंने प्रेमपूर्वक आलिंगन किया।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में विभीषण नहीं मिला है। रामचरित-मानस में अवश्य ही यह कथा इसी प्रकार मिलती है।

तब बाने सब भेद बतायो देखी कपि सब लंक।
रामचरन धरि हृदय मुदित मन विचरत फिरत निशंक ॥२८०॥

विभीषण ने सारा रहस्य बता दिया। उसके पहिले ही इन्होंने सारी लंका देख ली थी। श्रीराम जी के चरणों को ध्यान में रखकर हनुमानजी लंका नगरी में निश्शंक विचरते रहे।

जाय अशोक वाटिका देखी दरसन सीता कीन्ह।
कर दण्डवत बहुत विनती करि राम मुद्रिका दीन्ह ॥२८१॥

हनुमान जी अशोकवाटिका में गये। वहाँ उन्होंने सीताजी का दर्शन किया। सीताजी को प्रणाम करके उन्होंने पहिचान के लिए रामचन्द्रजी की दी हुई मुद्रिका सीताजी को दी।

सब संदेश कह्यो कपि सिय प्रति सुनि हिय में धरि राख्यो।
राम संदेस कहेउ तब सीता जो बूझो सो भाख्यो ॥२८२॥

उन्होंने सारा सन्देश, जो रामचन्द्रजी ने दिया था, सीताजी को सुनाया। सीताजी ने उसे सुना और अपने हृदय में रख लिया। सीताजी ने भगवान राम के प्रति संदेश कहे। उसके सम्बन्ध में हनुमानजी ने जैसा समझ रखा था, उसके अनुसार कहा।

लागी भूख चले उपवन में नाना विधि फल खायो।
विटप उखारि उजारि विपिन को सबहिन को बरसायो ॥२८३॥

इसके उपरान्त इन्हें भूख लगी, तब वे वन में गये और नाना प्रकार के फल

आये। साथ ही उन्होंने वन को उजाड़ा और वृक्षों को उखाड़-उखाड़ कर सबको दिखाया।

सुनि पुकार निस्चर बहु आये कूदि सबनि संहारे।
इन्द्रजीत बलनिधि जब आयो ब्रह्म अस्त्र उन डारे॥२८४॥

यह सब देखकर रखवालों ने शोर किया। शोर सुनकर बहुत से राक्षस आये। हनुमानजी ने वृक्ष पर से कूदकर उन सबको मार डाला। अन्त में बलशाली इन्द्रजीत मेघनाद आया। उसने ब्रह्म अस्त्र इनके ऊपर डाल दिया।

तासों बँधे दसानन देखत चले पवन सुत धीर।
रावन बहुत ज्ञान समझायो कथ कथ कथा गँभीर॥२८५॥

हनुमानजी उस ब्रह्म अस्त्र में बंध गये। वे रावण के पास ले जाये गये। इन्होंने रावण को गम्भीर कथाएँ कहकर बहुत समझाया।

चले छुड़ाय छिनक में तबही जार दई सब लंक।
कूदि चले गजबन को जयकरि ज्यों मृगराज निसंक॥२८६॥

क्षणभर में हनुमानजी ने अपने को छुड़ाकर लंका जला दी और कूद कर इस प्रकार निकल गये जिस प्रकार सिंह हाथियों के वन में विजय कर निश्शंक चला जाता है।

आये तीर समुद्र मिले कपि मिले जाय जहं राम।
सुनि सुनि कथा श्रवण सीता की पुलकित अति अभिराम॥२८७॥

हनुमानजी समुद्र पार करके वानरों से मिले। इसके उपरान्त वे सब आकर श्रीरामजी से मिले। सीताजी का हाल सुन-सुनकर श्री रामचन्द्रजी रोमांचित हुए।

करि कपि कटक चले लंका को छिन में बांध्यो सेत।
उतर गये पहुंचे लंका पै विजय ध्वजा संकेत॥२८८॥

वानरों की सेना बनाकर श्रीरामजी लंका की ओर चले। उन्होंने क्षण भर में समुद्र पर सेतु बांधा। सागर पार कर वे लंका में उतर गये और विजय-ध्वजा फहरा कर उन्होंने युद्ध का संकेत दिया।

पठये बालिकुमार विनय करि समझाये बहु बार।
चित्त न धरो कालवश जान्यो फिर आयो सुकुमार॥२८९॥

रामचन्द्रजी ने बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर भेजा। उन्होंने विनयपूर्वक रावण को बहुत समझाया। रावण ने अंगद की सीख को चित में धारण नहीं किया। तब बालिकुमार अंगद ने समझा कि रावण कालवश है और वे वापस चले आये।

असरन सरन उदार कल्प तरु रामचन्द्र रनधीर।
रिपु भ्राता जान्यो जु विभीषन निस्चर कुटिल शरीर॥२९०॥
राखि शरन लंकेश कियो पुनि जब निस्चर सब मारे।
माया करी बहुत नाना विधि सबको राम निवारे॥२९१॥

विभीषण श्री रामचन्द्रजी की शरण में आया। श्री रामचन्द्रजी तो अशरण

को शरण देने वाले, उदार कल्पवृक्ष के समान हैं। अतः यह जानते हुए भी कि विभीषण शत्रु का भाई है, राक्षस है और कुटिल शरीर वाला है, उन्होंने उसे शरण में रख लिया और उसे लंका का राजा कह दिया। इसके उपरान्त उन्होंने सारे राक्षसों को मार डाला। राक्षसों ने अनेक प्रकार की मायाएं कीं, पर रामचन्द्रजी ने सारी माया को दूर कर दिया।

कुम्भकर्ण पुनि इन्द्रजीत यह महाबली बल सार।
छिन में लिये सोख मुनिवर ज्यों क्षत्री बली अपार ॥२६२॥

कुम्भकरण और मेघनाद बहुत बली थे किन्तु क्षत्रिय वीर राम-लक्ष्मण ने इनको क्षण भर में इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को पी डाला था।

कियो प्रसाव शांतना करिकै राज विभीषन दीन्हीं।
पुनि मंदोदरि अचल आयसु दै अभय दान सब कीन्हीं ॥२६३॥

अन्त में शान्ति स्थापित की और विभीषण को राज्य दिया। फिर मंदोदरी को अचल होने की आज्ञा दी और शेष राक्षसों को अभय दान दिया।

समाधान सुरगन को करि कै अमृत मेघ बरषायो।
कृपादृष्टि अवलोकन करिकै हत कपि कटक जियायो ॥२६४॥

देवताओं को सब प्रकार से संतोष देकर श्री रामचन्द्रजी ने उनसे अमृत-वर्षा करवाई और युद्ध में मारी गई वानर-सेना को जीवित करवा दिया।

निश्चर किये मुक्त सब माधव ताते जिये न कोय।
निर्भय किय लंकेश विभीषण राम लषण नृप दोय ॥२६५॥

भगवान राम ने राक्षसों को पहले ही मोक्ष दे दिया था, अतः उनमें से कोई भी जीवित न हुआ।[1] फिर श्रीराम और लक्ष्मण ने विभीषण को लंका का राजा बनाकर उसे सब प्रकार से निर्भय कर दिया।

जनक तनया धरि अगिनि में, छाया रूप बनाय।
यह न कोऊ भेद जाने बिना श्री रघुराइ ॥
सूरसागर, नवम स्कंध, ४६

सीता मिली बहुत सुख पायो धरो रूप निज मायो।
पुष्पक यान बैठकै नीके चले भवन सुख छायो ॥२६६॥

सीताजी रामचन्द्रजी से मिलीं। राम और सीता को बहुत सुख मिला। मां सीता ने अपना रूप धारण कर लिया। (तात्पर्य यह कि अग्नि परीक्षा के समय सीता ने अग्नि में प्रवेश करके अपने माया रूप को छोड़ दिया। सीताहरण से पूर्व सीता ने अग्नि प्रवेश किया था और अपना माया-रूप धारण किया था।)

फिर पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या को चले। इससे सर्वत्र सुख छा गया।

1. 'सूरसागर' में भी अमृत-वर्षा विषयक पद है --
सुरपतिहि बोल रघुबीर बोले।
अमृत की वृष्टि रन-खेत ऊपर करौ, सुनत तिन अमृत भण्डार खोले।
उठे कपि भालु ततकाल जै जै करत, असुर भए मुक्त रघुवर निहोरे ॥१८७॥

चले पवन सुत विप्र रूप धरि भरतहि देन बधाई ।
जानि दूत रघुपति को प्रमुदित भरत मिले तब धाई ॥२९७॥

हनुमानजी ब्राह्मण रूप धारण करके भरतजी को बधाई देने चले कि श्री रामचन्द्रजी अयोध्या वापस आ रहे हैं। भरतजी हनुमानजी को रामचन्द्रजी का दूत समझ कर बड़ी प्रसन्नता से मिले।

सुनत नगर सबहिन सुख मान्यो जह तहं ते चले धाई ।
रामचन्द्र पुनि मिले भरत सों आनंद उर न समाई ॥२९८॥

नगर के लोगों ने यह सुन कर बड़ा सुख माना और जहाँ-तहाँ से दौड़ पड़े। रामचन्द्रजी भरत से मिले। हृदय मे आनन्द समा नही रहा था।

कियो प्रवेश अयोध्या में तब घर घर बजत बधाई ।
मंगल कलश धराये द्वारे वन्दनवार बँधाई॥२९९॥

तब श्री रामचन्द्रजी ने अयोध्या मे प्रवेश किया। घर-घर में बधाई बजी। द्वार पर मंगल कलश सजाये गये और वन्दनवारें बाधी गई।

राज भवन में राम पधारे गुरु वशिष्ठ दरसायो ।
सीस नवाय बहुत पूजा करि सूरज वंश बढ़ायो ॥३००॥

राज भवन मे श्री रामचन्द्रजी पधारे। वहाँ उन्होंने गुरु वशिष्ठ का दर्शन किया। शीश झुका करके उन्होंने गुरु की पूजा की। उन्होंने सूर्य वश की वृद्धि का आशीर्वाद दिया।

समाधान सबहिन को कीन्हों जो दर्शन को आयो ।
कौशल्या कैकेयी सुमित्रा मिलि मन में सुख पायो ॥३०१॥

जो-जो लोग श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए आये, उन सबको सब प्रकार शान्त किया। फिर कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा से मिल कर उन्हें सुख दिया और सुख पाया।

बैठे राम राजसिंहासन जग में फिरी दुहाई ।
निर्भय राज राम को कहियत सुर नर मुनि सुख पाई ॥३०२॥

अब श्री रामचन्द्रजी सिंहासन पर बैठे। सारे जग में उनकी दुहाई फिर गयी। श्री रामचन्द्रजी के राज्य मे निर्भय रह कर सुर नर और मुनियों ने सब प्रकार का सुख पाया।

चार मूर्ति धर दरसन आये चार वेद निज रूप ।
अस्तुति करी बहुत नानाविधि रीझे कोसल भूप ॥३०३॥

चारों वेद चार मूर्तियां धारण करके भगवान् राम का दर्शन करने के लिए आये। उन्होंने अनेक प्रकार से भगवान की स्तुतियां की, जिसे सुनकर श्रीराम हर्षित हुए।

शिव विरंचि नारद सनकादिक सब दरसन को आये ।
राम राज बैठे जब जाने सबहिन मन सुख पाये ॥३०४॥

शिव, ब्रह्मा, नारद और सनकादिक दर्शन के लिए आये । श्री रामचन्द्रजी को राजसिंहासनासीन समझ कर सभी को बड़ा आनन्द हुआ ।

लोकपाल अति ही मन हरखे सब सुमनन बरसायो ।
पुष्प विमान बैठि हरि आये लै कुबेर पहुंचायो ॥३०५॥

सभी लोकपालों ने हर्षित होकर पुष्प वृष्टि की । जिस पुष्पक विमान पर बैठकर श्री रामचन्द्रजी लंका से आये थे, उसे उन्होंने कुबेर के पास भेज दिया ।

अति आनन्द भयो अवनी पर राम राज सुख रास ।
कृत युग धर्म भये त्रेता में पूरण रमा प्रकास ॥३०६॥

पृथ्वी पर आनन्द छा गया, क्योंकि श्री रामचन्द्रजी का राज्य सुख की राशि ही था । त्रेतायुग में सतयुग जैसा धर्माचरण होने लगा । लक्ष्मीजी ने अपना पूरा प्रकाश फैला दिया ।

अश्वमेध बहु यज्ञ किये पुनि पूजे द्विजन अपार ।
हय गज हेम धेनु पाटम्बर दीन्हें दान उदार ॥३०७॥

श्री रामचन्द्रजी ने बहुत से अश्वमेघ यज्ञ किये, ब्राह्मणों को बड़ा आदर दिया । उदार रामचन्द्रजी ने घोड़े, हाथी, स्वर्ण, गायें और रेशमी वस्त्र दान में दिये ।

चरित अनेक किये रघुनायक अवधपुरी सुख दीन्हों ।
जनक सुता बहु लाड़ लड़ावति निपट निकट सुख कीन्हों ॥३०८॥

रामचन्द्रजी ने अनेक प्रकार के चरित करके अयोध्यावासियों को सुख दिया । श्री जानकीजी भी पुरवासियों से स्नेह करती थीं और समीप रहने का सुख सबको देती थीं ।

जानि वसंत बहुत द्रुम फूले जनकसुता अनुरागे ।
प्रेम प्रवाह प्रकट प्रकटायो होरी खेलन लागे ॥३०९॥

वसन्त का महीना आया, वृक्ष फूले तो रामचन्द्रजी जानकीजी के प्रेम में मग्न हो गये । उनके प्रेम का प्रवाह प्रकट हुआ और वे होली खेलने लगे । (स्मरण रहे कि सूरदास जी ने रामावतार को भी पुरुषोत्तम का पूर्णावतार माना है । जैसा कि सारावली के प्रथम पद में स्पष्ट है । पूर्ण पुरुषोत्तम का स्वरूप नित्य विहार लीला का है । अतः रामावतार में भी नित्य विहार का संकेत है ।)

कबहुँक निकट देखि वर्षा ऋतु झूलत सुरंग हिंडोरे ।
रमकत झमकत जनक सुता संग हाव भाव चित चोरे ॥३१०॥

कभी वर्षा ऋतु को निकट जानकर सुन्दर हिंडोले में राम और जानकी झूलने लगे । हिंडोले पर सीताजी के साथ आनन्द से झकोले लेने लगे । प्रणय-लीला के समस्त हाव-भावों से चित्त चुराने लगे । (स्पष्ट है, प्रणय-लीला और हाव-भाव के उल्लेख में मर्यादा का उल्लंघन स्वाभाविक है ।)

कबहुंक कमल सरोवर उपवन जनक सुता संग लीन्हें ।
नाना जल विहार विहरत हैं सन्त जननि सुख दीन्हें ॥३११॥

कभी-कभी सीताजी को साथ लेकर कमलो से भरे सरोवरों तथा उपवनों में नाना प्रकार के जल-विहार करते हैं । इस प्रकार अपनी नित्य विहार-लीला से सन्त-जनों को सुख देते हैं ।

कबहुंक रत्न महल चितसारी सरद निसा उजियारी ।
बैठे जनकसुता संग विलसत मधुर केलि मनुहारी ॥३१२॥

कभी रत्नो से जगमगाते महल की चित्रशाला मे शरद रात्रि की उजियाली मे जनकसुता (जानकी) के साथ विलास करते और काम-केलि मे आनन्दमग्न होते हैं ।

कबहुंक अगर धूप नाना विधि लिय सुगंध सुखकारी ।
कबहुंक निरतत देव नटी लखि रीझत हैं सुख भारी ॥३१३॥

कभी अगर और धूपादि की सुवास के बीच श्री रामचन्द्रजी नृत्य करते हैं । उनके रास को देखकर देव-अप्सराएँ प्रसन्न होती हैं ।

राम विहार कहेउ नाना विधि वाल्मीकि मुनि गायो ।
सत चरित विस्तार कोटिसत तऊ पार नहिं पायो ॥३१४॥

इस प्रकार मैंने रामचन्द्रजी के विहार का वर्णन किया। वाल्मीकिजी ने भी गान किया है और शतकोटि पदों मे रामचरित का गान किया है, किन्तु वे भी पार नही पा सके।

विशेष—राम-विहार का वर्णन सूरदास से पूर्व कही नही मिलता । सूरदासजी ने कृष्ण-विहार का विस्तृत वर्णन 'सूरसारावली' से पूर्व 'सूरसागर' मे कर रखा था । उनकी दृष्टि मे राम भी कृष्ण के ही अवतार हैं इसीलिए अपनी विचारधारा के अनुरूप उन्होने यहाँ रामावतार की कथा के उपरान्त सिद्धान्त-कथन के रूप मे राम का भी नित्य-विहार वर्णन किया । सारावली का यह राम-नित्य-विहार बडा महत्व-पूर्ण है । आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास के उपरान्त रामभक्ति शाखा के सभी कवियों ने राम के इसी रूप को अपनाया । तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को छोड़ कर रसिक-सम्प्रदाय के सैकडों कवियों ने राम के नित्यविहार का खुलकर वर्णन किया ।

सूर समुद्र की बुन्द भई यह कवि बरनन कहि करिहै ।
कहति चरित रघुनाथ सरस्वति बौरी मति अनुसरिहै ॥३१५॥

प्रस्तुत उक्त विहार के विषय मे सूरदासजी कहते हैं कि यह कथन इस प्रकार अपर्याप्त है जैसे समुद्र की एक बूँद । कहाँ प्रभु का नित्य-विहार रूपी समुद्र और कहाँ मेरा वर्णन रूपी बूँद । कवि उस अनिर्वचनीय आनन्द का वर्णन भी कैसे कर सकता है । हाँ, यदि कोई कवि रघुनाथजी के चरित्र वर्णन करने में अपनी भोली मति का उपयोग करेगा तो सरस्वती अवश्य ही उसका अनुसरण करेगी अर्थात् सहायता करेगी ।

अपने धाम पठाय दिये तब पुरवासी सब लोग ।
जै जै जै श्रीराम कल्पतरु प्रगट अजोध्या भोग ॥३१६॥

अन्त में भगवान् ने अपने पुरवासियों को निज-लोक भेज दिया । सब-के-सब शाश्वत वृन्दावन धाम में पहुँच गये । अयोध्या में आनन्दोपभोग को प्रकट करने वाले कल्पवृक्ष स्वरूप रामचन्द्र जी की जय हो ।

१८. परशुराम-अवतार

दुष्ट नृपति जब बैठे भुव पर धरि भृगुपति को रूप ।
छिन में भुव को भार उतार्यौ परसुराम द्विज भूप ॥३१७॥

दुष्ट क्षत्रिय राजाओं ने जब पृथ्वी पर शासन किया था, तब परशुराम का रूप धारण करके द्विज रूप में भगवान् ने पृथ्वी का भार उतारा ।

विशेष—यहाँ पीछे के पद संख्या १३६ में कथित परशुराम अवतार की पुनरुक्ति हो गयी है ।

व्यास रूप ह्वै वेद विस्तारे कीन्हें प्रकट पुरानन ।
नाना वाक्य धर्म थापन को तिमिर हरण भुव भारन ॥३१८॥

व्यास रूप धारण करके भगवान् ने वेद का विस्तार किया । उन्होंने भागवत पुराण की रचना की । वेद का ज्ञान अगम है, सर्वजन सुलभ नहीं है । अतः भागवत में नाना वाक्यों के द्वारा व्यासजी ने भक्ति-मार्ग का प्रवर्तन किया । इस प्रकार भागवत के द्वारा व्यासजी ने जगत के अन्धकार को दूर किया । इसीलिए व्यासजी को भगवान का अंशावतार माना गया है ।

१९. बुद्ध-अवतार

बुद्ध रूप कलि धर्म प्रकास्यो दया सवन को मूल ।
दूर कियो पाखण्डवाद हरि भक्तन को अनुकूल ॥३१९॥

बुद्ध रूप धारण करके प्रभु ने दया-धर्म का प्रकाशन किया । दया ही सब धर्मों का मूल है । बुद्धजी ने अहिंसा के द्वारा दया-धर्म का ही विस्तार किया है । उनसे पहले धर्म में पाखण्डवाद फैल गया था । उस पाखण्डवाद को दूर कर हरिभक्तों के अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत कर दी ।

२०. कल्कि-अवतार

कलि के आदि अन्त कृतयुग के हैं कलंकी अवतार ।
मारि म्लेच्छ धर्म फिर थाप्यो भयो जग जय जयकार ॥३२०॥

कलियुग के अन्त में युगान्त करने के हेतु कल्कि अवतार होगा और म्लेच्छों को मार कर प्रभु धर्म की स्थापना करेंगे ।

विशेष—इस पद का पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि पाठ के अनुसार 'कलि के आदि और अन्त कृतयुग' असम्भव है । वास्तव में कल्कि-अवतार भागवत के अन्त में वर्णित है । (भागवत प्रथम स्कंध, अध्याय ३, पद २५ और द्वितीय स्कंध, अध्याय ७ पद ३८) । अतः प्रथम पंक्ति का पाठ होना चाहिए—

कलि के अन्त युगान्त करन हित, है कलकी अवतार ।

सूरसागर के द्वादश स्कंध में कल्कि-अवतार का वर्णन विस्तार से है ।

२१. मोहिनी-अवतार

कर्मवाद थापन को प्रकटे पृश्नि गर्भ अवतार।

सुधापान कीन्हों सुरगण को भयो जग यश विस्तार ॥३२१॥

कर्मवाद स्थापन करने को प्रभु ने पृश्निगर्भ अवतार लिया। कथन है कि पृश्नि ने तपस्या के बाद भगवान को पुत्र रूप में मांगा था। अतः भगवान् उनके पुत्र हुए। इसीलिए उनका नाम पृश्निगर्भ था। (पृश्निगर्भ [का उल्लेख भागवत अष्टम स्कंध अध्याय १७ में है।)

असुरन को व्यामोह कियो हरि धरो मोहिनी रूप।

अमृत पान कराय सुरन को कीन्हें चरित अनूप ॥३२२॥

फिर देवताओ को अमृत पिलाने के हेतु भगवान् ने अवतार लिया। जब समुद्र मन्थन के उपरान्त अमृत निकला तो राक्षस और देवता दोनो ही अमृत चाहते थे। इस समय भगवान ने मोहिनी रूप धारण किया। राक्षस लोग उनके रूप पर मुग्ध हो गये। भगवान् ने सबको एक पंक्ति में बिठा दिया। राक्षस भगवान् के मोहिनी रूप से मोहित होकर ज्ञान को खो बैठे। भगवान् ने [देवताओ की ओर से अमृत पिलाना आरम्भ किया और उनको ही सारा अमृत पिला दिया।

तैसे ही भुव भार उतारन हरि हलधर अवतार।

कालिन्दी आकर्ष कियो हरि मारे दैत्य अपार ॥३२३॥

इसी प्रकार पृथ्वी के भार को उतारने के लिए बलराम का अवतार हुआ। उन्होंने यमुनाजी को खींचा और बहुत से दैत्यों को मारा। (कथा है कि यमुना ब्रज से दूर चली गयी थी। तब बलरामजी को क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने अस्त्र हल को सम्भाला और यमुना को खींच कर ब्रज मे लाये।

विशेष—बलराम को अवतार तो माना है, किन्तु मुख्य चौबीस अवतारों में इनकी गणना नही है।

गजेन्द्र मोक्ष करने वाले नारायण अवतार

गज अरु ग्राह लड़ेउ जल भीतर तब हरि सुमिरण कीन्हों।

छोड़ि गरुड़ सुखधाम सांवरो भक्तन को सुख दीन्हों ॥३२४॥

जब गज और ग्राह जल के भीतर लडे थे, तब गज ने भगवान् का स्मरण किया। तब भगवान् इतनी जल्दी मे दौड़े कि उन्होंने गरुड को भी न लिया और पैदल ही यात्रा कर उन्होंने गजराज की रक्षा की। इस प्रकार भगवान् भक्तों को सुख देते हैं।

जब यहु असुर बढ़े पृथ्वी पर कियो अनर्थ विस्तार।

सत्यसेन प्रकटे विश्वम्भर सत्य कियो है अपार ॥३२५॥

इसी प्रकार जब-जब पृथ्वी पर असुर बढ़े और उन्होंने अनेक प्रकार के अनर्थ किए तब-तब भगवान् ने प्रकट होकर ससार मे सत्य की स्थापना की।

निज बैंकुण्ठ बसाय रमापति कियो रमा को हेत ।
विनती सुनि कमला की केशव कीन्हों सुख संकेत ॥३२६॥

भगवान् ने वैंकुण्ठ की स्थापना करके लक्ष्मी का कल्याण किया । लक्ष्मीजी ने एक बार उनसे विनती की कि उनके लिए किसी लोक की स्थापना की जाय । तब भगवान ने उनकी इच्छा पूरी की और उन्हें सुख का स्थल दिया ।

ब्रह्मचर्य थापन के कारण धरो विभू अवतार ।
जहं तहं मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार ॥३२७॥

ब्रह्मचर्य व्रत की स्थापना के लिए प्रभु ने विभु रूप धारण किया । उन्होंने मुनिवरों में पूर्ण मर्यादा की स्थापना की ।

अजितरूप ह्वै शैल धरो हरि जलनिधि मथिवे काज ।
सुर अरु असुर चकित भये देखत किये भक्त के काज ॥३२८॥

उन्होंने कच्छप रूप धारण करके मंदराचल पर्वत को अपने ऊपर धारण किया । तभी समुद्र का मंथन हो सका । भगवान के क्रुद्ध रूप को देखकर सुर और असुर चकित हो गये थे ।

विशेष—यहां कूर्मावतार की पुनरुक्ति हुई है क्योंकि पद संख्या १०० में इस कथा का वर्णन हो चुका था ।

२३. वामन-अवतार

जब बलिराजा गये देवपुर लीन्हों स्वर्ग छुड़ाय ।
अदिति दुखित भई कश्यप सों विनती करी सुनाय ॥३२६॥

राजा बलि ने स्वर्ग पर आक्रमण करके इन्द्र से स्वर्ग छीन लिया । देवों की माँ अदिति अपने पुत्रों की बुरी हालत देखकर दुखी हुई । उन्होंने अपने पति कश्यप ऋषि से प्रार्थना की । उनका उद्द श्य यह था कि वे उन्हें श्रेष्ठ पुत्र देने का वरदान दें ।

विशेष—भागवत के अष्टम स्कंध के अध्याय १६ में यह कथा विस्तार से है । उसमें पुत्र-कामना रखने वाली नारियों के लिए पयोव्रत का विधान है । फाल्गुन की शुक्लपक्ष प्रतिपदा से लेकर त्रयोदशी तक का केवल दूध पीकर रहने का व्रत पयोव्रत है ।

तब कश्यप मुनि कहेउ पयोव्रत विधि सों करो बनाय ।
ताकी कोखि जन्म हरि लीन्हों श्री वामन सुखदाय ॥३३०॥

कश्यप जी ने अदिति को पयोव्रत रखने को कहा । उस पयोव्रत के फलस्वरूप अदिति की कोख से सुखदायी भगवान् वामन ने अवतार लिया ।

भादों सुक्ल द्वादसी सुभ दिन धरो विप्र हरि रूप ।
शिव विरंचि सनकादिक आये वन्दन को सुरभूप ॥३३१॥

भादों की शुक्लपक्ष की द्वादशी के शुभ दिन शुभ नक्षत्र मे भगवान् का जन्म हुआ। इसके उपरान्त वामन ने ब्रह्मचारी (विप्र) का रूप धारण किया। उनके इस रूप को देखकर शिव, ब्रह्मा और सनकादिक उनकी स्तुति करने के लिए आये।

यज्ञोपवीत विधोक्त कियो विधि सब सुर भिक्षा दीन्हीं ।
वामन रूप चले हरि द्विजवर बलि की मन सुधि कीन्हीं ॥३३२॥

ब्रह्माजी ने उनका विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। सभी देवताओं ने बटु रूप भगवान् को भिक्षाएं दीं। इसके बाद ब्राह्मण रूप धारी भगवान् बलि को याद करके चल पड़े।

दण्ड कमण्डलु हाथ विराजत अरु ओढ़े मृगछाला ।
धरि बटु रूप चले वामन जू अम्बुज नयन विशाला ॥३३३॥

वामन भगवान् के हाथ मे दण्ड और कमण्डल था। उन्होंने मृगछाला ओढ़ रखी थी। उनके कमल के समान विशाल नेत्र थे। इस प्रकार बटु रूप धारण करके वे चले थे।

सूरज कोटि प्रकास अंग में कटि मेखला विराजै ।
करी वेदध्वनि नृप द्वारे पै मनहु महाघन गाजै ॥३३४॥

उनके अंग-अंग मे करोड़ों सूर्य के समान ज्योति थी, कटि मे एक मूंज की मेखला पहन रखी थी। राजा बलि के द्वार पर पहुंच कर उन्होंने ऐसी वेद-ध्वनि की जैसे बादल मे गर्जन हो।

सुनि धायो तहँहीं बलि राजा आय चरण सिर नायो ।
विनती करी बहुत सुख मान्यो आज भयो मन भायो ॥३३५॥

उनकी वेदध्वनि सुनकर राजा बलि दौड पड़े। आकर उन्होंने वामन भगवान को सिर नवाया। उन्होंने निवेदन किया कि आज मुझे बड़ा ही सुख हुआ, आज तो मेरा मन भाया हो गया।

चलिये विप्र यज्ञशाला में जहं द्विजवर सब राजैं ।
आये ब्रह्मसभा में वामन सूरज तेज विराजैं ॥३३६॥

हे विप्र आप मेरी यज्ञशाला मे चलिए जहाँ और बहुत से ब्राह्मण विराजमान हैं। इस पर सूर्य के समान तेजस्वी वामन भगवान् ब्राह्मणों की सभा मे आये।

तब नृप कहेउ कछू द्विज मांगो रतन भूमि मनि दान ।
हय गज हेम रतन पाटम्बर देहौं प्रगट प्रमान ॥३३७॥

तब राजा बलि ने कहा कि हे ब्राह्मण देवता ! कुछ मांगिए। रत्न, भूमि, मणि, घोड़ा, हाथी, जवाहरात, रेशमी वस्त्र जो आप मांगेंगे, मैं मंगवा कर दूंगा।

तब बोले वामन यह बानी सुन प्रहलाद कुल भूप ।
बहुत प्रतिग्रह लेत विप्र जो जाय परत भवकूप ॥३३८॥

तब भगवान् वामन उनसे इस प्रकार बोले—'हे प्रह्लाद कुल के राजा ! जो ब्राह्मण अधिक दान लेता है, वह संसार रूपी कुएं में पड़ जाता है ।

तीन पैंड वसुधा हम पावैं पर्नकुटी इक कारन ।
जब नृप भुव संकल्प कियो है लागे देह पसारन ।३३९॥

मैं तो केवल तीन कदम भूमि लूंगा, उसमें एक पत्ते की कुटिया बना लूंगा । तब राजा ने दान का संकल्प कर लिया । अब वामन भगवान् अपना शरीर बढ़ाने लगे ।

एक पैर में वसुधा नापी एक पैर सुरलोक ।
एक पैर दीजै बलिराजा तब ह्वैहो विनशोक ॥३४०॥

वामन भगवान् ने एक पैर में सारी पृथ्वी को नाप लिया । दूसरे पैर में सारा देवलोक नाप लिया । अब भगवान् ने कहा कि हे बलिराजा ! अब तीसरा पैर भी नपवाइए, तभी आप शोकरहित होंगे ।

नापो देह हमारी द्विजवर सो संकलिपत कीन्हों ।
सुनि प्रसन्न वामन यों बोले तैं मोको वश कीन्हों ॥३४१॥

राजा बलि ने कहा कि हे श्रेष्ठ द्विज ! अब आप मेरी देह नाप लो, क्योंकि मैंने ऐसा संकल्प कर रखा है । यह सुनकर वामन भगवान् प्रसन्न हुए और कहा कि तुमने तो मुझे वश में कर लिया ।

सदा द्वार तेरे ठाढ़ो ह्वै दरशन देहौं तोहि ।
माया काल कबहुं नहि व्यापै सुमिरन कर तैं मोहि ॥३४२॥

सदा तेरे द्वार पर खड़े होकर मैं तुझे दर्शन दिया करूंगा । तुझे कभी भी माया नहीं व्यापेगी तुम मेरा सुमिरन करो ।

सुतल लोक में थिर करि थाप्यो जहं विभूत अति भारी ।
गहि कै गदा द्वार पर ठाडे वामन ब्रह्म मुरारी ॥३४३॥

इसके बाद भगवान ने उसे सुतल लोक में स्थायी रूप से निवास दे दिया, जहां बड़ा ऐश्वर्य है । आप भगवान गदा धारण करके उनके द्वार पर रक्षक के रूप में खड़े हुए ।

स्वर्गलोक दीन्हों सुरपति को पुनि थिर करि कर थाप्यो ।
निगम नेति कहि रटत निरंतर देव शत्रु सब कांप्यो ॥३४४॥

इन्द्र को भगवान् ने स्वर्गलोक दे दिया, उसे फिर से स्थिर करके स्थापित किया । वेद 'नेति-नेति' कह कर बार-बार उनका नाम रटने लगे । राक्षस लोग भय-भीत हो गये ।

वामनरूप ब्रह्म हरि प्रकटे जिनको यश जग गावै ।
शेष सहस मुख रटत निरंतर सूर पार किमि पावै ॥३४५॥

वामन रूप में भगवान् प्रकट हुए, जिसका यश सभी गाते हैं । शेषनाग भगवान् के यश को सहस्र मुखों से गाते हैं फिर भी उनका पार नहीं पाते ।

पुनि बलि राजहिं स्वर्गलोक में थापेंगे हरि राय ।
सार्वभौम अवतार धरेंगे श्री वामन सुखदाय ॥३४६॥

फिर बलि राजा को स्वर्गलोक मे स्थापित करेंगे और अवतार धारण करेंगे।

पुनि विभु रूप एक हरि लैंगे सकल जगत कल्याण ।
कपट खण्ड पाखण्ड असुर को थापे भक्त निदान ॥३४७॥

फिर ससार के कल्याण के लिए विभु रूप में भगवान् अवतार लेंगे और असुरों के कपट और पाखण्ड को नष्ट करके भक्तों का कल्याण करेंगे। (इसका उल्लेख पद संख्या ३२७ में भी हुआ है।)

विष्वक्सेन रूप हरि लैंगे कीन्हों शिव को हेत ।
असुर मारि सब तुरत बिडारे दीन्हें रुद्र निकेत ॥३४८॥

विश्वक्सेन रूप भी प्रभु ने धारण किया और शिव का भला किया। उन्होंने राक्षसों को मार कर शंकरजी को उनका स्थान दिया।

धर्म सेतु ह्वै धर्म बढ़ायो भुवि को धारण कीन्हों ।
शेष रूप ह्वै धरा शीश फिर सब जग को सुख दीन्हों ॥३४९॥

प्रभु का काम धर्म का पुल बन कर धर्म की रक्षा करना है। पृथ्वी की रक्षा के लिए शेष रूप धारण करके उन्होंने पृथ्वी को अपने सिर पर उठाया और सारे ससार को सुख पहुँचाया।

अन्तर्यामी पालन कारन निज सुधर्म धरि रूप ।
अभयदान दै सब जग पोष्यो किये काज सुर भूप ॥३५०॥

अन्तर्यामी भगवान् अपने धर्म के पालन के लिए रूप धारण करके संसार में लोगों को अभयदान देते रहे है और ससार का पालन और इन्द्र का काम करते रहे हैं।

जोग पथ पातजलि भाष्यो, सोउ क्षीन सब जान्यो ।
जोगीस्वर वपु धरि हरि प्रगटे जोग समाधि प्रमान्यो ॥३५१॥

पातंजलि ऋषि ने जिस योग पथ को चलाया था वह जब नष्ट हो रहा था, तब योगेश्वर होकर भगवान प्रकटे और उन्होंने योग-समाधि को प्रामाणिक किया।

क्रिया पंथ श्रुति ने जो भाष्यो, सो सब असुर मिटायो ।
बृहद्भानु ह्वै के हरि प्रकटे छिन में धरम प्रगटायो ॥३५२॥

जब वेद विहित क्रियाओं का लोप हुआ, असुरों ने सब धर्म-रीति मिटा दी तब बृहद्भानु होकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने धर्म की स्थापना की।

यह अनेक अवतार कृष्ण के को करि सकै बखान ।
सोई सूरदास ने बरने जो कहे व्यास पुरान ॥३५३॥

इस प्रकार कृष्ण के अनेक अवतारों का वर्णन व्यास ने पुराणों में किया है। उन्हीं का मैंने (सूरदासजी ने) भी वर्णन कर दिया।

विशेष—यहाँ भी पहले की भाँति कहा है कि कृष्ण परब्रह्म हैं। वे ही भक्तों के कारण विभिन्न अवतार धारण करते हैं। कृष्णावतार भी एक अवतार है किन्तु पुष्टि-मार्गी पुरुषोत्तम रूप कृष्ण को ही अवतारों का मूल समझते हैं।

अंश कला अवतार श्याम के कवि पै कहत न आवैं ।
जहं तहं भीर परत भक्तन पै तहँ तहं वपु धरि धावैं ॥३५४॥

इस प्रकार भगवान के अंशावतार बहुत हुए, जिनका वर्णन किया नहीं जा सकता । भगवान् का तो एक ही सिद्धान्त है कि जब-जब भक्तों पर कष्ट पड़ता है, तब-तब प्रभु शरीर धारण करके दौड़ते हैं और भक्तों का दुख दूर करते हैं ।

माया कला ईश चतुरानन चतुर्व्यूह धरि रूप ।
वायु वरुण औ यम कुवेर शशि मृत्यु अग्नि सुर भूप ॥३५५॥
रवि ससि भृगु मरीचि सुरगुरु अरु चार वेद वपु जान ।
जग को प्रगट करन परजापति प्रगटे कलानिधान ॥३५६॥
जो जो भूप भये भूमण्डल लोकपाल निज जान ।
निज महिमा हरि प्रकट करी है विधि के वचन प्रमान ॥३५७॥
सुर अरु असुर रची हरि रचना सो जग प्रकटहि कीन्हीं ।
क्रीड़ा करी बहुत नाना विधि निगम बात दृढ़ चीन्हीं ॥३५८॥

माया उनकी कला है। ब्रह्मा बन कर उन्होंने सृष्टि की रचना की । अपने चतुर्व्यूह धारण करके अवतार लिए । वायु, वरुण, यम, कुबेर, काल, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि देवता; भृगु, मरीचि और बृहस्पति जैसे ऋषि और चार वेदों की रचना की । इस प्रकार उन कलानिधान प्रजापति ने सृष्टि की रचना की । पृथ्वी में अनेक राजा और लोकपाल हुए । इन सबके द्वारा उन्होंने अपनी महिमा प्रकट की है । सुर और असुर सृष्टि भी हुई है । इस प्रकार सृष्टि रचना के रूप में परब्रह्म ने अनेक खेल किये हैं, वेदों ने उनके स्वरूप को ठीक प्रकार से समझ रखा है ।

२४. कृष्णावतार

कृष्णावतार की प्रस्तावना

यहि विधि होरी खेलत बहुत भांति सुख पायो ।
धरि अवतार जगत के नाना भक्तन चरित दिखायो ॥३५९॥

इस प्रकार परब्रह्म ने होली खेलते-खेलते अनेक प्रकार से सुख पाया । भाव यह है कि सृष्टि रचना और लीलावतार के रूप में जो कुछ हुआ सब प्रभु की होली है । (सूर सारावली के आरम्भ में ही जिस होली रूपक का कथन हुआ है, उसी का निर्वाह कवि ने सभी अवतारों और अंशावतारों के रूप में किया है ।)

अंश कला अवतार बहुत विधि राम कृष्ण अवतारी ।
सदा विहार करत व्रजमण्डल नन्द सदन सुखकारी ॥३६०॥

प्रभु के और जितने अवतार हैं वे सब अंश कला के अवतार हैं । पूर्ण अवतारी रूप तो दो ही हैं—रामावतार और कृष्णावतार । कृष्णावतार पूर्णावतार है । उसमें आनन्दप्रद नंद-सदन में सदा विहार करते हैं ।

नित्य अखण्ड अनूप अनागत अविगत अनघ अनन्त ।
जाको आदि कोउ नहिं जानत कोउ न पावत अन्त ॥३६१॥

भगवान् कृष्ण तो नित्य, अखण्ड, अनूप, अनागत, अनघ और अनन्त हैं। न कोई उनका आदि जानता है और न अन्त।

विशेष—प्रभु के चौबीस अवतारों का जो क्रम है उस क्रम से सारावली में सीता-गान नहीं हुआ। आरम्भ में तो भागवत के अनुसार अवतारों का क्रम ठीक है, किन्तु बाद में क्रम बदल दिया गया है। कृष्णावतार को सब से अधिक महत्व देने के कारण सारावली में कृष्णावतार को सबसे अन्त में रखा गया है। बुद्ध और कल्कि आदि अवतार जो कृष्णावतार से बाद में हुए उनको कृष्णावतार से पहले कर दिया गया। बहुत से और गौण अंशावतारों का भी परिगणन कर दिया है। इसके उपरान्त कृष्णावतार के आरम्भ से पूर्व पुनः उनके पूर्ण पुरुषोत्तम रूप पर संकेत दिया गया है। जिस प्रकार आरम्भ में भगवान् कृष्ण को परब्रह्म का स्वरूप बताया गया और उनकी नित्य-विहार-लीला का महत्व गाया गया उसी प्रकार अब कृष्ण-लीला के आरम्भ में भी—

अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी ।
पूरण ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी ॥

की पुनरुक्ति की गयी है।

जब हरि लीला की सुधि कीन्हीं प्रगट करन विस्तार ।
श्री वृषभानु रूप ह्वै प्रगटे पुनि ब्रजराज उदार ॥३६२॥

जब भगवान् ने लीला का स्मरण किया और उसे प्रकट करना चाहा तो पहले वृषभानु और नन्द के रूप में प्रकट हुए। भाव यह कि प्रभु अपनी ही विलासेच्छा को पूर्ण करने के लिए जगत का विस्तार करते हैं। शाश्वत वृन्दावन लौकिक वृन्दावन के रूप में प्रकट हुआ और यहां वृषभानु और नन्द के घर बने।

विद्या ब्रह्म कही यशुमति सो जाकी कोखि उदार ।
सोरह कला चन्द्र जो प्रगटे दीन्हो तिमिर विदार ॥३६३॥

फिर प्रभु ने ब्रह्मविद्या योगमाया से कहा तुम यशोदा की श्रेष्ठ कोख में जाकर विराजो। (भागवत के दशम स्कंध, द्वितीय अध्याय, श्लोक ९ में ऐसा कथन है) स्वयं सोलह कलाओं के पूर्ण चन्द्र रूप में प्रकट हुए और पाप रूपी अन्धकार को नष्ट किया।

विशेष—केवल कृष्णावतार को ही सोलह कलाओं का पूर्णचन्द्र कहा गया है।

पुनि वसुदेव देवकी कहियत पहिले हरि वर पायो ।
पूरन भाग्य आय हरि प्रगटे यदुकुल ताप नसायो ॥३६४॥

फिर वसुदेव देवकी के लिए कहा गया है कि उन्होंने पूर्वजन्म में वर प्राप्त किया था कि भगवान् उनके पुत्र होंगे। इसलिए अब पूर्णपुरुषोत्तम के रूप में भगवान् प्रकट हुए हैं और इससे यदुकुल का कष्ट दूर हुआ।

आठें बुद्ध रोहिणी आई शंख चक्र वपु धारो ।
कुण्डल लसत किरीट महाप्र्यनि वपु वसुदेव निहारो ॥३६५॥

भाद्रपद की अष्टमी, बुद्धवार के दिन और रोहिणी नक्षत्र में भगवान अपने शंख,

चक्र, गदा और पद्‌मधारी रूप में प्रकट हुए। उनके सिर पर किरीट था और कानों में कुण्डल थे। उनके इस रूप को वसुदेवजी देखते ही रह गये।

विशेष – सूरसागर के दशम स्कंध, पद ४-५ में इसी प्रकार का वर्णन है।

अस्तुति करी बहुत नाना विधि रूप चतुर्भुज देख्यो।
पीताम्बर अरु स्याम जलद वपु निरखि सफल दिन लेख्यो ॥३६६॥

वसुदेवजी ने भगवान का चतुर्भुज रूप देखा। उन्होंने उनकी स्तुति की और उनके श्यामरूप पर पीताम्बर देख कर अपने जीवन को सफल माना।

तब हरि कहेउ जन्म तुम्हरे गृह तीन बार हम लीन्हो।
पृश्नीगर्भ देव ब्राह्मण जो कृष्ण रूप रंग भीन्हों ॥३६७॥

तब भगवान् ने कहा कि हमने तो तुम्हारे घर में तीन बार अवतार लिया है। पृश्निगर्भ, वामन (देव ब्राह्मण) और कृष्ण। इस सम्बन्ध में भागवत में स्पष्टीकरण है। वहां (दशमस्कंध, तृतीय अध्याय, पद ३२-४५) में कहा गया है कि पृश्नि और सुतपा ने बड़ी तपस्या की थी। इनको भगवान् ने तीन बार पुत्र रूप में सनाथ करने का वर दिया था। इसलिए उनके तीन अवतार हुए थे—पृश्निगर्भ, वामन और कृष्ण।

मांगो सकल मनोरथ अपने मनवांछित फल पायो।
शंख चक्र गदा पद्‌म चतुर्भुज अजन जन्म लै आयो ॥३६८॥
यह भुव भार उतारन कारन हलधर को संग लायो।
क्रीड़ा करौं लोक पावन कर करौं भक्त मन भायो ॥३६९॥

इस पर वसुदेवजी ने अपने मनोरथ अर्थात् भगवद्-भक्ति का वरदान मांग कर अपना मनचाहा पा लिया। अजन्मा परमेश्वर ने शंख, चक्र, गदा, पद्‌म रूप में चतुर्भुज रूप लेकर इस पृथ्वी का भार उतारनेके लिए बलराम को साथ लेकर अवतार लिया और क्रीड़ाए की। लोक को पवित्र किया और भक्तों का मन भाया किया।

प्राकृत रूप धरो हरि क्षण में शिशु ह्वै रोवन लागे।
तब वसुदेव देवकी निरखत परम प्रेम रस पागे ॥३७०॥

भगवान ने जब नर रूप में स्वाभाविक शरीर धारण किया तब वे बच्चा बन कर रोने लगे। वसुदेव और देवकी भी इनको देख कर वात्सल्य-रस में पग गये।

तब देवकी दीन ह्वै भाख्यो नृप को नाहि पतीजे।
अहो वसुदेव जाव लै गोकुल कह्यो हमारो कीजै ॥३७१॥

तब देवकी ने वसुदेवजी से प्रार्थना की—आप कंस का विश्वास न कीजिए। आप मेरा कहना मान कर तुरन्त ही गोकुल जाइए।

वसुदेव का गोकुल-गमन

तब लै हरि पलना पौढ़ाये पीताम्वर जु उठायो।
तब वसुदेव सीस धरि पलना भयो सदन मन भायो ॥३७२॥

तब वसुदेवजी ने कृष्ण को लेकर पलना पर लेटा दिया और पीताम्बर से उसे ढक दिया। सिर पर पलना को रख कर वे चले।

गोकुल चले प्रेम आतुर ह्वै खुलि गये कपट कपाट ।
सोये स्वान पहरुआ सोये सबै खुल भई बाट ॥३७३॥

प्रेम में विह्वल होकर वे गोकुल के लिए चल पड़े। जेल के बन्द दरवाजे खुल गये, कुत्ते और पहरेदार सो गये, रास्ता खुल गया।

तब वसुदेव लियो करि पलना अपने शीश चढ़ायो ।
रैन अन्धेरी कछु नहिं सूझत अटकर अटकर आयो ॥३७४॥

वसुदेवजी पालने को सिर पर रखे हुए अंधेरी रात्रिमें जब कुछ भी सूझ नहीं रहा था, अन्दाज से कदम रखते हुए आगे बढ़े।

सेष सहसफन ऊपर छाये घन की बूंद बचावैं ।
आगे सिंह हुंकारत आयत निर्भय बाट जनावैं ॥३७५॥

ऊपर शेषनाग ने अपने फणों की छत्रछाया करके बादलों की बूंदों से रक्षा की। आगे सिंह गरज रहा था, किन्तु वसुदेवजी निर्भय होकर रास्ते पर चले।

यमुना अति जलपूर बहत है चरन कमल परसायो ।
मारग दीन्हों राम सिन्धु ज्यों नन्द भवन चलि आयो ॥३७६॥

यमुना जल से भरी हुई उमड़ी थी। भगवान ने अपने चरण-कमल से यमुना को स्पर्श किया। तब यमुना ने इस प्रकार मार्ग दिया जैसा कि सागर ने राम को दिया था।

पहुंचे आय महर मन्दिर मे नेंक न शंका कीन्हीं ।
बालक धरि लै सुरदेवी सुरति गवन की कीन्हीं ॥३७७॥

वसुदेवजी सीधे नद के घर मे चले गये, उन्होंने तनिक भी शंका नहीं मानी। उन्होंने यशोदाजी के पास बाल-कृष्ण को लिटा दिया और देवी बालिका को उठा कर तुरन्त चल पड़े।

लै वसुदेव तुरत घर आये काहू जिय नहिं जाने ।
जब यह रोवन लागी तब सब जाग परे अकुलाने ॥३७८॥

बालिका को लेकर वसुदेवजी तुरन्त ही घर लौट आये। किसी को यह सारी कथा न मालूम हो सकी। जब देवकी की गोद मे पहुंचने पर वह बालिका रोने लगी, तब सब घबरा कर जग पड़े।

कंस द्वारा देवी-वध

बालक भयो कह्यो नृप सों जब दौरि कंस तब आयो ।
कर गहि खड्ग कह्यो देवकि सों बालक कहं पहुंचायो ॥३७९॥

पहरेदारों ने जाकर कंस से कहा कि बच्चा हुआ है। यह सुनकर कंस दौड़ा आया। उसने हाथ मे तलवार लेकर कहा कि तुमने लड़के को कहां पहुंचा दिया।

तब देवकी अधीन कह्यो यह मैं नहिं बाल जायो ।
यह कन्या मोहिं बकस और तू कीजै मो मन भायो ॥३८०॥

इस पर देवकी ने कहा कि मैंने पुत्र नहीं पैदा किया है। यह तो कन्या है, इसलिए हे भाई! इसे तू छोड़ दे और मेरा मनभाया कर दे।

कंस बंस को नास करत है कहा समुझ रिसियानी ।
मोको भई अनाहद वानी ताते डर नहिं जानी ॥३८१॥

'कंस तू क्या समझ कर वंश का नाश कर रहा है।' यह कहकर वह नाराज हुई । इस पर कंस ने कहा कि मुझे तो आकाशवाणी हुई है, उसे क्या तू नहीं जानती ?

कन्या मांग लई तब राजा नेकु शंक नहि आनी ।
पटकत सिला गई आकासैं कंस प्रतीत न मानी ॥३८२॥

तब राजा ने कन्या मांग ली, उसे तनिक भी शंका न हुई । उसने ज्यों ही मारने के लिए शिला पर पटका, वह आकाश को उड़ गयी । कंस को विश्वास न हुआ कि यह क्या हो गया ।

भई अकासवानी सुरदेवी कंस यहाँ अब आई ।
तेरो शत्रु प्रगट कहुं ब्रज में काहु लख्यो नहिं जाई ॥३८३॥

आकाशवाणी में देवी ने कहा कि मैं तो यहां आई । तेरा शत्रु ब्रज में प्रकट हो चुका है, उसे कोई देख नहीं सकता ।

जैसे मीन करत जल क्रीड़ा जल में रहत समोई ।
त्यों तुव काल प्रगट इक कतहूं लखि न सकत तेहि कोई ॥३८४॥

जिस प्रकार मछली जल में खेलती रहती है किन्तु वह जल में ही समाई रहती है, उसे लोग देख नहीं पाते, उसी प्रकार तेरा काल भी वहीं पर प्रकट है, पर उसे कोई देख नहीं सकता ।

अन्तर्धान भई सुरदेवी कंस प्रतीत जो मानी ।
तब वसुदेव देवकी के गृह कंस गयो यह जानी ॥३८५॥

ऐसा कहकर सुरदेवी अन्तर्ध्यान हो गयी । अब कंस को विश्वास हो गया कि उसका शत्रु उत्पन्न हो चुका है । तब कंस वसुदेव-देवकी के पास गया ।

क्षम अपराध देवकी मेरो लिख्यो न मेट्यो जाई ।
मैं अपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई ॥३८६॥

उसने कहा कि हे देवकी ! तुम मेरे अपराधों को क्षमा करो । जो भाग्य में होता है उसे कोई मिटा नहीं सकता । मैंने तेरे शिशुओं को मारकर बड़ा अपराध किया है । ऐसा कहकर हाथ जोड़कर वह बिलख-बिलख कर रोने लगा ।

विशेष—सारा वर्णन भागवत और 'सूरसागर' के अनुसार ही है । एक ही कवि की रचनाओं में विषय-साम्य के साथ कुछ पदों का एक होना स्वाभाविक है । अतः कुछ पंक्तियां सूरसागर से मिलती हैं । पर इन पंक्तियों को देखकर जब डॉ० प्रेम-नारायण टण्डन जैसे विद्वान 'अपहरण' की संज्ञा देते हैं तो बड़ा खेद होता है ।

पुनि गृह आय सेज पर सोयो नेकु नींद नहिं आवे ।
देस देश के दूत बुलाये सबहिन मतो सुनावे ॥३८७॥

कंस घर आया और शैया पर लेट गया, उसे सारी रात नींद नहीं आई । दूसरे दिन देश-विदेश जाने वाले दूतों को बुलाया और सबसे अपना मत कह सुनाया । उसका मत यह था कि जितने भी बच्चे और वेदपाठी ब्राह्मन मिलें, उन्हें मार डालो । (भागवत, दशमस्कंध, पूर्वार्ध, अध्याय ४, श्लोक ४३)

दीन हीन जो असुर चढ़त बलि करन सकल पुनि संसो ।
सुझत रहि तन भार उतारेउ जल को माखन जैसो ॥३८८॥

सूरदासजी का कथन है कि कंस इस समय दीन-हीन हो गया है । वह बलिवेदी पर चढ़ रहा है । बच्चों और ब्राह्मणों को उसका मारना बलिवेदी पर चढ़ना है क्योंकि जितना अधिक अन्याय वह करेगा उतनी ही जल्दी वह मारा जायेगा । उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि वह अपना भार कैसे उतारे । वह इस प्रकार उल्टे कार्य कर रहा है जैसे जल में से मक्खन निकालना ।

कृष्ण-जन्मोत्सव

भयो भोर यशुमति गृह आनँद मंगलचार बधाई ।
जागी महरि पुत्र मुख देख्यो आनँद उर न समाई ॥३८९॥

व्रज में प्रातःकाल होते ही यशोदा के घर में आनन्द और मंगल का वातावरण बना । अब यशोदा जी जगी और उन्होंने पुत्र का मुख देखा तो आनन्द उनके उर में समा नहीं रहा था ।

जैसे शशि प्रकटत प्राची दिसि सकल कला भरिपूर ।
जसुमति कोख आय हरि प्रकटे असुर तिमिर कर दूर ॥३९०॥

जिस प्रकार सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा के उदय पर सारे अँधेरे का लोप हो जाता है उसी प्रकार यशोदा की कोख से उत्पन्न होकर भी कृष्ण ने व्रज में व्याप्त असुरों के अन्धकार को दूर कर दिया ।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

नन्दराय घर ढोटा जायो महर महासुख पायो ।
विप्र बुलाय वेद ध्वनि कीन्हीं स्वस्ती वचन पढ़ायो ॥३९१॥

नन्दजी के पुत्र उत्पन्न हुआ अतः उन्हें बड़ा ही सुख हुआ । उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर वेद-ध्वनि करवाई और स्वस्तिवाचन हुआ ।

जात कर्म कर पुनि पितर सुर पूजन विप्र करायो ।
दोइ लख धेनु दई तेहि अवसर बहुतहि दान दिवायो ॥३९२॥

जातकर्म सस्कार करके पितरों और देवताओं का पूजन हुआ । उस अवसर पर दो लाख गौओं का दान दिया गया और अन्य दान दिये गये ।

पर्वत सात तिलन को कीन्हों रत्ननि ओघ मिलायो ।
मागध सूत और बंदीजन ठौर ठौर जस गायो ॥३९३॥

तिल के सात पर्वत बनाए गये, उनमें रत्न समूह मिलाए गये। मागध, सूत और वन्दीजन जगह-जगह यश गान करने लगे।

बाजे बजत विचित्र भांति सों रह्यउ घोष सब गाज।
सुर सुमनन बरसावत गावत व्योम विमानन साज ॥३९४॥

अनेक प्रकार के बाजे बजे। सारा वातावरण गूँज उठा। देवता आकाश में विमानों पर बैठ कर पुष्प-वर्षा करने लगें।

बांधत बँदनवार साथिये द्वारे ध्वजा सुहाई।
कनक कलश प्रति पौर विराजत मंगलचार बधाई ३९५॥

वन्दनवार बँधने लगे। सथिया द्वार-द्वार पर बनी, ध्वजा पताकाएँ फहरीं। प्रत्येक द्वार पर स्वर्णकलश सुशोभित हुए। मंगलाचरण और बधाइयाँ गाई जाने लगीं।

सुरभी वृषभ सिगारे बहुविधि हरदी तेल लगाई।
सुवरण माल विचित्र धातु रंग अंग अंग चित्र बनाई ॥३९६॥

गौओं और बैलों का शृंगार किया गया। हल्दी और तेल के टीके लगाये गये। स्वर्ण और विचित्र धातुओं की मालाएँ पहिनाई गयीं और उनके अंग-अंग पर चित्र बनाये गये।

विशेष—नन्द के द्वार का यह उल्लासपूर्ण वर्णन देखकर विद्वान डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा को एक शंका हो गई कि यहांका वर्णन असाधारण हो गया है। 'सूरसागर' में नन्द साधारण ग्वाल से हैं किन्तु यहां पर राजाओं का सा वर्णन है। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'सारावली' का वर्णन भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के अध्याय ५ से काफी मिलता है फिर भी 'सूरसागर' में भी इसी प्रकार का वर्णन है।[1]

---

१. अमर विमान चढ़े सुर देखत. जै धुनि शब्द सुनाई।

सूरसागर १०-२५

वंदीजन मागध सूत आंगन भौन भरे।
... ...
पुर घर घर भेरी मृदंग पटह निसान बजे।
वर वारनि वंदनवार कंचन कलस सजे। सूरसागर १०-२४
... ...
नंदद्वार भेंट लै लै उमह्यो गोकुल गांव।
पर्वत सात रतन के दीने।
... ...
काम धेनु तैं नेकु न हीनी।
द्वै लख धेनु द्विजन कौं दीनी।
... ...
नंद पौरि जे जाचक आए।
बहुरैं फिरि जाचक न कहाए॥ सूरसागर १०-३२

आये गोप भेंट लै लै के भूषन बसन सोहाये।
नाना विधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिरनाये ॥३६७॥

बहुत से गोप लोग भूषण और वस्त्रों से सुशोभित होकर भेंट लेकर आये। नाना प्रकार के उपहार, दूध, दही आदि आगे रखकर उन्होंने सिर नवाया।

जसुमति के गृह पुत्र प्रगट भयो सुनी सकल ब्रजनारी।
मंगलसाज सँवार हाथ लै घर घर मंगलकारी ॥३६८॥

जब ब्रज-नारियों ने सुना कि यशोदा के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है तब घर-घर में मंगल-थाल सजा-सजा कर हाथ में लेकर निकल पड़ीं।

अति आतुर ह्वं चलीं झुंड जुरि सिर सुमनन बरसावें।
मानो रीझ मधुप धरणी को रस पराग दरसावें ॥३६९॥

बड़ी आतुरता के साथ झुंड-की-झुंड नारियाँ चलीं। तेजी से चलने के कारण उनके सिर में सजे हुए फूल पृथ्वी पर गिरने लगे। यह ऐसा लगता था मानो भौंरे पराग गिरा रहे हों। (यहाँ बालों की उपमा भौंरों से और पुष्पों की पराग-वर्षा से दी गयी है।)

पहुँची जाय महर मन्दिर में करत कुलाहल भारी।
दरसन करि जसुमति सुत को सब लैन लगीं बलिहारी ॥४००॥

सभी नारियाँ यशोदा के महल में पहुँच कर कोलाहल करने लगीं। यशोदा के पुत्र को देखकर सब बलैयाँ लेने लगीं।

नाचत गोप परस्पर सब मिलि छिरकत हैं नवनीत।
दूध और दधि और हरद जल सींचत हैं कर प्रीत ॥४०१॥

गोप लोग मिलकर नाचने लगे और मक्खन, दूध, दही, हल्दी और जल प्रेम से छिड़कने लगे।

विशेष—ब्रज का दधिकादव प्रसिद्ध है, उसी का वर्णन यहाँ हुआ है।

जसुमति कोखि सराहि बलैया लैन लगीं ब्रजनार।
ऐसो सुत तेरो गृह प्रगट्यो या ब्रज को शृंगार ॥४०२॥

यशोदा की कोख को सराह-सराह कर सभी ब्रज-नारियाँ बलैया लेने लगीं। वे कहने लगीं कि आपकी कोख से तो ऐसा बेटा उत्पन्न हुआ है जो ब्रज का शृंगार है।

जसुमति रानी देति बधाई भूषन रतन अपार।
फूली फिरति रोहिनी मइया नख सिख कर शृंगार ॥४०३॥

यशोदा रानी बधाई के उत्तर में भूषण-रत्न देने लगी। रोहिणी (नन्द की दूसरी रानी) नख से शिख तक सुन्दर शृंगार कर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ घूम रही रही है।

देत असीस चलीं ब्रजसुन्दरि जिय उपज्यो सुख भारी।
गृह पूजन सब कियो वेदविधि नन्दराय सुखकारी ॥४०४॥

सारी व्रज-नारियाँ आशीष देती हुई चल रही हैं । नन्दजी ने वेद-विधि से सभी गृह-उत्सव मनाये ।

देश देश ते ढाढ़ी आये मन बांछित फल पायो ।
को कहि सकै दसौंधी उनको भयो सबन मन भायो ॥४०५॥

देश-देश से भाट लोग आये । उन्हें मनचाहा दान मिला । इन भाटों का कौन वर्णन कर सकता है । उनकी इच्छा पूरी हो गयी ।

ता दिन ते सगरे या व्रज में रमारूप दरसायो ।
निज कुल वृद्ध जानि इक ढाढ़ी गोवर्द्धन ते आयो ॥४०६॥

उस दिन से सारे व्रज में ऐसा लगता था मानों लक्ष्मी का ही निवास सर्वत्र हो । नन्द के कुल में भाट समझ कर एक बूढ़ा गोवर्धन से आया ।

परम उदार महर व्रजपति जू ढाढ़ी निकट बुलायो ।
बाजत हुड़क मंजीरा नूपुर नाना भाँति नचायो ॥४०७॥

उदार नन्द बाबा ने उस भाट को अपने निकट बुलाया । उसको उन्होंने नाचने को कहा और हुड़क-मंजीरा बजा कर और पैर में घुंघरू बांध कर वह खूब नाचा ।[1]

झँगा पगा अरु पाग पिछौरी ढ़ाढ़िन को पहिरायो ।
हरि दरियाई कंठ लगाई पर दरसात उठायो ॥४०८॥

लंबा कुर्ता (झंगा), पगड़ी, (पाग), चादर भाटों को पहनाये गये । भगवान की दया को ही उन्होंने कंठ लगाया और अन्य का देखना भूल गये अर्थात् अब उनको इतना दान मिला कि उनकी याचकता ही समाप्त हो गयी ।[2]

बहुत दान दीन्हें उपनन्दजू रतन कनक मनि हीर ।
धरानन्द धन बहुतहिं दीन्हों ज्यो बरषत घन नीर ॥४०९॥

उपनन्दजी ने बहुत-सा दान सोना, रत्न, मणि और हीरे के रूप में दिया । धरानन्द ने तो ऐसा दान दिया जैसे बादलों से जलवृष्टि हो ।[3]

---

१. सूरसागर में भी इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है ।

(नन्दजू) मेरे मन आनन्द भयो है मैं गोवर्धन तैं आयो ।

+ + +

हौं तौ तेरे घर कौ ढाढ़ी सूरदास मोहि नाऊं ॥

(सूरसागर, दशम स्कंध, १०३५)

२. सूरसागर में भी कहा है—

नन्द पौरि जे जाचन आये ।
बहुरो फिर जाचक न कहाये । (दशम स्कंध पद १०-३२)

३. नन्दजी के भाई थे—उपनन्द, धरानन्द, ध्रुवनन्द, सुरसुरानन्द और धर्मानन्द । इन सबने दान दिये और इनका वर्णन यहाँ है ।

कुंडल कान कंठ माला दै भुवनंद अति सुख पायो।
सीधो बहुत सुरसुरा नन्दे गाड़ा भरि पहुंचायो ॥४१०॥

कान का कुंडल और गले की माला भुवनन्द ने दिया और वे प्रसन्न हुए। सुरासुरानन्द ने एक छकड़ा सीधा (आटा) भिजवा दिया।[1]

कर्मा धर्मानन्द कहत हैं बहुतहि दान दिवायो।
ब्रजरानी ढाढ़िन पहिराई मन वांछित फल पायो ॥४११॥

धर्मानन्द ने भी बहुत-सा दान दिया। ब्रजरानी यशोदा ने ढाढ़िन को पहनावा दिया। उसकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हुई।

चले भवन को दे असीष दोउ निरभय कीरति गावैं।
जनि जावें ब्रजपति उदार अति जाचक फिर न कहावैं ॥४१२॥

ढाढ़ी और ढाढ़िन आशीष देते हुए यश गान करते हुए चले गये। जो एक बार नन्दजी के यहाँ माँग ले, फिर उसे माँगने की आवश्यकता नहीं है, वह माँगने वाला नहीं कहा जायेगा।

नाना विधि के विविध खिलौना रतनन अधिक अमोले।
ताको लेन गये मथुरा को आनकदुन्दुभि बोले ॥४१३॥

इसके बाद नाना प्रकार के मूल्यवान खिलौने लेने नंदजी मथुरा गये।[2]

बेगि जाव गोकुल तुम अबहीं सुनियत है उतपात।
सुनि ब्रजराज तुरत घर आये जिय में अति अकुलात ॥४१४॥

वहाँ जब वे वसुदेवजी से मिले तो उन्होंने कहा कि तुम जल्दी गोकुल चले जाओ, क्योंकि सुना है, वहाँ कुछ उत्पात हो रहे हैं। यह सुनकर नन्दजी तुरन्त ब्रज चले आये, वे अपने मन में बड़े ही व्याकुल थे।

विशेष—यह प्रसंग भागवत का है। वहाँ नंदजी वसुदेवजी से मिले थे। कुशल

---

1. डॉ० प्रेमनारायण टंडन 'सीधे' का नाम देखकर शंकित हैं कि शायद सारावली-कार उसी *वर्ग का कवि है जिन्हें सीधे का ही सबसे अधिक चाव है।* किन्तु भाटों को सीधे का दान परंपरित है इसमें चौंकने की क्या आवश्यकता?

2. डॉ० प्रेमनारायण टंडन ने यहाँ भी शंका की है कि नन्दजी को खिलौना लेने मथुरा जाने की क्या आवश्यकता थी। यह शंका भी निर्मूल है। क्योंकि मूल्यवान खिलौने तो मथुरा में ही मिल सकते थे, इसलिए मथुरा जाना स्वाभाविक है। फिर भागवत में भी नन्द कर चुकाने के लिए मथुरा जाते हैं। (दशमस्कंध पूर्वार्ध अध्याय ५ श्लोक १६) सूरदास जी ने मथुरा-गमन में खिलौने खरीदने के निमित्त को रख कर नन्द का मथुरा जाना स्वाभाविक ही कर दिया है।

मंगल के उपरान्त वासुदेवजी ने ही उनसे उपर्युक्त संदेश कहा था (भागवत, दशमस्कंध, पूर्वार्ध, अध्याय ५, श्लोक ३१)।

पूतना-वध

प्रथम पूतना कंस पठाई अति सुन्दर वपु धारेउ।
घसि कै गरल लगाय उरोजनि कपट न कोउ निहारेउ ॥४१५॥

सबसे पहले कंस ने जिसको कृष्ण-वध के हेतु भेजा वह थी पूतना। उसने अत्यन्त सुन्दर रूप बनाया और विष घिस कर अपने स्तनों पर लगा लिया। उसके इस कपट को कोई देख नहीं सकता था।

लिए उठाय स्याम सुन्दर को थन गहि कै मुख लीन्हों।
लीन्हों खैंच प्राण विष पय युत देह विकल तव कीन्हों ॥४१६॥

उसने आकर कृष्ण को उठा लिया और अपने स्तनों पर शिशु कृष्ण का मुख लगा दिया। कृष्ण ने विषयुक्त-दूध के साथ उसके प्राण भी खींच लिए तव वह व्याकुल हो गयी।[1]

छाँड़ि छाँड़ि कहि परी धरनि पर कर चरनन जु पसार।
जोजन ड़ेढ़ विटप वेली सव चूर चूर कर डार ॥४१७॥

जब कृष्ण ने मुख से उसके प्राण चूसे तो वह चिल्लायी 'छोड़ो-छोड़ो'। ऐसा कह कर वह पांवों को फैलाकर भूमि पर पड़ गई, उसके गिरने से डेढ़ योजन दूरी के वृक्ष और लताएँ दव कर चूर-चूर हो गये।

ताको जननी की गति दीन्हीं परम कृपाल गुपाल।
दीन्हीं फूँक काठ तन वाको मिल के सकल गुआल ॥४१८॥

परम कृपालु भगवान ने उसे माँ की गति दी, क्योंकि आखिर उसके स्तनों से मुँह लगाया ही था। इसके बाद सभी ग्वाल-बालों ने उसके काष्ठतन को जला दिया।

विशेष—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा ने 'सारावली' के इस प्रसंग पर आक्षेप किया है, क्योंकि 'सूरसागर' में इसका उल्लेख नहीं है। 'सूरसागर' लीलाग्रन्थ है अतः उसमें भगवान की लीला के आगे अन्य कथानकों की उपेक्षा है। 'सूरसारावली' का दृष्टिकोण भागवतीय है अतः इसमें भागवत का अनुसरण अधिक है।

तवहीं नन्दराय जू आये कौतुक सुनि यह भारी।
विस्मित भये देव ने राख्यौ वालक यह सुखकारी ॥४१९॥

तभी नन्दजी यह नयी वात सुनकर वड़ी उत्कंठा से भागे आये। वे वड़े आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने कहा कि भगवान् ने इस सुन्दर वालक को वचाकर वड़ा सुख दिया।

---

१. 'थन' शब्द के प्रयोग पर डॉ० टंडन को आपत्ति है। 'थन' शब्द का प्रयोग पशुओं के लिए किया जाता है। भक्तकवि पूतना के लिए घृणावाची 'थन' का प्रयोग करता है तो इसमें अस्वाभाविक क्या है? पूतना तो पशु से भी निकृष्ट थी।

विप्र बुलाय वेद धुनि कीन्हीं रक्षा बहुत कराई।
आरति विविधि उतार महरजू मंगल करत बधाई ॥४२०॥

इसके बाद उन्होंने पुरोहित को बुलाकर वेद-ध्वनि कराई और रक्षा सम्बन्धी बहुत से जप आदि कराए। फिर भगवान् की आरती एवं अन्य मंगल कृत्य कराए।

कृष्ण का करौंटी लेना

एक दिना हरि लई करौटी सुनि हरषी नन्दरानी।
विप्र बुलाय स्वस्ति वाचन करि रोहिनि मैन सिरानी ॥४२१॥

एक दिन कृष्ण ने करवट बदल लिया। यह देखकर यशोदा जी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। इस पर रोहिणी ने पुरोहित को बुलाकर स्वस्तिवाचन कराया और वे अत्यन्त ही हर्षित हुईं।

विशेष—बच्चा जिस दिन सबसे पहली करौंटी लेता है, घर वालो को बड़ी प्रसन्नता होती है क्योंकि इससे समझा जाता है कि बच्चे मे शक्ति-सचार प्रारम्भ हो गया है। सूरसागर में भी करौंटी का वर्णन है—

किलकि झटकि उलटे परे, देवनि मुनिराई।
सौवति नंद निहारि कै तहं महरि बुलाई॥ (सूरसागर पद १०-६६)
महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।
+ × +
घटकि-रान उलटी पर्यौ, मैं करौं बधाई॥ (सूरसागर पद १०-६८)

भागवत मे भी यह प्रसंग है (भागवत दशम स्कंध सातवा अध्याय श्लोक ४)

बलराम-जन्म

नित मंगल नित होत कुलाहल नित नित बजत बधाई।
भादौं देव छट्ठि को शुभ दिन प्रगट भये बलभाई ॥४२२॥

नित्य मंगलगान मे कोलाहल होता और बधाई गायी जाती थी। भादों की छठ के शुभ दिन मे बलराम जी का जन्म हुआ।

वर्ष दिवस पहिले व्रजमंडल शेष महावपु लीन्हों।
अपनो धाम जान प्रगटे भुव रूप प्रगट निज कीन्हों ॥४२३॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण के जन्म से एक वर्ष पहले शेष के अवतार के रूप मे बलराम जी प्रकट हुए थे।[1]

१. सूरसागर मे बलराम के जन्म का कोई उल्लेख नही है। इसलिए डॉ० व्रजेश्वर वर्मा और डॉ० टंडन दोनों महानुभावों ने आक्षेप किया है। किन्तु सारावली मे भागवत के अनुसार चौबीस अवतारों का विवरण है। बलराम को अवतार कहा गया है। भागवत में स्पष्ट उल्लेख है कि भगवान् का अंशावतार शेष देवकी के गर्भ से खींचकर रोहिणी के गर्भ में डाला गया। इस खींचने

संकटासुर-वध

कंस नृपति ने सकट बुलायो लेकर बीरा दीन्हों।
आय नन्द गृह द्वार नगर में रूप सकट को कीन्हों ॥४२४॥

कंसराज ने शकटासुर को बुलाया और उसे कृष्ण को मारने के लिए पान का बीड़ा दिया।[1] वह नन्द के घर के दरवाजे पर आकर छकड़े (शकट) के रूप में खड़ा हो गया।

मारी लात श्याम पलना ते परेउ धरनि भहराय।
जहँ तहँ ते दौरे ब्रजवासी स्यामहिं लियो उठाय ॥४२५॥

बालकृष्ण पलने पर पड़े हुए थे। शकट को देखकर उन्होंने ऐसी लात मारी कि वह भहरा कर जमीन पर जा गिरा और चूर-चूर हो गया। आवाज सुन कर जहाँ-तहाँ से ब्रजवासी दौड़ आये और उन्होंने कृष्ण जी को उठा लिया।

वच्छ पुच्छ लै दियो हाथ पर मंगल गीत गवायो।
जसुमति रानी कोख सिरानी मोहन गोद खिलायो ॥४२६॥

इस प्रकार संकट से बच जाने पर बछड़े की पूँछ को कृष्ण के हाथ में देकर मंगल-गीत गाये गये। यशोदा की कोख को शान्ति मिली। उन्होंने कृष्ण को गोद में लेकर खिलाया।

यशोदा को विश्वरूप-दर्शन

इक दिन अस्तन पान करावत यशुमति अति बड़भागी।
वदन पसार विश्व दिखरायो छिन एक मुरछा जागी ॥४२७॥

एक दिन यशोदाजी कृष्णजी को स्तन से दूध पिला रही थीं। कृष्णजी ने एक क्षण के लिए जो जम्हाई ली कि उनके मुख के खुलने में उन्होंने सारे विश्व का

(कर्षण) के कारण ही बलराम को संकर्षण कहा जाता है। (भागवत, दशमस्कंध, अध्याय दूसरा श्लोक ६-१३) इसलिए कृष्ण जन्मोत्सव के प्रसंग में बलराम-जन्मोत्सव का स्मरण कर लेना कवि के लिए कोई अस्वाभाविक नहीं है।

1. 'सूरसागर' में भी कंस ने शकटासुर को पान का बीड़ा दिया है और उसका निपात भी इसी प्रकार हुआ है—

पान ले चल्यो नृप आन कीन्हों।
सकट को रूप धरि असुर लीन्हों।

+ + +

नैंकु फटक्यो लात, सबद भयो अघात।
गिर्यो भहरात सकटा संहार्यो ॥ (दशम स्कंध, पद ६२)

दर्शन यशोदाजी को कराया । इससे यशोदाजी को एक क्षण के लिए मूर्छा आ गयी ।[1]

तृणावर्त वध

तृणावर्त विपरीत महा खल सो नृपराय पठायो ।
चक्रवात ह्वै सकल घोष में रज धुंधर ह्वै छायो ॥४२८॥

राजा कंस ने तृणावर्त नामक बड़े दुष्ट राक्षस को भेजा । उसने बवंडर बन कर सारे गांव में धूल का बड़ा धुंधड़ छा दिया ।

चल्यौ उठाय गुपाल व्योम में तब हरि कंठ गहायो ।
पटक्यो सिला सरिक के आगे छिन निरजीव करायो ॥४२६॥

फिर वह कृष्ण को उठाकर आकाश में उड़ चला । (उसका विचार था कि यह ऊपर से कृष्ण को फेंक देगा । वे चट्टान पर गिर कर मर जाएंगे ।) कृष्ण ने ऊपर ही उसका गला दबा दिया और उसे गोशाला के आगे वाली पत्थर की बड़ी चट्टान पर पटक दिया । *वह क्षण भर में ही निर्जीव हो गया ।*[2]

नामकरण

गर्गराज मुनिराज महाऋषि सो वसुदेव पठायो ।
नामकरन ब्रजराज महर घर अति आनंदित आयो ॥४३०॥

श्री वसुदेवजी ने अपने पुरोहित श्री गर्ग ऋषि को श्री नन्दजी के घर बच्चे के नामकरण के लिए भेजा । उनके आने पर वहां बड़ा आनन्द हुआ ।

विशेष—भागवत में यह विवरण इसी प्रकार मिलता है । वसुदेवजी ने ही वहां पर गर्ग को भेजा था । (*भागवत दशमस्कंध आठवां अध्याय श्लोक १*) सूरसागर

---

१. *यह प्रसंग 'भागवत' का है । दशम स्कंध सातवें अध्याय पद ३४-३७ में इस* लीला का विवरण है । सूरसागर में भी इसका संकेत इन पंक्तियों में मिलता है—

गोद लिए हरि को नन्दरानी अस्तन पान करावति है ।
(दशम स्कंध पद ७३)

बदन उघारि दिखायौ त्रिभुवन बन घन नदी सुमेर ।
\+ \+ \+
यह देखत जननी मन व्याकुल बालक मुख कहा आई ।
(दशम स्कंध पद२५३)

२. 'सूरसागर' में तृणावर्त-वध इसी प्रकार है । कुछ शब्दावली भी मिलती है—

अति विपरीत तिनावर्त आयौ ।
बातचक्र मिस ब्रज ऊपर परि नन्द पौरि के भीतर आयो ॥
... ...
अन्धाधुन्ध भयौ सब गोकुल, सेत उड़्यौ, आकाश चढ़ायौ ।
मार्‌यौ असुर सिला सौं पटक्यौ, आप चढ़्यौ ता ऊपर आयौ ॥
(सूरसागर, दशमस्कंध ७७)

में वसुदेव जी का उल्लेख नहीं है। गर्ग जी स्वयं कहते हैं—

(नंदजू) आदि ज्योतिषी तुम्हरे घर को पुत्र-जन्म सुनि आयौ।

(दशम स्कंध, पद ८६)

भागवत-साक्ष्य से यह सिद्ध है कि गर्गजी वसुदेव के पुरोहित थे अतः 'सूरसागर' की अपेक्षा 'सारावली' का कथन ही अधिक उपयुक्त है।

नामकरन कीन्हों दोहुन को नारायन सम भाषे।

तुम्हरे दुःख मिटावन कारन पूरन को अभिलाषे ॥४३१॥

उन्होंने दोनों का नामकरण किया और दोनों को नारायण के समान बताया। गर्गजी ने कहा कि ये तो तुम्हारे दुख मिटाने के लिए और मनोरथ पूर्ण करने की इच्छा से आये हैं।

रामकृष्ण अवतार मनोहर भक्तन के हित काज॥

बहुतहि काज करेंगे तुम्हरे सुनहु महर ब्रजराज ॥४३२॥

गर्गजी ने कहा कि बलराम और कृष्ण दोनों ही भगवान् के अवतार हैं। ये भक्तों का कार्य करेंगे। आपका भी बहुत-सा काम ये करेंगे।

कागासुर-वध

एक दिना पलना हरि पौढ़े नन्द महर के द्वार।

नन्दरानी गृह कारज लागी नाहिन लई संभारि ॥४३३॥

एक दिन पालने में नन्दजी के द्वार पर कृष्ण लेटे हुए थे। नन्दरानी अपने गृहकार्य में संलग्न थीं, वे कृष्ण को ठीक से सम्भाल न सकीं।

कंस नृपति एक असुर पठायो धरेउ काग सरूप।

सनमुख आय नयन दोउ जोरे देख्यो स्याम को रूप ॥४३४॥

इसी समय राजा कंस ने एक असुर को कौए के रूप में भेजा। उसने आकर कृष्णजी की आंखों से आँखें मिलाईं तथा कृष्ण के रूप को जी भर कर देखा।

कंठ चाप बहुवार फिरायो पटक्यो नृप के पास।

एक याम में वचन कहेउ यह प्रगट भयो तुव नास ॥४३५॥

कृष्णजी ने उसकी गर्दन को दबा कर कई बार घुमाया और राजा कंस के द्वार पर ही उसे पकट दिया। एक पहर बाद वह बोला कि हे कंस अब तो तेरा नाश होने वाला है।

यह कहिकें तन त्याग कियो उन कंस नृपति के आगे।

भयो उदास सुहात न कछु ये छिन सोवत छिन जागे ॥४३६॥

यह कह कर वह राजा कंस के सामने ही मर गया। कंस बड़ा उदास हुआ। अब उसे कुछ नहीं अच्छा लगता। वह क्षण भर के लिए सोता और क्षण भर के लिए जगता था।

विशेष—कागासुर की कथा भागवत में नहीं है। यह सूरदास की अपनी उद्भावना है। 'सूरसागर' में 'कागासुर' वध की कथा इस प्रकार है—,

काग रूप इक दनुज धर्यो।
नृप आयसु लै धरि माथे पर हरषवंत उर गरब भर्यो।
पलना पर पौढ़े हरि देखे तुरत आइ नैनहि भर्यो।
कंठ चापि बहु बार फिरायो, गहि पटक्यो नृप पास कर्यो।
तुरत कंस पूछन तिहि लाग्यो, क्यों आयो नहि काज सर्यो।
बोलै जाय बोलि तब आयो, सुनहु कंस तब आइ सर्यो॥¹

(दशमस्कंध पद ५६)

स्याम-खिलौना

एक दिना ब्रजराज महर जू और यशोदा रानी।
घुटुवन चलत स्याम को देखत बोलत अमृत बानी॥४३७॥

एक दिन नन्द और यशोदा कृष्ण को घुटनों चलते और अमृत वचन बोलते बड़े आनन्द मे देख रहे थे।

इतते नन्द महर बोलत हैं उततें जननि बुलावत।
सुन्दर स्याम खिलौना कीन्हों हँसि हँसि मोद बढ़ावत॥४३८॥

उन दोनों में खेल की भावना आ गयी। दोनों कृष्ण को बीच मे करके अपनी-अपनी ओर बुलाने लगे। इस प्रकार कृष्ण मा-बाप के खिलौना बन गये और हँस-हँस कर उनका आमोद बढ़ाने लगे।

---

१. कागासुर-वध कोई विशेष आकर्षक और प्रसिद्ध प्रकरण नहीं है। फिर भी दोनो ग्रन्थों का रचनाकार एक ही कवि है अतः दोनों ग्रन्थों में कथा एक है और शब्दावली भी मिलती है। कोई कवि इस अप्रसिद्ध प्रसग का क्योंकर अपहरण करता? क्या कहें डॉ० टंडन की कल्पना को जो इस प्रकरण में भी 'भावापहरण' और 'शब्दापहरण' का आक्षेप लगाते हैं।

२. यह प्रसंग भी सूरदास जी की मौलिक उद्भावना है। भागवत मे इसका उल्लेख नही है। वात्सल्य-रस के पारखी सूर ही ऐसी उद्भावना कर सकते थे। 'सूरसागर' मे यह प्रसंग ठीक इसी प्रकार है—

घुटुरिन चलत स्याम मनि-आँगन, मात-पिता दोउ देखतरी।

... ...

इततें नन्द बुलाइ लेत हैं, उततें जननि बुलावत री।
दंपति होड़ करत आपुस में स्याम खिलौना कीन्हों री॥

(दशमस्कंध, पूर्वार्ध, पद ६८)

किन्तु इन पक्तियों को देखकर भी डॉ० टंडन ने इनके लिए 'अपहरण' का आक्षेप नहीं लगाया।

चन्द्र-हठ

शशि को देख भार हरि ठानी कर मनुहार मनावत।
मधु मेवा पकवान मिठाई विविध खिलौना लावत ॥४३९॥

चन्द्रमा को देखकर एक दिन कृष्ण ने हठ ठानी कि मैं तो चन्द-खिलौना लुंगा। यशोदाजी ने अनेक प्रकार से मनुहार करके मनाना चाहा। उन्होंने मधु-मेवा, पकवान और अनेक प्रकार के खिलौने देकर उन्हें वहलाना चाहा, पर वे न माने।

कमल नैन को महर यशोदा जल प्रतिविव दिखावत।
फेरत हाथ चन्द पकरने को नाहि न होत लखावत ॥४४०॥

तव यशोदाजी ने किसी वर्तन में पानी भर कर चन्द्रमा का प्रतिविंब दिखाया। बाल कृष्ण ने पानी में हाथ डाल कर चन्दा को पकड़ना चाहा, किन्तु वह हाथ में न आया।

बूढ़े बाबा दरशन आये लाय चन्द्रमणि दीन्हीं।
ताको देख और सब छांड़ी भोजन की सुधि कीन्हीं ॥४४१॥

इतने में बूढ़े बाबा के रूप में शंकर जी दर्शन के लिए आ गये। उन्होंने कृष्ण को मचलता देख कर अपने मस्तक से चन्द्र उतार कर दे दिया। उसे देखकर बाल कृष्ण को सन्तोष हुआ। उन्होंने हठ छोड़ दिया और खाने में चित्त लगा दिया।

विशेष—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा ने सारावली के 'बूढ़े बाबा 'प्रसंग' पर आक्षेप किया है कि यह 'सूर' कृत नहीं है क्योंकि 'सूरसागर' में यह उपलब्ध नहीं होता। यह प्रसंग भागवत में भी नहीं है। किन्तु यह प्रसंग 'सूरसागर' में है जैसा कि सूर-निर्णय-कार और श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी मानते हैं। चतुर्वेदीजी ने अपने सम्पादित 'सूरसागर' में पद दिया है—

कहां गये जोगी नंद भवन तें ब्रज में फिरि फिरि हारे।
× × ×
बूढ़ो बाबू नाम हमारो सूर स्याम मोहि जाने ॥

तथा—

बूढ़ो बाबा नाम हमारो, सूर स्याम तेरो जानें
(सूरनिर्णय, पृ० ११६)

औट्यो दूव कपूर मिलायो प्यावत कनक कटोरे।
पीवत देखि रोहिनी जसुमति डारत है तृन तोरे ॥४४२॥

खूव पके हुए दूव में कपूर मिलाकर, सोने के कटोरे में कृष्ण को यशोदाजी पिलाती हैं। कृष्ण को कटोरे में पीता हुआ देख कर रोहिणी माता तृण तोड़ कर डालने लगती है।

यह प्रसंग भी मौलिक है और 'सूरसागर' में भी मिलता है—

कीजै पान लला रे यह लै आई दूध जशोदा मैया।
कनक कटोरा भरि लीजै, यह पय पीजे, अति सुखद कन्हैया।
... ...
'सूरज' स्याम राम पय पीवत दोऊ जननी लेति वलैया ॥
(दशमस्कंध, पद २२९)

माखन-चोरी

कछु दिन भये संग दोउ बालक बल मोहन दोउ भाई।
चोरी करत हरत दधि माखन लीला कहिय न जाई ॥४४३॥

कुछ बड़े होने पर बलराम और कृष्ण दोनों साथ-साथ चोरी करने लगे और दही और मक्खन चुराने लगे। इस लीला का वर्णन नहीं किया जा सकता।

सब ब्रजनारी उरहन आई ब्रजरानी के आगे।
मैं नाहिन दधि खायो याको शिशु ह्वै रोवन लागे ॥४४४॥

सभी ब्रज-नारियाँ उलाहना लेकर यशोदा जी के पास आईं। इस पर कृष्ण ने कहा कि मैंने इनका दही-मक्खन नहीं खाया, ऐसा कहकर बच्चे बनकर रोने लगे।

विशेष—'सूरसागर' की यह बड़ी विस्तृत और सुन्दर लीला है। 'सारावली' लीला ग्रन्थ नहीं है अतः इसके विस्तार की आवश्यकता नहीं थी।

माटी-भक्षण-लीला

एक दिना ब्रजपति की पौरी खेलत हरि ब्रजबाल।
माटी खाय वदन दिखरायो चंचल नयन विसाल ॥४४५॥
सकल ब्रह्मांड उदर में देख्यो ब्रजमंडल पाताल।
नन्द महर जसुदा रोहिनि पुनि धेनु सकल ब्रजबाल ॥४४६॥
हृदय ज्ञान उपज्यो तब जसुमति पूरन ब्रह्म विसेखे।
हरि उपजाई माया तब सब बहुरि पुत्र करि लेखे ॥४४७॥

एक दिन नन्द की पौड़ियों पर कृष्ण जी खेल रहे थे। उन्होंने मिट्टी खाली। माँ ने जब मुँह खोलने को कहा तो उन्होंने ज्यों ही मुँह खोला मुँह के भीतर सारा ब्रह्मांड दिखाई पड़ा। यशोदाजी ने देखा कि उसमें ब्रज-मंडल है, पाताल है, नन्द भी हैं और यशोदा, रोहिणी मैया तथा सारे ग्वाल-बाल दिखाई पड़ रहे हैं। यह देखकर यशोदाजी को ज्ञान हुआ। उन्होंने समझा कि कृष्ण बालक ही नहीं हैं पूर्ण परमेश्वर हैं। किन्तु कृष्णजी ने तुरन्त अपनी माया उत्पन्न की और उनका ज्ञान भूल गया। उन्हें फिर कृष्णजी अपने पुत्र ही रह गये।

विशेष—माटी-भक्षण-प्रसंग भागवत का प्रसंग है। दशम स्कंध के आठवें अध्याय में ३५-४५ श्लोकों में जो कथा है उसी का सारांश 'सारावली' तथा 'सूरसागर' के पद संख्या २५३-५६ में है। इसमें कोई मौलिकता नहीं है। बाल-कृष्ण के ईश्वरत्व को प्रदर्शन करने के हेतु यह लीला गायी गयी है।

ऊखल-बंधन तथा यमलार्जुन-उद्धार

एक दिना दधि मथन करत ही महर घोष की रानी।
हरि माँग्यो माखन नहिं दीन्हों तब मन में रिस ठानी ॥४४८॥
फोरे भांड दही आंगन में ढेल परेउ अति मारी।
डोरी पकर देति नहिं मोहन अति आतुर महतारी ॥४४९॥

एक दिन यशोदा दही मथ रही थीं। कृष्ण ने उनसे मक्खन मांगा। उन्होंने नहीं दिया तो कृष्ण को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने दही का वर्तन ही फोड़ डाला। सारा दही आंगन में फैल गया। यशोदाजी कृष्ण को पकड़ने के लिए दौड़ीं किन्तु कृष्ण पकड़ाई में उनके हाथ नहीं आए।

जानी बिकल बहुत जननी को हरि पकराई दीन्हीं।
बहुत दाम लै बांधन लागी आंगुर द्वै भई हीनी ॥४५०॥

पर जब कृष्ण न जाना कि यशोदा माता थककर व्याकुल हो गयी हैं तब उन्होंने अपने को पकड़वा लिया। फिर वे रस्सी से कृष्ण को बांधने लगीं। कम होने पर वे और रस्सी लेकर उसमें जोड़ने लगीं पर हर बार रस्सी दो अंगुल छोटी ही रहती।

व्याकुल भई बँधत नहिं मोहन दया स्याम को आई।
ऊखल दाम बँधे हरि जाने गोपी देखन धाई ॥४५१॥

इस प्रकार बांधने में भी वे थक कर व्याकुल हो गयीं, कृष्ण किसी प्रकार बँध नहीं पाते थे। अन्त में कृष्णजी को दया आयी और वे ऊखल में रस्सी से बँध गये। सुन कर गोपियाँ कृष्ण को देखने आईं।

तौलों बँधे देव दामोदर जौलों यह कृत कीन्हीं।
देख दुखित द्वै सुत कुबेर को कृपा दृष्टि करि दीन्हीं ॥४५२॥

जब तक यह सब होता रहा कृष्णजी बँधे रहे। उन्होंने देखा कि कुबेर के दो पुत्र (नलकूवर और मणिग्रीव) दुखी (वृक्ष रूप में) खड़े हैं। अतः कृष्णजी ने उन पर कृपा की।

नारद मुनि को साप पाय के स्याम दई गति ताहि।
निकसे बीच अटक ऊखल में स्याम रहे अटकाय ॥४५३॥

नारदमुनि के शाप के कारण वे वृक्ष बने हुए थे। कृष्णजी ने उनको वृक्ष दशा से मुक्ति दी। कृष्ण जी उन दोनों वृक्षों के बीच से नीचे से निकले। ऊखल उनमें अटक गया।

चरन परसि ते पुलकि भये भुव परे वृक्ष भहराय।
भयो शब्द आघात स्वर्ग लौं सुनि आये व्रज राय ॥४५४॥

भगवान् के चरण-स्पर्श से वृक्ष पुलकित हुए और भहरा कर गिर पड़े। वृक्षों के गिरने से भयंकर शब्द हुआ। स्वर्ग तक आवाज को सुन कर नन्द जी दौड़े आये।

अस्तुति करि वे गये स्वर्ग को अभय हाथ करि दीन्हों।
बंधन छोरि नन्द बालक को लै उछंग करि लीन्हों ॥४५५॥

कुबेर के दोनों पुत्रों ने कृष्णजी की स्तुति की और वे स्वर्ग को चले गये। भगवान् ने उन्हें हाथ उठा कर अभय किया। नन्दजी ने बन्धन को छोड़कर कृष्ण जी को अपनी गोदी में ले लिया।

जसुमति जू सों लरे महर जू तुम क्यों बांध्यो दाम।
गर्ग कहेउ मोहो नारायण आये हैं बल श्याम ॥४५६॥

नन्दजी यशोदा से लड़ पड़े कि तुमने कृष्ण को रस्सी से क्यों बाँधा। गर्गजी ने मुझ से पहले ही कहा था कि ये तो नारायण हैं। बलराम और कृष्ण बनकर इन्होंने अवतार लिया है।

जसुमति माय धाय उर लीन्हों राई लोन उतारो।
सेत बलाय रोहिनी नीके सुन्दर रूप निहारो ॥४५७॥

यशोदाजी दौड़ कर आईं, उन्होंने कृष्ण को गले से लगा लिया और 'राई-नोन' का टोटका किया। रोहिणी जी उधर से आईं। उन्होंने कृष्ण की बलैयां लीं और उनके सुन्दर रूप को खूब देखा।

विशेष—यह लीला भी भागवतीय है। 'सूरसागर' में भी सूरदास ने इसे इसी प्रकार प्रस्तुत किया है। भागवत के दशमस्कंध के नवें और दसवें अध्याय में तथा 'सूरसागर' के पद संख्या ३४१-६१ तक में यह कथा गायी गयी है। इस लीला का उद्देश्य भी भगवान् के ईश्वरत्व का निरूपण है।

'सूरसागर' में 'सारावली' की अपेक्षा वर्णन अच्छा है। 'सूरसागर' लीला-ग्रन्थ होने से वहाँ वर्णन सरस है किन्तु सारावली में भागवतानुसार संक्षिप्त वर्णन है। पर इस अन्तर को देखकर डॉ० टंडन का सारावलीकार को 'सर्वथा हृदयहीन' कहना बड़ा अनुचित है। 'सारावली' में कवि का दृष्टिकोण ईश्वरत्व निरूपण मात्र है लीला-गान नहीं।

गोकुल से वृन्दावन जाना

कबहुँक कर करताल बजावत नाना भाँति नचावत।
कबहुँक दधि माखन के कारण आछी रार मचावत ॥४५८॥

कृष्णजी कभी ताली बजा कर नाना प्रकार से नाचते हैं। कभी-कभी दही और मक्खन के लिए खासी लड़ाई करते हैं।

बड़े गोप उपनन्द बुलाये नन्द महर के धाम।
कीन्हें मन्त्र गोप सब मिलिके जेहि विधि पूरनकाम ॥४५९॥

एक दिन नन्दजी के घर पर सभी बड़े गोपों ने उपनंदजी को बुलाया क्योंकि वे उनमें सबसे बड़े थे। सबने मिल कर आपस में परामर्श किया जिससे उन सबकी इच्छाएँ पूरी हों।

बहु उत्पात रहत हैं गोकुल निज प्रति कंस पठायो।
अन्त जाय कहुं बास करेंगे बालक देव बचायो ॥४६०॥

सबने कहा कि यहा पर तो नित्य कंस के भेजे हुए राक्षस तरह-तरह से उत्पात करते हैं। अतः हम लोग कहीं अन्यत्र जाकर बसेंगे। अभी तक तो बालक देवताओं की कृपा से बचा है।

अब वृन्दावन जाय रहेंगे जहं वीरध तृन पानी।
चले गोप अति ओप विराजें बोलत हो हो बानी ॥४६१॥

सबने निश्चय किया कि हम लोग वृन्दावन में चलें। वहाँ पर पशुओं के लिए पर्याप्त घास है और पानी है। सभी गोप चल पड़े। चलते हुए प्रसन्नता के कारण बड़ी शोभा थी, सब हो-हो की आनन्द-ध्वनि कर रहे थे।

यमुना उत्तर आय वृन्दावन जहाँ सुखद द्रुम राजें।
गोवर्धन वृन्दावन यमुना सघन कुंज अति छाजें ॥४६२॥

यमुना पार करके अन्त में वृन्दावन आये, जहाँ बड़े सुखदायी वृक्ष थे। यहां गोवर्धन पहाड़ है, वृन्दावन है और यमुना है। बड़े घन कुंज सुशोभित हैं।

विशेष—यह प्रसंग भी 'भागवत' का ही है। दशमस्कंध के ग्यारहवें अध्याय में ठीक इसी रूप में वृन्दावन-गमन प्रसंग है। 'सूरसागर' में भी संक्षिप्त वर्णन पद संख्या ४०२ में है।

वत्सासुर एवं बकासुर-बध

बसे जाय आनन्द उमंग सों गइयां सुखद चरावें।
आयो दुष्ट बकासुर जान्यो हरि चित बात धरावें ॥४६३॥

सब लोग वृन्दावन में आनन्द से रहते थे और सुखपूर्वक गौवों को चराया करते थे। इसी समय एक राक्षस बछड़े के रूप में (बछासुर) आ गया। कृष्ण ने उसे समझ लिया किन्तु उन्होंने यह बात अपने मन में ही रखी।

करि विचार छिन में हरि मारो सो बछरा वन आज।
ता पाछे जो बकासुर आयो घात कियो ब्रजराज ॥४६४

फिर विचार करके कृष्ण ने क्षण भर में ही उस बछड़े को मार दिया। (भागवत दशमस्कंध में ग्यारहवें अध्याय में है कि कृष्ण ने उसकी पिछली दो टांगों को पकड़ कर आकाश में कई बार घुमाया और फिर एक कैथ के पेड़ पर पटक कर मार डाला)। इसके उपरान्त बकासुर आया। उसे भी कृष्ण ने मार डाला।

ब्रह्मा-वत्स-हरण लीला

बच्छ चरावत वेणु बजावत गोप सखन के संग।
सो देखत चतुरानन आये हरि लीला रस रंग ॥४६५॥

कृष्णजी, गौओं और बछड़ों को चराते हुए बंशी बजाते हुए ग्वाल-बालों के साथ घूम रहे थे। उन्हें देख कर ब्रह्माजी हरि-लीला का आनन्द लेने आये।

छाकें खात खवावत ग्वालन सुन्दर यमुना तीर।
ग्वाल मंडली मध्य विराजत हरि हलधर दोउ वीर ॥४६६॥

उन्होंने देखा सभी ग्वाल-बालों के साथ यमुना के तट पर कृष्णजी छाक (दोपहर का खाना जो घर से आता है) खा रहे हैं और अपने साथियों को खिला रहे है। इस प्रकार बलराम और ग्वाल-बालों के बीच में बैठे श्रीकृष्ण शोभा पा रहे हैं।

गाय गोप अरु बच्छ सबै विधि छिनही में हरि लीन्हीं।
सब को रूप भये हरि आपुन नेक विलम्ब न कीन्हीं ॥४६७॥

ब्रह्माजी ने सारे गौओं, गोपों और बछड़ों को क्षण भर में ही हर लिया। भगवान् ब्रह्मा की करतूत समझ करके स्वयं ही गाय, गोप और बछड़ों के रूप में हो गये। ऐसा करते उन्हें देर न लगी।

जबहीं गर्व गयो चतुरानन अद्भुत चरतहि देख।
परो धाय हरि पांय जोरि कर नाथ कृपा कर लेख ॥४६८॥

प्रभु का यह अद्भुत चरित देख कर ब्रह्मा का गर्व दूर हो गया। वे दौड़ कर भगवान् के चरणों पर गिर पड़े। हाथ जोड़ कर बोले कि हे नाथ मुझपर कृपा कीजिए।

अस्तुति करी वेद विधि करके चतुरानन बहु भाँति।
अद्भुत चरित देख माधो को हँसत सकल किलकाति ॥४६९॥

ब्रह्माजी ने वेद-विधि से स्तुति की। कृष्ण के अद्भुत चरित को देखकर सभी किलक कर हँसने लगे।

गये धाम अपने विधि सुखसों हरि आज्ञा सुख पाय।
वर्ष दिवस लौं सब रूप हरि ब्रजबासिन सुखदाय ॥४७०॥

उसके बाद कृष्ण की आज्ञा पाकर ब्रह्मा अपने लोक को सुख से गये। इस बीच एक वर्ष बीत गया। (भागवत में उल्लेख है कि ब्रह्मा की वत्सहरण लीला में एक वर्ष लगा किन्तु कृष्ण की माया के कारण ग्वाल-बालों को यह एक पल के समान ही लगा)—(दशमस्कंध अध्याय १४ श्लोक ४३) फिर आकर कृष्ण ने सबको सुख दिया।

विशेष—ब्रह्मा-वत्स-हरण लीला भी भागवत की लीला है। 'सूरसागर' तथा 'सारावली' में संक्षेप में उसी को प्रस्तुत किया गया है। उद्देश्य मात्र कृष्ण का ईश्वरत्व निरूपण है।

धेनु चरावत चले श्याम घन ग्वाल मंडली जोर।
हलधर संग छाक भरि कांवर करत कुलाहल सोर ॥४७१॥

गौओं को चराते हुए बड़ी ग्वाल-मंडली के साथ कृष्ण जी चले। बलराम के साथ छाक कांवरि में भरी थी, सभी बच्चे कोलाहल कर रहे थे।

क्रीड़ा करत आप वृन्दावन धेनु समूह नचावत।
गोवर्धन पर वेणु बजावत फूलन भेष सँवारत ॥४७२॥

वे वृन्दावन में खेल कर रहे थे। गौओं को भी नचा रहे थे। इस प्रकार गोवर्धन पर बांसुरी बजाते घूम रहे थे। उनका शृंगार फूलों से किया गया था।

कालीनाग लीला

कालीनाग नाथ हरि लाये सुरभी ग्वाल जिवाये।
कनक कमल के बोझ सीस धरि मथुरा कंस पठाये ॥४७३॥

भगवान ने काली नाग को नाथा, जो गैयां और ग्वाल विष-युक्त जल पीकर मूर्छित थे उन्हें जिला दिया। फिर काली के सिर पर ही कमल पुष्प लादकर मथुरा भेज दिया।

विशेष—कालीनाग-लीला 'भागवत' और 'सूरसागर' दोनों में बड़े विस्तार से है। यहाँ अति सूक्ष्म रूप से यह कथा कही गयी है। किन्तु एक बात विशेष रूप से स्मरणीय है। 'सूरसागर' में सूरदासजी ने कथा में एक नवीनता उत्पन्न की है। वह है कंस के द्वारा कालीदह में से कमल-पुष्पों का मँगाना। 'सूरसागर' में नाथने के बाद कृष्ण काली के द्वारा कमल-पुष्पों को लाद कर कंस के पास मथुरा भेजते हैं जबकि भागवत में भगवान् काली को समुद्र में जा कर रहने का आदेश देते हैं। 'सूरसारावली' में सारी कथा एक ही पद में है फिर भी इसमें 'सूरसागर' की भाँति कालीनाग पुष्प मथुरा पहुँचाता है।

दावानल-पान-लीला

दावानल को पान कियो मुख गोपन रक्षा कीनी।
वर्षा ऋतु देख वृन्दावन क्रीड़ा की सुधि लीनी ॥४७४॥

भगवान ने दावानल पान किया और गोपों की रक्षा की। वर्षा ऋतु को देखकर उन्होंने खेल खेलने की सुधि ली।

वेणु बजाय विलास कियो वन धौरी धेनु बुलावत।
बरहापीड़ दाम गुंजामनि अद्भुत भेष बनावत ॥४७५॥

बाँसुरी बजाकर उन्होंने वन-विलास किया। गौओं को बुलाते थे और मोर-पंख, गुंजामणि की माला पहिन कर अद्भुत भेष बनाते थे।

चीरहरण-लीला

प्रातकाल अस्नान करन को यमुना गोपि सिधारी।
ले के चीर कदम्ब चढ़े हरि विनवत हैं ब्रजनारी ॥४७६॥
दै बरदान संग खेलन को सरद रैनि जब आई।
रचि के रास सबन सुख दीन्हों रजनी अधिक कराई ॥४७७॥

प्रातःकाल जब गोपियाँ यमुना-स्नान के लिए गयीं तब कृष्ण उनके चीर लेकर कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये। ब्रजनारियों ने चीर के लिए अनेक विनतियाँ कीं। इस पर उन्होंने उन्हें बरदान दिया कि शरद पूर्णिमा की रात्रि में उनसे मिलेंगे। इसलिए जब शरद पूर्णिमा आयी तब उन्होंने रासलीला की और सबको सुख दिया। वह रात एक कल्प की हो गयी और गोपियों को पूर्ण सुख मिला।

विशेष—यहाँ भी लीला का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म है। वास्तव में चीर-हरण-लीला गोपियों में गूढ़ प्रेम का रहस्योद्घाटन करने के लिए है। 'भागवत' और 'सूरसागर' में विस्तार से कहा गया है कि गोपियाँ कृष्ण को चाहती थीं और उन्हें पति रूप में पाने के लिए नित्य यमुना-स्नान करके तप करती थीं। ऐसा करते हुए भी वे कृष्ण से अपने भाव छिपाती थीं। अन्तर्यामी कृष्ण ने उनके भाव को जानकर चीरहरण-लीला

के द्वारा उनके रहस्य को प्रकट करवा दिया। वहीं पर गोपियों ने मिलन का वरदान माँगा तब भगवान ने उन्हें 'शरद पूर्णिमा' की तिथि बताई। इस तिथि को कृष्ण की बाँसुरी को सुनकर सारी गोपियाँ यमुना-तट पर पहुँची, वृहत् रास लीला हुई और गोपियों को पूर्ण शान्ति मिली।

गोवर्धन-लीला

गोवर्धन धरि सब ब्रज राख्यो मघवा मान मिटायो।
नारायन प्रगटे सब जाने जोई गर्ग मुनि गायो ॥४७८॥

कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाकर सारे ब्रज की रक्षा की और इन्द्र का अभिमान मिटा दिया। यह लीला देखकर सबको निश्चय हो गया कि भगवान प्रकट हुए हैं जैसा कि गर्ग मुनि ने कहा था।

विशेष—'सारावली' का दृष्टिकोण केवल कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन है, कथा कहना नहीं। इसलिए बड़ी कथाओं को संक्षेप में कहकर उनके ईश्वरत्व का उद्घाटन कर दिया गया है।

धेनुक, प्रलम्ब, शलचूड़ और अघासुर-वध

धेनुक और प्रलम्ब संहारे शलचूड़ वध कीन्हों।
करिके चरण परस प्रभु बन में व्याल अभय पद दीन्हों ॥४७९॥

धेनुक, प्रलम्ब और शलचूड का भगवान ने वध कर दिया और अपने चरण स्पर्श से अघासुर को मोक्ष दिया।

नाना विधि क्रीड़ा हरि कीन्हीं ब्रजवासिन सुख पायो।
सबहिन यह माँग्यो विनती कर हरि बैकुंठ दिखायो ॥४८०॥

नाना प्रकार से कृष्ण ने अपनी लीलाएँ दिखाईं, ब्रजवासियों को सब प्रकार से सुख दिया। सबने भगवान से मुक्ति माँगी। उन्होंने उन्हें बैकुण्ठ का मार्ग दिखा दिया।

नंद की वरुण से रक्षा

अभयदान दीन्हों मघवा को नंदराय को राख्यो।
वरुण लोक में गये कृपा करि विविध वचन उन भाख्यो ॥४८१॥

इन्द्र को बाद में अभयदान दिया। नन्दजी को वरुण अपने लोक में ले गया। कृष्ण वहाँ गये और उन्होंने नन्द की रक्षा की और उससे विविध वचन कहे। (वरुण ने नन्द का अपहरण भगवान के दर्शन के निमित्त ही किया था, अतः जब कृष्ण वहाँ गये तो उसका मनोरथ पूरा हुआ।)

यज्ञ-पत्नी-लीला

यज्ञ करत ब्राह्मण मथुरा के ओदन स्याम मँगायो।
उन नहिं दियो नारि पै पठये तब उन सुनि सुख पायो ॥४८२॥

षटरस थार संवार साज सों सब ही हरि पै आई।
कियो मनोरथ पूरण उनको निर्भय करि जु पठाई ॥४८३॥

मथुरा के कुछ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे। कृष्ण ने ग्वाल-बालों को भेज कर उनसे खाने के लिए पके हुए चावल मँगाए। ब्राह्मणों ने चावल देने से इन्कार किया किन्तु उनकी पत्नियों ने जाकर कृष्ण को थाल भरकर भोजन दिया। उनके मनोरथ पूरे हुए और भगवान ने उन्हें सब प्रकार से निर्भय करके वापस भेजा। वे लौटीं तो उनके पति यह सब सुनकर सुखी हुए।

(यह लीला भागवत के दशमस्कंध के तेईसवें अध्याय में विस्तार से है।)

व्योमासुर, केशी, अरिष्टासुर-वध

व्योमासुर केसी सब मारे अरु अरिष्ट वध कीनो।
क्रीड़ा बहुत करी गोकुल में भगतन को सुख दीनो ॥४८४॥

भगवान ने व्योमासुर, केशी और अरिष्टासुर का वध कर डाला। उन्होंने ब्रज में अनेक क्रीड़ाएँ कीं और भक्तों को सुख दिया।

विशेष—ऊपर एक-एक पंक्ति में बहुत-सी लीलाएँ गायी गयी हैं। 'सारावली' लीला-ग्रन्थ नहीं है इसीलिए गौण कथाओं को बहुत संक्षेप में कह कर प्रभु के ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया गया है।

नारद का कंस कोउत्तेजित करना

नारद आय कहेउ नृप सों यह कौन नींद तू सोए।
तेरो शत्रु प्रकट गोकुल में गुप्त न जानत कोए ॥४८५॥
यह सब देव प्रकट भये ब्रज में जहं जहं ठौरहि ठौर।
उग्रसेन वसुदेव देवकी यादव जे सब और ॥४८६॥

नारद कंस के पास आये और उससे कहा कि तू किस नींद में सोता है। तेरा शत्रु गोकुल में प्रकट है। वह गुप्त रूप में है, कोई जानता नहीं। ब्रज में अनेक देवता जगह-जगह प्रकट हुए हैं। उग्रसेन, वसुदेव, देवकी तथा अन्य यादव लोग उन्हीं के रूप हैं।

नन्द गोप वृषभान जसोदा सबहि गोपकुल जानो।
करो उपाय बचो जो चाहो मेरो वचन प्रमानो ॥४८७॥

नन्द, गोप, वृषभानु, यशोदा आदि सबको इन्हीं में समझो। यदि तू बचना चाहता है, तो उपाय कर। मेरी बात प्रामाणिक है।

यह सुनि कंस सबन को बंधा दीनो है त्यहि काल।
श्री वसुदेव देवकी निज पितु बन्धन दियो विसाल ॥४८८॥

यह सुनकर कंस ने सबको बाँधने की सोची और वसुदेव, देवकी तथा अपने पिता उग्रसेन को कठोर बंधन में डाल दिया।

फिरि नारद गोकुल हो आये हरि चरणन सिर नाये।
अस्तुति करी बहुत नाना विधि मधुरे बीन बजाये ॥४८६॥

ऐसा करके नारद गोकुल आये और भगवान के चरणों में उन्होंने सिर नवाया। उन्होंने भगवान की स्तुति की और वीणावादन किया।

हरि कछु इन्ह उतर नहिं दीनो फिर गये अपने धाम।
बल मोहन सब सखा वृन्द सँ क्रीडत गोकुल ग्राम ॥४६०॥

भगवान ने उन्हें कुछ नहीं कहा और वे अपने धाम को सिधारे। कृष्ण जी बलराम तथा सखाओं के साथ गोकुल ग्राम में खेलते रहे।

विशेष—नारद का कंस को इस प्रकार उत्तेजित करना भागवत में भी वर्णित है। नारद चाहते हैं कि पाप का घड़ा जल्दी भरे और भगवान राक्षस का नाश शीघ्र करें।

मथुरा-गमन

बल अक्रूर कंस यह भाख्यो सुन सुफलक सुत बात।
राम कृष्ण को लाओ मधुपुर बिलम करो जनि जात ॥४६१॥

कंस ने अक्रूर को बुलाया और कहा कि हे सुफलक के पुत्र अक्रूर ! तुम जाकर बलराम और कृष्ण को मथुरा ले आओ, इसमें देर न हो।

तब रथ बैठ चले सुफलक सुत संध्या गोकुल आये।
पैंडे में हरि चरण धूलि लै अपने अंग लगाये ॥४६२॥

तब रथ पर बैठकर अक्रूर चले। वे सन्ध्या समय गोकुल पहुँचे। रास्ते में उन्होंने धूलि में कृष्ण के चरणों के चिह्न देखे। अक्रूर भक्त थे अतः उन्होंने कृष्ण की चरण-धूलि को लेकर अपने अंक में लगाया।

मिले नन्द बलदेव रोहिनी और जसोदा रानी।
पूजा करि पधराय सदन में भोजन की विधि ठानी ॥४६३॥

वहाँ पर अक्रूर जी, नन्द, बलराम, यशोदा और रोहिणी से मिले। नन्दजी ने अक्रूर का स्वागत किया, उन्हें घर में स्थान दिया और भोजन का प्रबन्ध किया।

भोजन करि अक्रूर जो बैठे सब वृतान्त सुनाये।
धनुष यज्ञ कीन्हों नृप जू ने सबको बेग बुलाये ॥४६४॥

जब भोजन करके अक्रूरजी शान्त होकर बैठे तब उन्होंने सब समाचार कहे। उन्होंने कहा कि राजा कंस ने धनुष यज्ञ का कार्यक्रम रखा है अतः उन्होंने सबको जल्दी ही बुलाया है।

चले महर व्रजराज साज सँ कौतुक देखन काज।
राम कृष्ण दोउ आगे लैके सकल घोष सिरताज ॥४६५॥

नन्दजी पूरी तैयारी के साथ उत्सव देखने के लिए बलराम और कृष्ण को आगे करके चले ।

मारग में कालिंदी के तट कीन्हों जल स्नान ।
निज वैकुंठ दिखायो जल में दीन्हों पूरन ज्ञान ॥४९६॥

मार्ग में यमुना के किनारे अक्रूर ने स्नान किया । जब जल में अक्रूर थे तब भगवान ने उन्हें अपना वैकुण्ठ का रूप दिखाया और उन्हें पूर्ण ज्ञान दिया ।

करि वन्दन हरि के चरणन को पुनि अक्रूर यह भाख्यो ।
तुम यदुकुल प्रकटे पुरुषोत्तम भक्तन को प्रण राख्यो ॥४९७॥

अक्रूर ने कृष्ण के चरणों की वन्दना करके कहा कि यदुकुल में परमेश्वर के रूप में आपने रूप धारण करके भक्तों की रक्षा की है ।

विशेष—'सारावली' भगवान के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करने वाली है और हरिलीला को स्पष्ट करने वाली रचना है इसलिए इसमें 'सूरसागर' जसा लीलाओं का वर्णन विस्तार से नहीं है किन्तु जहाँ भागवत के अनुसार ईश्वरीय लीला है वहाँ उसी प्रकार का वर्णन है। ब्रज पहुँचते ही कृष्ण के चरण-चिन्हों पर अक्रूर गिर पड़ते हैं और यमुना-स्नान के समय परब्रह्म के दर्शन करते हैं। भागवत में दशमस्कंध के ३९ वें अध्याय में ये घटनाएँ मिलती हैं। 'सूरसागर' में भी ये प्रसंग संक्षेप में है ।

मथुरा-प्रवेश

मथुरा आय रहे उपवन में नंदराय सब गोप ।
राम कृष्न के चरन परस ते अधिक मधुपुरी ओप ॥४९८॥
गये नगर देखन को मोहन बलदाऊ के साथ ।
पुर कुलवधू झरोखन झांकत निरख निरख मुसक्यात ॥४९९॥

मथुरा में पहुँच कर उपवन में नन्द तथा अन्य गोपों ने स्थान लिया । बलराम और कृष्ण के वहां पहुँचने से मथुरा की शोभा बढ़ गई । फिर बलदेवजी के साथ कृष्ण जी मथुरा नगर देखने लगे । तब नगर की नारियाँ झरोखों में बैठी हुई कृष्ण को देख-देखकर मुस्कराने लगीं ।

विशेष—भागवत में भी इसी प्रकार का वर्णन दशमस्कंध के ४१ वें अध्याय में है ।

मारग में यक रजक संहार्‌यो सबहि बसन हरि लीन्हें ।
बायक मिल्यो सबहि पहिराये सबहिन को सुख दीन्हों ॥५००॥

रास्ते में कंस एक धोबी मिला । बहुत से राजसी कपड़े लिए जा रहा था । कृष्ण के माँगने पर जब उसने नहीं दिया तब कृष्ण ने उसे तमाचा मार कर मार दिया और उसके सारे कपड़े ले लिए । एक दरजी मिला । उसने कपड़ों को ठीक-ठीक पहना दिया । इससे सबको बड़ा सुख मिला ।

विशेष—छपी हुए सभी प्रतियों में पाठ 'बालक' अशुद्ध है । यह वास्तव में बायक

है जिसका अर्थ है 'दर्जी'। भूल से 'द' के स्थान पर 'न' पाठ चला आया है।

आगे मिल्यो सुदामा मानो फूल माल पहिराई।
निर्भय दान दियो हरि तिनको अविचल भक्ति दृढ़ाई ॥५०१॥

आगे सुदामा नाम का माली मिला। उसने फूल-मालाएं पहिना कर कृष्ण की शोभा बढ़ा दी। भगवान ने उसे अभय करके अविचल ईश्वर-भक्ति का वरदान दिया।

कुब्जा घिसि चन्दन लै आई मारग देखन आई।
हरि मांग्यो उन तेज्यु समर्प्यो मन बांछित फल पाई ॥५०२॥

कंस की दासी कुब्जा घिसे हुए चन्दन को लेकर कंस के यहाँ जा रही थी। मार्ग में वह कृष्ण से मिली। कृष्ण ने उससे चन्दन मांगा। उसने आदर समर्पित किया। इससे कृष्ण प्रसन्न हुए। उसे मनोवांछित फल मिला।

दियो वरदान भवन आवन को तहां ते चले कन्हाई।
मथुरा नगर देख मनमोहन फूले हैं दोउ भाई ॥५०३॥

भगवान ने उसे वरदान दिया कि उसके घर आयेंगे। फिर वे आगे चले। मथुरा नगर को देखकर दोनों भाई बड़े प्रसन्न हुए।

रीझत नारि कहत मथुरा की आपुस में दै सैन।
कोमल गात कौन को ढोटा सुन्दर राजिव नैन ॥५०४॥

मथुरा नगर की स्त्रियां इन्हें देखकर प्रसन्न होती हैं और कहती हैं कि यह सुकुमार शरीर वाला कमल-नैन किसका पुत्र है।

यह बालक सुकुमार सरस वपु असुर प्रबल अति भारी।
कैसे कै वाको मारेंगे सोचत हैं पुर नारी ॥५०५॥

वे सब नगर के नर-नारी चिन्ता में पड़ गये। वे सोचने लगे कि ये तो बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो बड़े ही शक्तिशाली हैं। भला ये उन प्रबल राक्षसों को कैसे मार सकेंगे।

उपवन आय कियो हरि ब्यारू नन्दराय सुख दीन्हों।
मधु मेवा पकवान मिठाई जो भायो सो लीन्हों ॥५०६॥

उपवन में रात का भोजन किया और नन्दजी को सुख दिया। मधु, मेवा, पकवान आदि यथारुचि लेकर उन्होंने खा लिया।

पौढ़े जाय दोउ शय्या पर सोवत आई निंद।
स्वपने में मथुरा फिर देखी जागे बालगोविंद ॥५०७॥

फिर दोनों शय्या पर जा लेटे और लेटते ही नींद लग गई। स्वप्न में भी उन्हें मथुरा दिखाई पड़ी। फिर प्रातःकाल जग उठे।

भयो प्रात नृप फेर बुलायो धनुष यज्ञ को देखन।
मल्ल युद्ध नाना विध क्रीड़ा राज द्वार को पेखन ॥५०८॥

प्रातःकाल राजा ने धनुषयज्ञ देखने के लिए बुलवाया। वहां पर मल्लयुद्ध और तरह-तरह के खेल होने वाले थे। इन सबको देखने के लिए बुलाया था।

गये ब्रजराज द्वार भूपति के वहु उपहार दिवाये।

तव नृप कह्यो सकल गोपन सों भली करी तुम आये ॥५०९॥

नन्द राजा के द्वार पर गये और उपहार लायी हुई वहुत-सी वस्तुएं दीं। तव राजा कंस ने सभी गोपों से कहा कि आपने आकर अच्छा किया।

विशेष—ऊपर के सभी वर्णन भागवतानुसार हैं। 'सूरसागर' में भी ये सव वर्णन मिलते हैं। कृष्ण-वलराम का नगर देखने जाना भी भागवत (दशम स्कंध अध्याय ४१ श्लोक १८) में है। डॉ० टंडन ने इसे 'सारावलीकार' की स्वतंत्र कल्पना माना है।

कंस की धनुष-यज्ञ-शाला में प्रवेश

वैठारे सव मंच ओपसों कौतुक देखन लागे।

रामकृष्ण संग ग्वाल मंडली नगर देख अनुरागे ॥५१०॥

सव लोग मंच पर वड़ी शोभा के साथ वैठे और वहां का दृश्य देखने लगे। कृष्ण और वलराम के साथ आयी हुई ग्वाल-मण्डली ने नागरिक-उत्सव देखने में वड़ी रुचि ली।

तोरे धनुष टूक करि डारे दोउन आयुध कीने।

तासु मारि करि चूर पहरुआ परम मोद रस भीने ॥५११॥

कृष्णजी ने धनुष के दो टुकड़े कर डाले। फिर इन टुकड़ों को ही उन्होंने हथियार वना डाला क्योंकि कंस के वहुत से असुर उनको मारने को दौड़े। धनुष के टुकड़ों से ही उन सव को मारा और धनुष-रक्षकों को चूर-चूर कर वाहर निकाल दिया और आनन्द के रस में मग्न हो गये।

विशेष—इस पद में न्यूनपदत्व दोष है अतः 'तासु' के पूर्व उन असुरों का उल्लेख नहीं हो पाया है जो धनुष तोड़ने के समय कृष्ण से लड़ने दौड़े थे।

मद गजराज द्वार पर ठाढ़ो हरि कहेउ नेक वचाय।

उन नहिं मान्यो सन्मुख आयो पकरेउ पूंछ फिराय ॥५१२॥

(दूसरे दिन जव कृष्ण मखशाला के द्वार पर आये) मतवाला हाथी (कुवलयापीड़) द्वार पर खड़ा था। कृष्ण ने महावत से कहा कि हाथी को थोड़ा हटा ले जिससे अन्दर जाने का रास्ता मिले। किन्तु महावत ने उनकी वात की परवाह ही नहीं की। महावत के इशारे पर हाथी सामने आ गया। कृष्ण ने उसकी दुम पकड़ कर उसे घुमा दिया।

दियो पठाय स्याम निज पुर को मावत सहि गजराज।

आगे चले सभा में पहुंचे जहं नृप सकल समाज ॥५१३॥

फिर महावत के साथ हाथी को भी उन्होंने स्वर्ग भेज दिया और आगे चलकर वे सभा में पहुंच गये।

बड़े बड़े राजा सब बैठे अरु पुरवासी लोग।
अपने अपने भाव सु देखत मिट्यो सकल मन सोग ॥५१४॥

वहाँ मल्लशाला में बड़े-बड़े राजा और पुरवासी बैठे थे। सब कृष्ण जी को सबने अपने-अपने मनोभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में देखा।

मल्ल सकल मल्ल से दीखे नृपन लखे नृपराय।
युवतिन सबै कामवपु देखे भेंटन को ललचाय ॥५१५॥

वहाँ बड़े-बड़े मल्ल बैठे थे। उन्होंने कृष्णजी को देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों वे बड़े मल्ल हों। राजाओं ने देखा मानो वे श्रेष्ठ राजा हों। वहाँ बैठी हुई युवतियों को कृष्ण जी कामदेव के रूप में दिखाई पड़े। वे कृष्ण से मिलने के लिए ललक उठी।

गोपन सखा भाव करि देखे दुष्टनृपति कृत दण्ड ॥
पुत्र भाव वसुदेव देवकी देखे नित्य अखण्ड ॥५१६॥
विदुष जनन विराट प्रभु दीखे अति मन में सुख पायो।
पूरन तत्व देख जोगी जन हित सों ध्यान लगायो ॥५१७॥

गोपों ने कृष्ण को सखा रूप में देखा और दुष्ट राजाओं ने यमराज के रूप में। वसुदेव और देवकी ने उन्हें वात्सल्य भाव से देखा। विद्वान व्यक्तियों ने देखा कि नित्य अखंड रूप में वे विराट भगवान हैं। उन्हें देखकर मन में बड़ा अनुराग हुआ। योगी लोगों को कृष्णजी पूर्ण परब्रह्म के रूप में दीखे और उन्होंने ध्यान लगा लिया।

यदुकुल के कुल दीपक प्रकटे सब यादव सुखदाई।
कंस देखि निज काल आपनो बहुतहि क्रोध रिसाई ॥५१८॥

यादव लोगों को प्रतीत हुआ कि वे यदुकुल के दीपक हैं। कंस ने देखा कि उनका काल ही आ गया अतः वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया।

विशेष—उपर्युक्त पदों का वर्णन उल्लेख अलंकार में युक्त भागवत के अनुसरण पर किया गया है। भागवत (दशम स्कंध अध्याय ४३, श्लोक १७) में ठीक यही उल्लेख मिलता है।[1] सारी उपमाएं वही हैं। लेकिन डॉ० प्रेमनारायण टंडन लिखते हैं कि इन पंक्तियों की रचना करते हुए सारावलीकार के सामने गो० तुलसीदास की 'जिन्ह की रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' पंक्तियां रही होंगी। गोस्वामी तुलसीदास सूरदास से कनिष्ठ थे सूरदास भला क्यों तुलसी से प्रेरणा लेते? सच तो यह है कि तुलसीदासजी ने भी भागवत के अनुसरण पर राम का उस प्रकार वर्णन किया है।

---

१. मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपते विराडविदुषां तत्वं परं योगिनां।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥

गये व्रजराज द्वार भूपति के बहु उपहार दिवाये।
तव नृप कह्यो सकल गोपन सों भली करी तुम आये ॥५०६॥

नन्द राजा के द्वार पर गये और उपहार लायी हुई वहुत-सी वस्तुएं दीं। तव राजा कंस ने सभी गोपों से कहा कि आपने आकर अच्छा किया।

विशेष—ऊपर के सभी वर्णन भागवतानुसार हैं। 'सूरसागर' में भी ये सव वर्णन मिलते हैं। कृष्ण-वलराम का नगर देखने जाना भी भागवत (दशम स्कंध अध्याय ४१ श्लोक १८) में है। डॉ० टंडन ने इसे 'सारावलीकार' की स्वतंत्र कल्पना माना है।

कंस की धनुष-यज्ञ-शाला में प्रवेश

वैठारे सव मंच श्रोपसों कौतुक देखन लागे।
रामकृष्ण संग ग्वाल मंडली नगर देख अनुरागे ॥५१०॥

सव लोग मंच पर वड़ी शोभा के साथ वैठे और वहां का दृश्य देखने लगे। कृष्ण और वलराम के साथ आयी हुई ग्वाल-मण्डली ने नागरिक-उत्सव देखने में वड़ी रुचि ली।

तोरे धनुष टूक करि डारे दोउन आयुध कीने।
तासु मारि करि चूर पहरुआ परम मोद रस भीने ॥५११॥

कृष्णजी ने धनुष के दो टुकड़े कर डाले। फिर इन टुकड़ों को ही उन्होंने हथियार वना डाला क्योंकि कंस के वहुत से असुर उनको मारने को दौड़े। धनुष के टुकड़ों से ही उन सव को मारा और धनुष-रक्षकों को चूर-चूर कर वाहर निकाल दिया और आनन्द के रस में मग्न हो गये।

विशेष—इस पद में न्यूनपदत्व दोष है अतः 'तासु' के पूर्व उन असुरों का उल्लेख नहीं हो पाया है जो धनुष तोड़ने के समय कृष्ण से लड़ने दौड़े थे।

मद गजराज द्वार पर ठाढ़ो हरि कहेउ नेक वचाय।
उन नहिं मान्यो सन्मुख आयो पकरेउ पूंछ फिराय ॥५१२॥

(दूसरे दिन जव कृष्ण मखशाला के द्वार पर आये) मतवाला हाथी (कुवलया-पीड़) द्वार पर खड़ा था। कृष्ण ने महावत से कहा कि हाथी को थोड़ा हटा ले जिससे अन्दर जाने का रास्ता मिले। किन्तु महावत ने उनकी वात की परवाह ही नहीं की। महावत के इशारे पर हाथी सामने आ गया। कृष्ण ने उसकी दुम पकड़ कर उसे घुमा दिया।

दियो पठाय स्याम निज पुर को मावत सहि गजराज।
आगे चले सभा में पहुंचे जहं नृप सकल समाज ॥५१३॥

फिर महावत के साथ हाथी को भी उन्होंने स्वर्ग भेज दिया और आगे चलकर वे सभा में पहुँच गये।

बड़े बड़े राजा सब बैठे अरु पुरवासी लोग।
अपने अपने भाव सु देखत मिट्यो सकल मन शोग ॥५१४॥

यहाँ मल्लशाला में बड़े-बड़े राजा और पुरवासी बैठे थे। अब कृष्ण जी को सबने अपने-अपने मनोभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में देखा।

मल्ल सवन मल्ल से दीखे नृपन लखे नृपराय।
युवतिन सबै कामवपु देखे भेंटन को ललचाय ॥५१५॥

वहाँ बड़े-बड़े मल्ल बैठे थे। उन्होंने कृष्णजी को देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों वे बड़े मल्ल हों। राजाओं ने देखा मानो वे श्रेष्ठ राजा हों। वहाँ बैठी हुई युवतियों को कृष्ण जी कामदेव के रूप में दिखाई पड़े। वे कृष्ण से मिलने के लिए ललक उठीं।

गोपन सखा भाव करि देखे दुष्टनृपति कृत दण्ड॥
पुत्र भाव वसुदेव देवकी देखे नित्य अखण्ड ॥५१६॥
विदुष जनन विराट प्रभु दीखे अति मन में सुख पायो।
पूरन तत्व देख जोगी जन हित सों ध्यान लगायो ॥५१७॥

गोपों ने कृष्ण को सखा रूप में देखा और दुष्ट राजाओं ने यमराज के रूप में। वसुदेव और देवकी ने उन्हें वात्सल्य भाव से देखा। विद्वान व्यक्तियों ने देखा कि नित्य अखंड रूप में वे विराट भगवान हैं। उन्हें देखकर मन में बड़ा अनुराग हुआ। योगी लोगों को कृष्णजी पूर्ण परब्रह्म के रूप में दीखे और उन्होंने ध्यान लगा लिया।

यदुकुल के कुल दीपक प्रकटे सब यादव सुखदाई।
कंस देखि निज काल आपनो बहुतहिं क्रोध रिसाई ॥५१८॥

यादव लोगों को प्रतीत हुआ कि वे यदुकुल के दीपक हैं। कंस ने देखा कि उनका काल ही आ गया अत वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया।

विशेष—उपर्युक्त पदों का वर्णन उल्लेख अलंकार से युक्त भागवत के अनुसरण पर किया गया है। भागवत (दशम स्कंध अध्याय ४३, श्लोक १७) में ठीक यही उल्लेख मिलता है।[1] सारी उपमाएं वही हैं। लेकिन डॉ० प्रेमनारायण टंडन लिखते हैं कि इन पंक्तियों की रचना करते हुए सारावलीकार के सामने गो० तुलसीदास की 'जिन्ह की रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' पंक्तियां रही होंगी। गोस्वामी तुलसीदास सूरदास से कनिष्ठ थे सूरदास भला क्यों तुलसी से प्रेरणा लेते ? सच तो यह है कि तुलसीदासजी ने भी भागवत के अनुसरण पर राम का उस प्रकार वर्णन किया है।

१. मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपते विराड विदुषां तत्वं परं योगिनां।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंग गतः साग्रजः॥

मल्ल-युद्ध

अब उन कह्यो मल्ल क्रीडा तुम करत गोप के संग।
वृन्दावन में हम सुनियत हैं क्रीडत हो बहुरंग ॥५१९॥
अब तुम कंस नृपति को दिखावो मल्ल युद्ध करि नीके।
कह्यो चाणूर मुष्टि सब मिलकं जानत हो सब जीके ॥५२०॥
तब हरि मल्ल क्रीड़ा करि बहु विधि दांव देखाये।
वर्णन कियो प्रथम संक्षेपन अबहूं वर्णन पाये ॥५२१॥
मुष्टिक साथ लरे बलभाई धरेउ वृहदवपु दोउ।
छिनहीं में हरि तुरत संहारे अति आनन्द मन होउ ॥५२२॥
और मल्ल मारे शल तोशल बहुत गये सब भाज।
मल्लयुद्ध हरि करि गोपन सों लखि फूले ब्रजराज ॥५२३॥

अब कंस के पहलवान चाणूर ने कहा कि हमने सुना है कि तुम ग्वालों के साथ मल्ल-युद्ध करते रहते हो और वृन्दावन में तरह-तरह के खेल करते रहते हो। अब तुम राजा कंस को अपना मल्लयुद्ध दिखाओ। तब कृष्ण ने मल्लयुद्ध के बड़े दांव-पेंच दिखाये। उन दांव-पेंचों का वर्णन नहीं हो सकता। मुष्टिक के साथ बलराम लड़े। चाणूर और मुष्टिक दोनों के शरीर बड़े स्थूल थे। पर कृष्ण ने क्षण भर में इन्हें मार डाला। अब और जो पहलवान बचे थे वे भाग गये। तब कृष्ण ने अपने ग्वालों को बुलाकर मल्ल-युद्ध दिखाया और नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए।

विशेष—ऊपर का सारा वर्णन भागवत से मिलता है। भागवत में भी मल्लों के मारे जाने पर कृष्ण ने ग्वाल-बालों के साथ मल्ल-विद्या दिखाई थी।

कंस-वध

तब नृप कंस बहुत बिललायो बार बार रिसयाई।
बांधो नन्द हरो गोपन धन कीन्हों कपट दुराई ॥५२४॥

तब कंस बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने बार-बार चिल्लाकर कहा कि इन नन्द आदि को बांध लो, इनका धन छीन लो, इन लोगों ने मेरे साथ बड़ा कपट किया है।

फागन वदि चौदश को शुभ दिन अरु रविवार सुहायो।
नखत उत्तरा आप विचारेउ काल कंस को आयो ॥५२५॥

वह दिन फागन वदी चतुर्दशी रविवार था। उत्तरा नक्षत्र था। भगवान ने सोचा कि अब कंस की मृत्यु का समय आ गया है।

यह कहि कूद गए हरि ऊपर जहं बैठे नृपराय।
हरि को देख खंग कर लीन्हों सन्मुख आयो धाय ॥५२६॥

ऐसा कहकर वे उछल कर मंच पर चढ़ गये। कृष्ण को देखकर कंस ने तलवार निकाल ली।

तव हरि केस पकरि अपने कर धरनी माँझ पछारो।
ऊपर गिरे आपु तिहुँ पुर को बोझ सीस पर डारो ॥५२७॥

तब कृष्ण ने उसके सिर के बाल पकड़ कर पृथ्वी में पछाड़ दिया। आप उसके ऊपर चढ़ गये और तीनों लोकों का बोझ उसके सिर पर डाल दिया।

कच गहि आप बहुत यह खैंच्यो हरि यमुना लौं आये।
करि विश्राम सकल श्रम खोयो अब जमुना जल न्हाये ॥५२८॥

उसके बाल पकड़ कर खींचने लगे और खींचते हुए यमुना तट तक ले आये। यहाँ पर उन्होंने विश्राम किया और फिर यमुना में स्नान करने से उनकी थकावट दूर हुई।

विशेष—भागवत के अनुसार तो कंस की मृत्यु पहले ही हो गयी। उसमें यमुना तक घसीटने की बात नहीं है, किन्तु 'सूरसागर' में यमुना तक घसीटने का उल्लेख है—

तुरत मंच तें धरनि गिरायो। ऐसेहि मारत बिलंब न लायो।
केस गहे पुहुमी घिसटायो। डारि जमुन के बीच बहायो ॥
(सूरसागर, दशमस्कंध ३०६५)

वसुदेव-देवकी-बंधन-मुक्ति और उग्रसेन को गद्दी

बंधन छोर पिता माता को अस्तुति करि सिर नायो।
तुम हमको पठये गोकुल में माते लाड़ लड़ायो ॥५२९॥
यसुमति मातु और ब्रजपति जू बहुतहि आनन्द दीनो।
याते टहल करन नहिं पायो बहुत स्याम रंग भीनो ॥५३०॥

माता-पिता के बन्धन छोड़कर सिर नवाकर उनकी स्तुति की। उनसे कहा कि आपने हमें गोकुल में भेज दिया था। वहाँ हमारा बड़ा लाड़ हुआ। यशोदा माँ और नन्दजी ने हमें बड़ा ही आनन्द दिया। वहाँ रहने और आप से दूर होने के कारण हमने आपकी कोई सेवा नहीं की।

तब ब्रजराज महर पं आये बल मोहन दोउ भाई।
तुम्हरी कृपा कंस मैं मारो कह लौं करौं बड़ाई ॥५३१॥

तब बलराम और कृष्ण दोनों भाई नन्दजी के पास आये और कहा कि आपकी कृपा से हमने कंस को मार दिया। आपकी कहाँ तक बड़ाई करूँ।

देवकि यह बोली जसुमति सौं हम तुम्हरे सुख पायो।
ज्यों तुम्हरो सुत त्यों मेरो सुत बहुतहि लाड़ लड़ायो ॥५३२॥

देवकी ने यशोदा के लिए सन्देशा कहा कि हमने तुम्हारे द्वारा बड़ा सुख पाया। कृष्ण-बलराम जिस तरह तुम्हारे पुत्र हैं उसी प्रकार हमारे हैं। आपने इन बेटों के साथ बड़ा ही लाड़-प्यार किया है।

विशेष—पुरानी प्रतियों में पाठ रोहिणी है किन्तु प्रसंग को देखते हुए इसके स्थान पर देवकी होना चाहिए।

हिल मिल चले सकल ब्रजवासी नंदगांव फिरि आयो।
सुवस बसी मथुरा ता दिन ते उग्रसेन बैठायो ॥५३३॥

इसके उपरान्त सारे ब्रजवासी खूब हिले-मिले और फिर वे नन्द के साथ अपने गाँव को वापस गये। उन्होंने उग्रसेन को गद्दी पर बिठाया तब से मथुरा ठीक प्रकार से बस गयी।

रामकृष्ण घर आये जाने पुरवासिन सुख पायो।
मंगलचार भयो घर घर में मोतिन चौक पुरायो ॥५३४॥

जब कृष्ण और बलराम अपने माता-पिता के घर आये तब मथुरा वासियों ने बड़ा सुख पाया। घर-घर में मंगलचार हुए और मोतियों ने चौक पुराये गये।

तब हरि मात पिता पै आये दोउ भाइन शिर नायो ॥
बन्धन छोर विनय बहु कीन्हें तुम हम बिन दुख पायो ॥५३५॥

इसके बाद कृष्ण अपने माता-पिता के पास आये और दोनों भाइयों ने माता-पिता को सिर नवाया। उनके बन्धन छूट ही गये थे। कृष्ण ने कहा कि हमारे बिना आपको बड़ा दुःख हुआ।

फिर वसुदेव बसे अपने गृह परम रुचिर सुख धाम।
राम कृष्ण को लाड़ लडावत जानत नहिं दिन याम ॥५३६॥

फिर वसुदेव जी अपने घर में सुख से रहे। उनका घर बड़ा ही सुन्दर और सुखदायी था। बलराम और कृष्ण से लाड लडाते उन्हें दिन-रात का कुछ पता न लगा।

विशेष—भागवत में भी नन्द की विदाई इसी प्रकार अत्यन्त संक्षेप में है। 'सूरसागर' में नन्द की विदाई निश्चय ही अधिक मार्मिक है। पर 'सूरसागर' तो लीला ग्रन्थ है। वसमें प्रत्येक प्रसंग मार्मिक और विस्तृत है। 'सारावली' में ऐसे विस्तार की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

यज्ञोपवीत और गुरुकुल-प्रवेश

गर्ग बुलाय वेद विधि कीन्हों सुभ उपवीत करायो।
विद्या पढ़न काज गुरु गृह दोउ पुरी अवन्ति पठायो ॥५३७॥

वसुदेवजी ने पुरोहित गर्ग ऋषि को बुलाया और कृष्ण-बलराम का यज्ञोपवीत वेद-विधि से कराया। फिर विद्या पढ़ने के लिए गुरु सान्दीपनि के घर पर अवन्ती भेजा।

राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई गुरु सेवा करवाये।
सुरभी दुहत दोहनी मांगी बांह पसार देवाये ॥५३८॥

ऋषि ने इन्हें सारी राजनीति पढ़ाई और गुरु सेवा भी कराई। गाय का दूध दुहते हुए वे इन बालकों को दोहनी लाने को कहते और ये बाँह फैलाकर लाते थे।

गुरु दक्षिणा देन जब लागे गुरु पत्नी यह मांग्यो।
बालक बह्यो सिन्धु में हमरो सो नित प्रति चित लाग्यो ॥५३९॥

जब गुरु-दक्षिणा देने के लिए ये खड़े हुए तो गुरुपत्नी ने कहा कि मेरा एक बालक समुद्र में बह गया है। उसी पर मेरा चित्त लगा है।

यह सुनि स्याम राम दोऊ मिलि गए जलधि के बीच।
पर पंचजन शंख तहं लीन्हों मारि असुर अति नीच ॥५४०॥

यह सुनकर बलराम और कृष्ण दोनों सागर में गये। सागर ने कहा कि हमारे अन्दर पचजन नाम का असुर है। उसी ने बालक को लिया होगा। कृष्ण ने उस असुर को मार डाला किन्तु उसके पेट में बालक न मिला।

विशेष—यहाँ भी प्रतियों में 'पचानन' पाठ है। यह पाठ अशुद्ध है। भागवत (दशमस्कंध अध्याय ४६ श्लोक ४०) में 'पचजन' है। लगता है प्रतिलिपिकार की भूल से 'पंचजन' शब्द पचानन' हो गया है।

यमपुर जाय शंख ध्वनि कीन्हीं यमराजा चलि आयो
चरन धोय चरनोदक लीन्हों बालक दे सिर नायो ॥५४१॥

तब यमपुर जाकर कृष्ण ने शंख-ध्वनि की। उसे सुनकर यमराज जी आये। यमराज ने कृष्ण की चरण वन्दना की और बालक को लाकर उन्हें सौंप दिया।

ले बालक गुरु आगे धरि कै राम कृष्ण सुख रासी।
आज्ञा लै मधुपुरी सिधारे परब्रह्म अविनासी ॥५४२॥

वह बालक लेकर सुख की राशि बलराम और कृष्ण गुरु के समक्ष आये। फिर उनसे आज्ञा लेकर मथुरा को वापस आये।

विशेष—'सूरसागर' में यह कथानक है। पर वहाँ गुरु-पुत्र लाने की कथा केवल आधी पंक्ति में है—

'आनि दिये गुरु सुत जमपुर ते, तब गुरु आसीस सुनाई'

'सारावली' में भागवतानुसार पूरी कथा है। कारण यह है कि पचजन राक्षस का मारना, जमपुर जाना ऐसे कार्य हैं जो ईश्वरत्व सम्बन्धी हैं। इसीलिए 'सारावली' में इन्हें प्रस्तुत किया गया है।

अक्रूर पर कृपा

क्रीड़ा करत विविध मथुरा में अक्रूर भवन सिधारे।
अस्तुति करी बहुत नाना विधि निर्भय कर सिर धारे ॥५४३॥

हरि-लीला करते हुए एक दिन भगवान अक्रूर के भवन पधारे। अक्रूरजी ने भगवान की बड़ी स्तुति की और नाना प्रकार से पूजा की। भगवान ने उन्हें सब प्रकार से निर्भय किया।

कुब्जा पर कृपा

कुबिजा के घर आपु पधारे मन मनोरथ कीनो।
ऊधो सखा संग लैके अति आनंद मनसा दीनो ॥५४४॥

कुब्जा के घर पर भगवान गये और उसका सारा मनोरथ पूरा किया। भगवान के साथ उद्धव जी भी थे। इस प्रकार भगवान सभी भक्तों को आनन्द देने वाले हैं।

विशेष—कुब्जा का यह वर्णन भी भागवत के दशमस्कंध में अध्याय ४८ में है। भक्तों के मनोरथ पूरे करते हैं उनके लिए बड़े-छोटे में कोई अन्तर नहीं है। यही दिखाने के लिए उन्होंने उद्धव को अपने साथ रखा था।

कृष्ण-उद्धव-संवाद

उद्धव भक्त बुलाय संग ले हरि इकांत यह भाख्यो।
ब्रजवासी लोगन सों मैं तो अन्तर नहिं कछु राख्यो ॥५४५॥

भक्त उद्धव को बुलाकर एक दिन कृष्ण ने एकान्त में कहा—ब्रजवासी लोगों से मैंने कोई अन्तर नहीं रखा है अर्थात् मैं मन से तो उनसे भिन्न हूँ, फिर भी वे मुझ से दूर हैं।

सुर गुरु शिष्य बुद्धि में उत्तम यदुकुल कहत प्रमान।
मन्त्री भृत्य सखा मो सेवक याते कहत सुजान ॥५४६॥

आप बृहस्पति के शिष्य हैं, बड़े बुद्धिमान हैं, सारे यदुकुल में आपका बड़ा सम्मान है। मेरे मन्त्री, सेवक और सखा हैं इसलिए मैं आपसे कह रहा हूँ।

मोकू लाड लडायो उन जो कहं लगा करें बड़ाई।
सुनि ऊधो तुम समुझत नाहिंन अब देखोगे जाई ॥५४७॥

ब्रजवासियों ने बचपन में मुझे बड़ा प्यार किया है। उनकी कितनी बड़ाई करूँ। आप स्वयं वहाँ जाकर देखेंगे। अभी आपकी समझ में नहीं आ रहा है।

वेग जाव ब्रज मो आज्ञा ते ब्रजवासिन सुख दैहौ।
चरण रेनु शिर धरि गोपिन की तुमहुं अभय पद लेहौ ॥५४८॥

तुम जल्दी ही मेरी आज्ञा से ब्रज जाओ। तुम्हारे जाने से ब्रजवासियों को सुख मिलेगा। वहाँ जाने से तुम भी गोपियों की चरण धूलि लेकर अभय पद पाओगे।

विशेष—उद्धव के ब्रज भेजने के प्रयोजन में 'भागवत' और 'सूरसागर' में अन्तर है। भागवत में उद्धव भगवान के भक्त हैं। वे केवल उनके सन्देशवाहक हैं। उद्धव ब्रज आकर सन्देश देकर गोपियों को आश्वस्त कर देते हैं किन्तु सूरदास जी अपने ग्रन्थों में उद्धव को कृष्ण का ऐसा सखा मानते हैं जो ज्ञानी है और भक्ति में विश्वास नहीं करता। उद्धव निर्गुण ब्रह्म और ज्ञानमार्ग में विश्वास करते हैं। अतएव कृष्ण उनको ब्रज केवल इसलिए भेजते हैं कि वे गोपियों के भाव देखकर भक्तिभाव का अर्जन करें। 'भागवत' में उद्धवजी कृष्ण से किसी प्रकार का विवाद नहीं करते। कृष्ण के वचन सुनते ही ब्रज के लिए चल पड़ते हैं।[1] किन्तु 'सूरसागर' में ज्यों ही कृष्ण गोकुल

---

१. इत्युक्तं उद्धवो राजन् संदेशं भर्तु राहृतः।
आदाय रथमारूह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ (दशम स्कंध अध्याय ४६।६)

की प्रीति की चर्चा करते हैं,[1] उद्धव प्रतिवाद करते हैं—

हँसि उपंग सुतवचन बोले, कहा हरि पछतात।
सदा हित यह रहत नाहीं, सकल मिथ्या जात।
सूर प्रभु यह सुनो मोसों, एक हो सों नात॥[2]

'सूरसागर' में स्पष्ट कथन है कि कृष्ण ने उद्धव को मति समझाने के लिए ही गोकुल भेजा था—

याहि और नहिं कछु उपाई।
मेरो प्रगट कह्यो नहिं धरि है, ब्रज हो देउं पठाइ।[3]

उद्धव से भी उन्होंने जाते समय व्यंग्य से कहा था कि वहाँ जाकर तुम्हारा सुधार हो जायेगा—

सूर स्याम इहि कारन पठवत हूं आवोगे सन्त।

'सारावली' मे भी उपर्युक्त दृष्टिकोण संकेत रूप में है—

सुनि ऊधो तुम समुझत नाहिन अब देखोगे जाई।

में स्पष्ट है कि उद्धव कृष्ण के विचारो से सहमति नहीं रखते थे और अन्त मे कृष्ण ने कहा कि 'चरण रेणु सिर धरि गोपिन की तुमहू अभय पद लैहो'।

तात्पर्य यह कि ब्रज जाकर तुम ज्ञानी से भक्त बन जाओगे।

इस प्रकार 'सारावली' और 'सूरसागर' में कवि का दृष्टिकोण बिलकुल एक ही है।

कृष्ण-संदेश

गोपिन सों विनती करि कहियो नित प्रति मन सुधि करियो॥
विरह व्यथा आई जब तनु मे तब तब म्हहि चित धरियो॥५४९॥

गोपियों मे विनयपूर्वक कहिये कि मुझे नित्यप्रति उनकी याद आती है। जब-जब उनके शरीर मे विरह-व्यथा उत्पन्न हो तब-तब वे मुझे स्मरण करें।

पाती लिखी आप कर मोहन ब्रजवासी सब लोग।
मात जसोदा पिता नन्द जू बाढ़ो विरह वियोग॥५५०॥
धौरी धूमरि कारी काजर मैन मजीठी गाय।
ताको बहुत रालियो नीके उन पोष्यो पय प्याय॥५५१॥

---

१. *हरि गोकुल की प्रीति चलाई।*
सुनहु उपग सुत मोहि न बिसरत ब्रजवासी सुखदाई।
सूरसागर दशम स्कंध ३४२२
२. " " ३४२४
३. " " ३४१६
४. " " ३४२८

कृष्ण ने अपने हाथ से पत्र लिखा कि हे व्रजवासी लोग, यशोदा और पिता नन्द जी हमें भी विरह का बड़ा दुख है। आपको भी विरह का कष्ट होगा। हमारी गैयाँ धौरी, धूमरी, काली, कजरी, नैनी, मजीठी आदि को अच्छी तरह से रखिएगा क्योंकि इन्होंने अपना दूध पिला कर मुझे पाला है।

वन में मित्र हमारे एक हैं हमहीं सो है रूप।
कमल नयन घन स्याम मनोहर सब गोधन को भूप ॥५५२॥

उद्धवजी से कृष्ण ने कहा कि वन में मेरा एक मित्र है। उसका रूप भी मेरा ही है। वह भी कमल के नेत्रों वाला और घनश्याम रूप मनोहर है। सब गौवों का वही पालक है। तात्पर्य यह कि आपको गोवर्धन पर्वत मिलेगा। वह कृष्ण रूप है। कमल जो खिले हैं वही उसके नेत्र हैं। वनों और घासों से लदा होने के कारण वह है ही श्यामघन। गोवर्धन धारण लीला में कृष्ण रूप में वह बना भी था। आगे और स्पष्टीकरण है—

ताको पूजि बहुरि सिर नइयो अरु कीजो परनाम।
उन हमारो व्रज सबहि बचायो सब विधि पूरे काम ॥५५३॥

उसकी पूजा करके आप प्रणाम कीजिएगा। उसने हमारे व्रज को इन्द्र-कोप के समय बचाया भी था और हमारी इच्छाओं को पूरा किया था।

'सूरसागर' में भी इस आशय की पंक्तियां हैं—

मित्र एक वन बसत हमारैं, ताहि मिलैं सुख पाइहौ।
करि करि समाधान नीकी विधि मो कों माथ नवाइहौं॥
डरपहु नहिं तुम सघन कुंज में, है तहं के तरु भारी॥
वृन्दावन मति रहत निरंतर, कबहुं न होति निनारी॥

(दशमस्कंध पद ३४४६)

उद्धव-व्रज-गमन

आज्ञा लै ऊधो श्रीपति की चले वेग नंदग्राम।
पुष्कर माल उतार हृदय ते दीनी सुन्दर स्याम ॥५५४॥

श्रीकृष्ण की आज्ञा लेकर उद्धव जी गोकुल के लिए चल पड़े। चलते समय कृष्ण ने अपना पुष्पहार उतार कर उद्धवजी को पहना दिया।

पीताम्बर अपनो पहिरायो श्रुति कुण्डल पहिराये।
अपने रथ बैठाय प्रीति सों उद्धव व्रज पधराये ॥५५५॥

अपना पीताम्बर भी पहना दिया और कानों में अपने कुंडल पहिना दिये। अपने ही रथ पर बिठा कर बड़ी प्रीति से उद्धव को विदा किया।

दिनमनि अस्त भये गये गोकुल नंदराय सों भेंटे।
बल मोहन दोउ देख माधुरी परम विरह दुख मेटे ॥५५६॥

सूर्यास्त के समय उद्धवजी गोकुल में पहुँचे और उन्होंने नन्दजी को भेंटा। नन्द बाबा को प्रतीत हुआ मानो बलराम और कृष्ण ही आ गये हों। उनका सारा दुख मिट गया।

मिले नंद बलराम कृष्न दोउ हैं नीके यह भाख्यो ।
मार्‌यो कंस मती सब कीन्हीं यादव कुल सब राख्यो ॥५५७॥

मिलने के उपरान्त नन्दजी ने कहा कि कृष्ण और बलराम अच्छी तरह तो हैं। उन्होंने कंस को मारा और यदुकुल की रक्षा की। इस प्रकार सब कुछ अच्छा ही किया है।

विशेष—यह सब भागवत के अनुसार ही है। डॉ० प्रेमनारायण टंडन ने आक्षेप किया है कि सारावलीकार ने धौरी धूमरी गैयों तक का उल्लेख किया है, किन्तु राधा का कोई उल्लेख क्यों नहीं किया? इसका उत्तर यह है कि 'सूरसागर' में भी उद्धव को भेजते हुए श्री कृष्ण राधा का कोई उल्लेख नहीं करते। वास्तव में उन्होंने उद्धव को ही भाव-परिवर्तन के लिए भेजा था, राधा को कुछ कहलाने की आवश्यकता ही नहीं थी।

उद्धव-गोपी-मिलन

पूजा करि भोजन करवायो उद्धव संत सरायो ।
सोवन निशा एक नहिं पाये राम कृष्न गुन गायो ॥५५८॥

नन्दजी आदर सहित उद्धव को भोजन कराया। फिर शय्या पर उद्धवजी को बिठाया। उद्धवजी रात में सोने नहीं पाये, क्योंकि वे सारी रात कृष्ण-गुण-गान करते रहे।

जसुदा विकल बात पूछति है नयनन नीर प्रवाह ।
तब मन में अति ही दुख बाढ़्यो अति आतुर जनु दाह ॥५५९॥

यशोदा व्याकुल होकर पूछती जाती हैं और उनके नेत्रों से आंसू की धारा बहती जाती है। उनका तन-मन जल रहा था। वे बड़ी ही दुखी और व्याकुल थीं।

बातें करत शेष निसि आई उद्धव गये सनान ।
सुमिरन कर फिर ब्रज में आये गोपिनि देखे आन ॥५६०॥

बातें करते-करते जब रात व्यतीत हो गयी, तब उद्धवजी स्नानादि के लिए उठ गये। भगवान् को स्मरण करते हुए जा रहे थे, तभी गोपियों ने उन्हें आते देखा।

उद्धव देखि सकल गोपिन ने कीन्हीं मन अनुमान ।
रथ को देखि बहुत भ्रम कीन्हों धौं आये फिर कान ॥५६१॥

उद्धव जी को दूर से देख कर तथा रथ को खड़ा देखकर गोपियों ने अनुमान किया कि शायद कृष्ण जी आये हैं।

तब एक सखी कहे सुन री तू सुफलक सुत फिर आयो ।
प्राण गये लै पिंड देन को देह लेन मन भायो ॥५६२॥

तब एक दूसरी सखी कहने लगी कि अक्रूर ही फिर आया है। प्राण तो पहले ही ले गया था, अब पिंड-दान के लिए हमारी देह लेने आया है।

इतने देख कृष्न अनुचर मुख उद्धव यह सब जानी ।
उद्धव कियो प्रनाम सबनि को विनय कियो मृदु बानी ॥५६३॥

इतने में उन्होंने देखा कि यह तो कृष्ण का अनुचर है और उद्धव ने भी इन

गोपियों को जान लिया। तब उद्धव जी ने गोपियों को मीठी वाणी से अभिवादन किया।

भली करी तुम आये उद्धव लाये हरि की पाती।
जा दिन ते हरि गोकुल छांड्यो हम पर विरह बराती ॥५६४॥

इस पर गोपियों ने कहा कि हे उद्धवजी आपने भला किया कि कृष्ण की पत्री ले आये। जिस दिन से कृष्ण यहाँ से गये हैं तब से हमारा बराती तो विरह है।

विशेष—ऊपर के समस्त विवरण 'भागवत' के अनुसार हैं। "सूरसागर' में सूरदास जी ने 'भागवत' की कथा को मौलिक रूप से पल्लवित किया है। 'सारावली' में संक्षिप्त कथा देनी थी अतः इसमें मूल भागवतीय कथा ही प्रस्तुत है। यहां 'सूरसागर' का मौलिक वर्णन प्रयोजनीय नहीं था।

भ्रमरगीत

इतने मांझ मधुप यक देख्यो आय चरन लपटायो।
ताको देख कहत उद्धव सों हरि गोकुल विसरायो ॥५६५॥

इतने में देखा कि एक भ्रमर चरणों में लिपट रहा है। उसे देख कर वे उद्धव से कहने लगीं कि कृष्ण ने हमें बिल्कुल ही भुला दिया।

रे रे मधुप कितव के बन्धू चरण परस जिन करिहो।
प्रिया अंक कुंकुम कर राते ताही को अनुसरिहो ॥५६६॥
अधर सुधारस सकृत पान दै कान्ह भये अति भोगी।
विजय सखा को सखी कहत है तासों रहत संयोगी ॥५६७॥

भौंरे को संबोधन करके गोपी बोली कि ऐ भंवरे तू तो कपटी का सखा है, मेरे चरणों को स्पर्श न करो। प्रेमिका के वक्षस्थल पर के कुंकुम से तेरे हाथ लाल हैं, तू उन्हीं के पास जा।[1] (यहां भ्रमर को कृष्ण का प्रतीक माना है) हमें तो केवल एक बार अधरामृत का पान कराकर अब कृष्ण भोगी बन गये हैं। विजय के साथ रहने वाले अर्थात् कृष्ण की सखी है कुब्जा, अब उसी के संयोग में रहते हैं।

तीन लोक नारी को कहियत जो दुर्लभ बलवीर।
कमला हू नित पांय पलोटत हम तो हैं आभीर ॥५६८॥

तीनों लोकों में नारियां हैं, इनमें से ऐसी कौन है जो कृष्ण के लिए दुर्लभ है? स्वयं लक्ष्मी ही उनके पाँव दबाती रहती हैं। फिर हम तो केवल ग्वालिनियां हैं।

विशेष—उपर्युक्त पंक्तियों में अनेक उक्तियां[1] भागवत में ज्यों-की-त्यों प्राप्त हो जाती हैं।

१-मधुप कितवबन्धो मा स्पृशांघ्रि सपत्न्याः
कुचविलुलितमाला कुंकुमश्मश्रुभिर्नः
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः ।१४।
दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः ।१५।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयंका

पहले हो इन हनी पूतना बाँधे बलि को दान।
शूर्पनखा ताड़का संहारी स्याम सहज यह बान ॥५६६॥

पहले ही इन्होंने पूतना को मारा और बलि को रस्सी से बाँध लिया था। रामावतार में इन्होंने ही शूर्पणखा और ताड़का को मारा था अर्थात् यह तो इनकी स्वाभाविक बात है कि ये स्त्रियों को मारने और कपट की चाल चलते हैं।

याकी कथा सुनी निज श्रवनन वन विहंग भये योगी।
माँगत भीख फिरत घर घर ही सजन कुटुम्ब वियोगी ॥५७०॥

इनकी कथा श्रवण करके अनेक लोग घर-द्वार छोड़ देते हैं और वन के पक्षियों या योगियों की भाँति भीख मागते घर-घर डोला करते हैं।

गोपियों द्वारा ब्रजलीला का स्मरण

फिर हरि आय यशोदा के गृह रिंगन लीला करि हैं।
माँग्यो चन्द्र आरि जब कीन्हीं उन बातन चित धरि हैं ॥५७१॥

गोपियों ने कहा कि हे उद्धवजी! क्या कृष्ण फिर ब्रज में आकर यशोदा के घर में बाल रूप में पाँवों से चलेंगे, क्या उनको जब चन्द्रमा अच्छा लगेगा तो उसे मांगेंगे और हठ करेंगे।

बहुत दनुज संहार स्यामघन ब्रज की रक्षा करि हैं।
यमला अर्जुन विटप उपारे काली को विष हरि हैं ॥५७२॥
वेणु बजाय रास बन कीन्हों अति आनंद दरसायो।
लीला कथत सहसमुख तोऊ अजहूं पार न पायो ॥५७३॥
महा प्रलय के मेघ पठाये सुरपति कीन्हीं कोप।
छिनहीं मांझ गोवर्धन धार्‌यो राखि लिये सब गोप ॥५७४॥
ऐसे बहुत चरित्र कान्ह के बरनि कहत नहिं आवें।
उद्धव तुम नयननि नहिं देख्यो ताते भेद न पावें ॥५७५॥

जिस प्रकार से उन्होंने ब्रज के बहुत से राक्षसों को मारा, ब्रज की रक्षा की, यमलार्जुन का उद्धार किया, काली नाग को नाथ कर यमुना का जल शुद्ध करवाया, वंशी बजा कर रासलीला की और ऐसा आनन्द दरसाया कि उसका वर्णन शेषनाग अपने सहस्र मुखों से करें तो भी वे उसका पार नहीं पा सकते। इन्द्र ने महाप्रलय के बादल भेजे, तब भगवान ने गोवर्धन को उठा लिया। इस प्रकार कृष्ण के बहुत से चरित्र हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। हे उद्धवजी! आपने तो कृष्ण की इन ब्रजलीलाओं को देखा नहीं इसीलिए आप कुछ और बता रहे हैं।

उद्धव-वचन

तब उद्धव कहेउ धन्य धन्य तुम धन्य धन्य ब्रजनार।
तुम्हारे सुबस सदा हरि खेल्यो ब्रज में करत विहार ॥५७६॥

तब उद्धवजी ने कहा कि हे गोपियो! तुम धन्य हो। तुम्हारे साथ आनन्द से रह कर भगवान कृष्ण ने ब्रज में सदा क्रीड़ाएं की और विहार किया।

तुम्हरी चरन कमल रज कारन तप कीन्हों चतुरानन ।
रमा शेष पुनि किनहुं न पायो सो देखियत वृन्दावन ॥५७७॥

तुम्हारे चरण-कमलों की धूल के लिए ब्रह्मा ने तपस्या की । लक्ष्मी और शेषनाग आदि ने जिस हरि-लीला का अन्त नहीं पाया वह वृन्दावन में दिखाई पड़ती है।

गुल्म लता में जन्म मांगि तव विधि सों गोद पसारी।
उद्धव कहत सदा मोंहि दीजे चरन रेनु ब्रजनारी ॥५७८॥

तव उद्धवजी ब्रह्मा से हाथ फैला कर मांगते हैं कि हे प्रभु ! मुझे यहाँ की गुल्म-लताओं में जन्म दो और ब्रजनारियों से कहा कि वे अपनी चरण धूलि उन्हें दें ।

एक रूप ह्वै रहे वृन्दावन गुल्म लता कर वास ।
वज्रनाभ उपदेस कियो जिन पूरन केलि प्रकास ॥५७९॥

फिर एकनिष्ठ होकर उन्होंने वृन्दावन की लता-गुल्मों में निवास किया और वज्रनाभ को कृष्ण की आनन्द-लीला सम्बन्धी उपदेश किया ।

विशेष—वज्रनाभ श्रीकृष्ण के प्रपौत्र थे । इस संदर्भ का उल्लेख भागवत के द्वादश स्कंध के उपरान्त श्रीमदभागवत-महात्म्य अध्याय दो के अन्त में है ।

उद्धव का प्रत्यावर्तन

एक रूप उद्धव फिरि आये हरि चरनन सिर नायो।
कह्यो वृत्तान्त गोप वनितन को विरह न जात कहायो ॥५८०॥

भगवान कृष्ण के चरणों में एकनिष्ठ होकर उद्धव जी लौटे और उन्होंने कृष्ण के चरणों में शिर नवाया । आकर उन्होंने गोप-गोपियों का वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि उनके विरह का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

मोंहि खोजत षटमास वीति गये तवहुँ न आयो अन्त ।
ब्रज वनितन के नैन प्रानविच तुमहीं स्याम वसंत ॥५८१॥

मैंने खोजते हुए छह महीने लगाये किन्तु मैं उनके भावों का अन्त नहीं पा सका । तुम्हीं उनके नैन प्राणों में वसते हो ।

छिन नहिं दूर स्याम तुम उनसों मैं निस्चय यह कीनों ।
तुम्हरो रूप देखि गोकुल में बाढ़्यो नेह नवीनो ॥५८२॥

मैंने निश्चित रूप से समझ लिया कि तुम उनसे एक क्षण के लिए भी दूर नहीं हो । मैंने तुम्हारा जो रूप गोकुल में देखा, उससे मेरे मन में एक नये प्रकार का प्रेम उत्पन्न हुआ ।

तव हरि कह्यो सुनो उद्धव जू ब्रजवासी तन मोर ।
तिनको सपने कवहुं नहिं छांड़ों सत्य कहत हौं तोर ॥५८३॥

तव कृष्ण ने कहा कि हे उद्धवजी ! मुझे ब्रजवासी तो मेरे शरीर हैं । मैं उन्हें स्वप्न में भी नहीं छोड सकता मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ।

विशेष—यद्यपि 'सारावली' में 'सूरसागर' के भ्रमरगीत की भांति वहुत विस्तार से उद्धव-गोपी-सम्वाद और गोपियों का विरह-वर्णन नहीं है, तथापि 'सारावली' में भी

अन्त में परिणाम वही है जो 'सूरसागर' में। उद्धव जो ब्रज जाने से पूर्व ज्ञानी थे, गोपियों से मिलने के उपरान्त शुद्ध भक्त होकर लौटे हैं। उन्होंने कृष्ण से गोपियों की विरह-भावना का वर्णन किया। इस पर कृष्ण ने बताया कि उनका गोपियों से शाश्वत तादात्म्य है। 'सारावली' और भागवत में अन्तर है, क्योंकि भागवत में उद्धव ज्ञानी नहीं हैं, भक्त हैं। उन्होंने गोपियों के विरह-विषाद को समाप्त कर दिया और आप भक्ति-भाव में मग्न होकर लौटे तथा ज्ञान भुला दिया। किन्तु 'सारावली' में 'सूरसागर' की भाँति उद्धव परिवर्तित होकर लौटे। यहाँ भी उद्धव को इसलिए भेजा गया था कि वे ज्ञानी के स्थान पर भक्त बन जाएँ। कृष्ण और गोपियों का रूप ज्यों-का-त्यों ही बना रहा।

नित्य-विहार लीला का पुनराख्यान

वृन्दावन में धेनु चरावत ग्वाल सखन के संग।
वेणु बजावत मोद बढ़ावत क्रीड़ा कोटि अनंग ॥५८४॥

कृष्ण जी कह रहे हैं कि मैं तो शाश्वत रूप से गौओं के साथ वृन्दावन में गायें चराता हूँ, वंशी बजाता हूँ और सबको आनन्दित करता हूँ और करोड़ों काम को लजाने वाली आनन्द क्रीड़ाएं करता हूँ।

अरु गोपिन सौं अंग संग करि नित प्रति करौं विनोद।
दुष्ट कंस मारन यह आयौ सदा जसोदा गोद ॥५८५॥

मैं सदा गोपियों के अंग से अंग मिला कर नित्य विहार करता हूँ। पर कृष्णावतार तो मैंने केवल दुष्टों—कंसादि को मारने के लिए लिया था। मैं तो शाश्वत रूप वृन्दावन में यशोदा की गोद में खेलता हूँ।

कुंज कुंज में क्रीड़ा करि करि गोपिन को सुख देहौं।
गोप सखन संग खेलत डोलौं ब्रज तज अंत न जैहौं ॥५८६॥

मैं तो सदा कुंज-कुंज में क्रीड़ाएं करके गोपियों को आनन्द देता हूँ, गोप सखाओं के साथ खेलता हूँ और ब्रज छोड़कर कहीं नहीं जाता।

मारेउ दुष्ट बहुत जो भूपर धर्म करौ विस्तार।
बसुधा भार उतारन कारन यदुकुल लियो अवतार ॥५८७॥

मैंने पृथ्वी पर के दुष्टों को मारा और धर्म की स्थापना की। पृथ्वी के भार के हरण करने के निमित्त ही मैंने कृष्णावतार लिया था।

मित्र एक वन बसत हमारो सो नयनन भरि देख्यो।
ताको पूजन नित प्रति करिहौ सो सुम सुखुष विसेख्यो ॥५८८॥
नाना रत्न कंदरा कबहूँ दिन नहि मोहि भुलावै।
क्रीड़ा करौं नित्य कुंजनि में गोपिनि को सुख भावै ॥५८९॥

वृन्दावन रूपी मेरे मित्र को आपने नयन भर के देखा है। इस वृन्दावन की सेवा तुम सदा करो। इसकी अनेक कंदराएँ मुझे नहीं भूलतीं और यहाँ की कुंजों में रह कर सदा गोपियों को सुखदायी क्रीड़ा करता हूँ।

अक्रूर का हस्तिनापुर-गमन

ताही क्षण अक्रूर बुलाये बल मोहन यह भाख्यो ।
तुम अब वेगि जाव हस्तिनपुर कमलनयन जिय राख्यो ॥५६०॥
तव अक्रूर बैठि हरि के रथ हस्तिनपुर ज्ञु सिधारे ।
कुन्ती मिली युधिष्ठिर अर्जुन भीम विदुर उर भारे ॥५६१॥
गांधारी दुर्योधन आदिक भीष्म कर्ण सब भेंटे ।
वहुत दिना के ताप सवन के सुफलक सुत सब मेटे ॥५६२॥ अक्रूर
तव यह कह्यउ नृपति सों नीके वहुत भाँति समुझायो ।
तव नृप कह्यो नहीं मेरो वश मोह प्रवल जिय छायो ॥५६३॥
तव अक्रूर विचार कियो यह हरि इच्छा जिय मानी ।
करि प्रनाम गये मधुपुर को जहाँ स्याम सुखदानी ॥५६४॥
समाचार सवही कहि दीनो बल मोहनहि सुनायो ।
सुनि वसदेव देवकी दोऊ वहुतहि दुख जिय पायो ॥५६५॥

तव वलराम और श्रीकृष्ण ने अक्रूर को बुलाया और कहा कि तुम अव हस्तिनापुर चले जाओ। तव अक्रूर रथ पर बैठ कर हस्तिनापुर पधारे। वहाँ उन्हें कुन्ती मिली, साथ ही युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, विदुर भी मिले। गांधारी, दुर्योधन, भीष्म और कर्ण आदि सभी उनसे मिले। वहुत दिनों से हालचाल न मिलने से उन्हें जो दुख था वह सव अक्रूर ने दूर कर दिये। अक्रूरजी ने धृतराष्ट्र से कहा कि आप ऐसा करें कि पाण्डवों के साथ अन्याय न हो। तव धृतराष्ट्र ने कहा कि मेरे मन में अपने पुत्रों के प्रति वड़ा व्यामोह है। तव अक्रूर ने समझ लिया कि अव समझाने का कोई परिणाम न होगा, जो कुछ हरि इच्छा के अनुसार होगा, वही होगा। धृतराष्ट्र को प्रणाम करके अक्रूर जी वापस लौट गये। उन्होंने सारा समाचार वलराम और कृष्ण को सुना दिया। यह सव सुनकर वसुदेव और देवकी को वड़ा कष्ट हुआ।

विशेष—यह समस्त वृत्तान्त भागवत (दशम स्कंध, अध्याय ४९) में प्राप्त है। 'सूरसागर' में भी दशमस्कंध पद संख्या ४१६० में यही मिलता है। यहीं पर सूरसागर तथा भागवत का दशमस्कंध पूर्वार्ध समाप्त हाता है।

दशम स्कंध उत्तरार्द्ध

जरासंध युद्ध

अस्ती अरु प्राप्ती दोउ पत्नी कंस राय की कहियत ।
जरासंध पै जाय पुकारीं महा क्रोध मन दहियत ॥५६६॥

अस्ति और प्राप्ति नाम की कंस की दो रानियाँ थीं। वे जरासंध की पुत्रियां थीं। कंस की मृत्यु के उपरान्त दोनों अपने पिता के पास गयीं। दोनों क्रोध से जल रही थीं।

तीन बीस अक्षौहिणि लै दल जरासंध तहं आयो ।
बल मोहन छिन मांझ संहारे करि विन चमू पठायो ॥५६७॥

जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध करने के लिए आया। बलराम और कृष्ण ने क्षण भर में उसकी सारी सेना का संहार करके विना सेना के उसे भगा दिया।

सत्रह बार फेर फिर आयो हरि सब चमू सँहारी।
अब के फेर दुष्ट बनि आयो हरि कछु बात विचारी ॥५९८॥

इसी प्रकार वह सत्रह बार चढ़ कर आया और सत्रहों बार भगवान ने उसकी सेना का संहार किया। कृष्ण ने विचारा कि इस बार दुष्ट फिर तैयारी से आया है।

अन्तरिक्ष ते द्वै रथ उपजे आयुध तुरंग समेत।
तापर बैठ कृष्ण संकर्षण जीते हैं सब खेत ॥५९९॥

आकाश से दो रथ प्रकट हुए, जिनमें घोड़े और हथियार थे। उन पर बैठकर कृष्ण और बलराम ने युद्ध में शत्रु को हराया।

नारद जाय यवन सों भाख्यो रामकृष्ण दोउ वीर।
तोहि न गनत बसत हैं मथुरा बड़े बली रनधीर ॥६००॥

नारद ने जाकर कालयवन से कहा कि कृष्ण और बलराम तुम्हें कुछ नहीं गिनते। वे दोनों वीर मथुरा में सुख से रहते हैं।

यह सुनि यवन तुरत ही धायो जिय में अति अकुलाय।
तीन कोटि भट यवन संग ले मथुरा पहुंच्यो जाय ॥६०१॥

यह सुनकर जी में क्षुब्ध होकर कालयवन दौड़ा और तीन करोड़ वीर राक्षसों को लेकर मथुरा आ पहुँचा।

सुन बलमोहन बैठ रहसि में कीनो कछू विचार
मागध मगध देश ते आयो साजे फौज अपार ॥६०२॥

यह सुनकर बलराम और कृष्ण ने आपस में विचार किया कि इधर तो कालयवन आया है, उधर मगध से जरासंध आ रहा है। (अत: हमें अब मथुरा छोड़ देनी चाहिए)

विश्वकर्मा को आज्ञा दीन्हीं रची द्वारका आय।
निसि को सोये सब मथुरा में जागे द्वारका जाय ॥६०३॥ अलौकिकता

ऐसा सोचकर उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाया और आज्ञा दी कि जाकर तुम द्वारिका का निर्माण कर दो। उसने द्वारिका का निर्माण क्षण भर में ही किया और सारे मथुरावासी रात को तो मथुरा में सोये और प्रातःकाल द्वारिका में जगे।

हलधर हल मूसल कर लीनें सभी म्लेच्छ संहारे।
मारि फौज सबही मागध की जरासंध उर बारे ॥६०४॥

उधर से जब जरासंध की फौज आई तो बलराम ने अपने हल मूसल से उसकी सारी फौज को तहस-नहस कर डाला।

कालयवन-नाश और मुचुकुंद-उद्धार

चले भाजि दोउ सभी उहां ते जहं सोवत मुचुकुंद।
वसन उढ़ाय रहे छिपि आपन पूरन परमानंद ॥६०५॥

कालयवन को आया देख कृष्ण और बलराम भाग चले। वे वहाँ पहुँचे जहाँ मुचुकुन्द सो रहा था। कृष्णजी अपने वस्त्रों को फैलाकर वहीं कहीं छिप गये।

मारी लात आय जब नृप को तब जाग्यो महराय।
निकसी अग्नि नैन सों तासों भस्म भये तेहि दाय ॥६०६॥

वहां पर एक व्यक्ति सो रहा था। कृष्ण के वस्त्रों को देखकर कालयवन ने समझा कि कृष्ण सो रहे हैं। उसने एक लात मारी। लात के लगने से राजा मुचुकुन्द जगे। उनके नेत्रों से आग निकली। उससे कालयवन भस्म हो गया।

इतने मांझ आपु हरि आये दरसन दीन्हों नूप।
संख चक्र गद पद्म चतुर्भुज सुन्दर स्याम स्वरूप ॥६०७॥

इतने में कृष्ण प्रकट हो गये। उन्होंने अपना चतुर्भुज रूप राजा मुचुकुंद को दिखाया।

तब पूछ्यो तुम कौन रूप हो कौन देव अवतार।
अबलों कबहुं कहुं देखे नाहिं मैं तुम अति ही सुकुमार ॥६०८॥

दर्शन करके राजा मुचुकुन्द ने पूछा कि हे देव आप कौन हैं? अभी तक तो हमने ऐसा रूप कहीं नहीं देखा था, आप तो अतीव सुन्दर हैं।

तब हरि कह्यो जन्म मेरे बहु वेद न पावैं पार।
भुव की रज नभ के सब तारे तितने हैं अवतार ॥६०९॥

तब कृष्ण ने कहा कि मैंने अवतार तो बहुत से लिए हैं। वेद भी मेरा पार नहीं पा सके। हमारे तो अगणित अवतार हुए हैं। जितनी पृथ्वी पर रेत है या आकाश में तारे हैं उतने मेरे अवतार हैं।

अब कहिये द्वापर युग सुन नृप वासुदेव मम रूप।
भूतल भार उतारन आयो यदुकुल सुखद स्वरूप ॥६१०॥

किन्तु अब तो द्वापर में मैंने कृष्ण नाम से अवतार लिया है। यदुकुल को सुखी बनाकर पृथ्वी का भार उतारने आया हूं।

तब नृप अस्तुति बहु विधि कीन्हीं जन्म कर्म गुन गाय।
तुमहीं ब्रह्म अखिल अविनासी भक्तन सदा सहाय ॥६११॥

तब राजा ने भगवान की अनेक स्तुतियां कीं और कहा कि आप ही अविनाशी परमेश्वर हैं, भक्तों की सहायता करने वाले हैं।

नव गुन नवल रूप पुरुपोत्तम जै यदुकुल अवतार।
जय जय जय वैकुण्ठ महानिधि कमल नयन सुखसार ॥६१२॥

आप नव गुणों से युक्त पूर्ण पुरुपोत्तम हैं। आपने यदुकुल में अवतार लिया है। हे वैकुण्ठ के महानिधि कमलनयन सुख के सार भगवान आपकी जय हो।

वेद पुरान रटत जस जाको तऊ न पावत पार।
मैं मुचुकुन्द नृपति कृत युग को सोवत भये युग चार ॥६१३॥

वेद-पुराणों ने आपका यश गाया पर पार न पाया। मैं सतयुग का मुचुकुंद राजा हूं। मुझे सोते हुए युग बीत गये।

अब मोको आज्ञा कछु दीजै जैसे चरना पाऊं।
सदा बसों निज लोक निरंतर जन्म कर्म गुन गाऊं ॥६१४॥

अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपका गुणगान करूं और आपके लोक में सदा निवास करूं।

छत्री जन्म बहुत अघ कीन्हों ताते मुक्ति न होय ।
विप्र जन्म धरि मुक्ति होइगी करि तप साधन सोय ॥६१५॥

मैंने क्षत्री (इक्ष्वाकुवंश) कुल में जन्म लिया था और बहुत से पाप किए थे। मुझे मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्ति तो ब्राह्मण वंश में होती है जो तपस्या करके जन्म-मरण के जंजाल से मुक्त होता है।

आज्ञा लै के चल्यो नृपति यह उत्तर दिशा विशाल ।
करि तप विप्र जन्म जब लीन्हों मिट्यो जन्म जंजाल ॥६१६॥

आज्ञा लेकर राजा मुचुकुन्द उत्तर दिशा में चले गये। तपस्या की और अगले जन्म में उन्हें ब्राह्मण का शरीर मिला। उसमें उन्होंने तपस्या की और जग-जंजाल से उन्हें मुक्ति मिली।

विशेष—यहाँ भी कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन है। स्वयं कृष्ण कहते हैं कि मैंने तो पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिया था।

द्वारिका-प्रवेश

तहँ ते चले स्याम अरु हलधर परवरषन गिरि आये ।
पर्वत बहुत नमन करि पूजा यह विनती कर नाये ॥६१७॥

वहाँ से श्रीकृष्ण और बलराम प्रवर्षण पर्वत पर आये। उस पर्वत ने बहुत झुक कर कृष्ण से विनती की।

नित प्रति मो सिर मघवा बरसत लागत शीत अपार ।
अगनित पाप महादुख मेटो मांगत यही मुरार ॥६१८॥

नित्यप्रति इन्द्र मुझ पर वर्षा बहुत करते हैं। हमें बड़ी शीत लगती है। अनेक पापों के कारण हम दुःख पा रहे हैं। आपसे विनती करते हैं कि आप हमारे दुःख दूर करें।

विशेष—प्रवर्षण पर्वत का यह नाम इसलिए है कि वहाँ वर्षा अधिक होती थी। प्रवर्षण की प्रार्थना से भी ध्वनित है कि कृष्ण भगवान हैं और उन्होंने उस पर्वत का दुःख दूर किया।[1]

इतने मांझ मागध चलि आयो उन जानी यह बात ।
पर्वत मांझ भये दोउ भइया उन देखे दृग जात ॥६१९॥
दीन्हीं अग्नि लगाय चहूँ दिस उन जानी रिपु हान ।
राम कृष्न दोउ कूदि पधारे पुरी द्वारका जान ॥६२०॥

इतने में जरासन्ध आया। क्योंकि उसे ज्ञात हुआ कि कृष्ण प्रवर्षण पर्वत पर हैं। उसने कृष्ण को मारने के लिए पर्वत को चारों ओर से फूंक दिया। किन्तु बलराम और श्रीकृष्ण ने पर्वत से समुद्र में छलांग लगा दी तथा द्वारिकापुरी में पहुँच गये।

---

१. 'सूरसागर' में प्रवर्षण का संकेत मात्र है—
बहुरि आइ सरमाइ अचल रिपु ताहि जरायो ।
सूरसागर दशम स्कंध,-४११

भयो आनन्द द्वारिका में सब घर घर गीत गवाये।
करि रिपु हानि समर सब जीत्यो राम कृष्न घर आये ॥६२१॥

जब कृष्ण, बलराम द्वारका पहुँचे तो घर-घर में गीत होने लगे। लोगों ने समझा कि शत्रुओं का नाश करके कृष्ण और बलराम अपने घर पहुँच गये।

रुक्मिणी-विवाह

एक समय नारद मुनि आये नृपति भीष्म के गेह।
पूजा करी बहुत नाना विधि नृपति जनाये नेह ॥६२२॥

एक दिन नारदजी राजा भीष्म के घर पहुँचे। राजा ने नारदजी का बड़ा आदर-सत्कार किया और भक्ति प्रदर्शित की।

लखि रुक्मिनी कह्यो मुनि नारद यह कमला अवतार।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम श्री वसुदेव कुमार ॥६२३॥

उनकी पुत्री रुक्मिणी को देखकर नारदजी ने कहा कि यह तो लक्ष्मी का अवतार है, श्री कृष्णचन्द्रजी जो वसुदेवजी के पुत्र हैं, पूर्णब्रह्म परमेश्वर के अवतार हैं।

उनके योग्य यही कन्या है सुनो देव महाराज।
तब नृप कह्यउ करौ निस्चय यह सफल होय मम काज ॥६२४॥

इसलिए हे महाराज, उनके योग्य ही यह कन्या है। तब राजा ने कहा कि आप यह विवाह निश्चय करा दीजिए। इससे मेरी मनोकामना पूर्ण होगी।

तब नारद मुनि गये द्वारका कृष्न चन्द्र के पास।
विनती करी रुक्मिनी की सब सुनि हरि भये हुलास ॥६२५॥

तब नारद मुनि श्री कृष्णचन्द्र के पास द्वारका गये। उन्होंने रुक्मिणी के विवाह के सम्बन्ध में निवेदन किया। यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जी बड़े प्रसंन्न हुए।

करौ वेगि कछु विलंब न कीजै नारद कहि यह बात।
श्रवन सुनत कमलापति की जय तनु पुलकित सब गात ॥६२६॥
सुन नारद मोहि नींद न आवे करिहों वेग उपाय।
यह कहि चले आप हरि रथ चढ़ि शोभा कही न जाय ॥६२७॥

नारद ने कहा कि जल्दी कीजिए, देर करने की आवश्यकता नहीं। यह सुनकर रोमांचित होकर कृष्ण ने कहा—हे नारदजी ! मुझे नींद नहीं आती, मैं तो शीघ्र ही उपाय करूँगा। यह कह वे रथ पर चढ़ कर चल पड़े।

देस देस के नृपति जुरे सब भीष्म नृपति के धाम।
रुक्म कह्यउ शिशुपालहि देहौं नहीं कृष्न सों काम ॥६२८॥
एतने मांझ आपु हरि आये सुनी नृपति सब बात।
उपवन रहे जान जिय में यह मन में अति अकुलात ॥६२९॥

देश-देश के राजा राजा भीष्म के घर पर विराजमान थे। रुक्मिणी के भाई रुक्म ने कहा कि मैं तो रुक्मिणी को शिशुपाल को दूँगा, कृष्ण को देने से क्या लाभ है ? इतने में कृष्ण आ गये। उन्होंने यहाँ की सारी बात जान ली। वे उपवन में रुक गये, उन्हें मन में बड़ी चिन्ता थी।

पूजन करन चली देवी को सखी वृन्द सब संग ।
पूजा करि बोली यह कमला लोक लाज कृत भंग ॥६३०॥

रुक्मिणी सखियों को साथ लेकर देवी-पूजन के लिए चली। पूजा करके रुक्मिणी ने लोकलाज छोड़ कर देवी से प्रार्थना की।

अटल शक्ति अविनाश अधिक बल एक अनादि अनूप ।
आदि अव्यक्त अम्बिका पूरण अखिल लोक तव रूप ॥६३१॥
कृष्णचन्द्र के चरन कमल में सदा रहो अनुराग ।
ये ही पति नित होहिं हमारे जो पूरण मम भाग ॥६३२॥

हे देवी ! तुम अटल शक्ति हो, अविनाशी, अनादि और अनूप हो। आदि, अव्यक्त, जगदम्बा हो, सारा विश्व तुम्हारा ही रूप है। मेरा अनुराग तो श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों में ही है, यदि मेरे भाग्य पूर्ण हों, तो मैं यही चाहती हूँ कि ये ही मेरे पति हों।

तब उन कहेउ कृष्ण तुम्हरे पति ह्वै हैं अचल सुहाग ।
चली महावर पाय रुक्मिनी अति पूरन अनुराग ॥६३३॥

तब देवी ने आशीर्वाद दिया कि कृष्ण ही तेरे पति होंगे, तेरा सुहाग अचल हो। तब रुक्मिणी पांव में महावर लगाकर पूर्ण अनुराग से चली।

तब हरि आय बैठ रथ नीके आय मिले बड़ भाग ।
कर गहि बाँह लई रथ नीके अति आतुर चले भाग ॥६३४॥
मानो नील मेघ के संग में मिली दामिनी आय । उपमा
चले तुरत हरि पुरी द्वारका शंख चक्र धरि धाय ॥६३५॥

तब कृष्ण रथ पर बैठकर आ के मिले और हाथ पकड़ कर उसे रथ पर बिठा कर भाग चले। जब कृष्ण के साथ रुक्मिणी जा रही थी, तो वह ऐसी लग रही थी जैसे नीले बादल के साथ बिजली मिली हो। इस प्रकार शंख चक्र धारण करके द्वारका पुरी को चले गये।

दुष्ट नृपति को मान मथन करि चले द्वारका नाथ ।
जरासंध शिशुपाल आदि नृप पाछे लागे साथ ॥६३६॥
रथ पाछे मिलि शोभित यहि विधि सकल दुष्ट की स्वान ।
महासिंह निज भाग लेत ज्यों पाछे दौरे स्वान ॥६३७॥

इस प्रकार दुष्ट राजा का मान मर्दन करके द्वारकानाथ भगवान कृष्ण चले गये। उनके पीछे जरासंध और शिशुपाल आदि इस प्रकार दौड़े जैसे सिंह अपना भाग लेकर चले तो कुत्ते उसके पीछे दौड़ पड़ें।

हलधर आय दुष्ट सब मारे असुर नृपति की भीर ।
भाजि चले शिशुपाल जरासंध अति व्यापित तनु पीर ॥६३८॥

बलराम ने आकर दुष्टों को मार भगाया। उनकी मार से घबराकर जरासंध और शिशुपाल आदि भाग चले।

आये नाथ द्वारका नीकें रच्यो मांडवो छाय ।
व्याह केलि विधि रची सकल सुख सौंज गनी नहि जाय ॥६३९॥
ब्रह्मा रुद्रदेव तहं आये शुक नारद सनकादि ।
दरसन करि मंगल सुख कै सब मेटी विरह जो आदि ॥६४०॥
चैत्र मास पूनों को शुभ दिन शुभ नक्षत्र शुभ वार ।
व्याहि लई हरि देव रुक्मिणी बाढ़्यो सुख जो अपार ॥७४१॥

जब कृष्ण द्वारिका आये तो विवाह-मंडप रचा गया । फिर विवाह विधिपूर्वक बड़े आनन्द के साथ रचा गया । सुख-सामग्रियों की गणना नहीं की जा सकती । ब्रह्मा, नारद, सनकादि आये । सबने भगवान का दर्शन करके परमानन्द प्राप्त किया । चैत्र मास की पूर्णमासी के शुभ दिन और शुभ नक्षत्र में कृष्ण का रुक्मिणीजी से विवाह हुआ और अपार सुख लहराने लगा ।

विशेष—रुक्मिणी-परिणय में 'सारावली' की कथा में थोड़ा परिवर्तन किया गया है । भागवत तथा सूरसागर में रुक्मिणी ब्राह्मण को अपनी पत्री देकर कृष्ण के पास भेजती है और कृष्ण आकर रुक्मिणी का हरण करते हैं । 'सारावली' में कथा को अलौकिक रंगत देने के कारण नारद की अवतारणा है । नारद ही भीष्म से कृष्ण का परिचय देते हैं और वे ही कृष्ण को ले कर जाते हैं, विवाह के समय ब्रह्मा, शिव, शुक, नारद और सनकादि का प्रस्तुत होना ईश्वरत्व के प्रतिपादन में सहायक है । अतः 'सारावली' के दृष्टिकोण के अनुरूप होने के कारण कथा में परिवर्तन उचित ही है ।

जाम्ववन्ती और सत्यभामा-परिणय

यक सत्राजित यादव कहिये सूरजदेव उपास ।
दीन्हीं मणि आदित्य स्यमंतक कोटिक सूर्य प्रकाश ॥६४२॥

सत्राजित नाम का एक यादव सूर्यदेव का उपासक था । सूर्य ने उसे एक स्यमंतक मणि दी, जिसमें कोटिक सूर्य का प्रकाश था ।

आठ भार नित कनक देत है नृपति सुनी यह बात ।
तब उन मांगी इन नहिं दीन्हीं बाढ़्यो बैर अघात ॥६४३॥

वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी । यह बात राजा उग्रसेन ने सुनी । कृष्णजी ने राजा के लिए वह मणि सत्राजित से मांगी किन्तु उसने इस मांग को अस्वीकार कर दिया । इससे परस्पर में कुछ बैर-भाव हो गया ।

एक दिवस गया मृको निकस्यो कंठ महामनि नाय ।
तब उन सिंह मारि मनि लीन्हों ऋच्छ मिल्यो यक ताय ॥६४४॥
जाम्बवान महाबली उजागर सिंह मारि मणि लीन्हीं ।
पर्वत गुफा बैठ अपने गृह जाय सुता को दीन्हीं ॥६४५॥

एक दिन सत्राजित का भाई गले में मणि पहन कर आखेट के लिए निकला । एक सिंह ने उसको मार कर मणि ले ली । उसे रीछ जामवन्त मिल गया । उसने सिंह को मार कर मणि ले ली और पर्वत की गुफा में अपनी बेटी को मणि दे दी ।

चर्चा परी बहुत द्वारावति कृष्णचन्द्र की बात।
तब हरि गये शैल कंदर में अति कोमल मृदु गात ॥६७९॥

द्वारकापुरी में सत्राजित के मारे जाने की चर्चा चली। तब कृष्ण की भी बात उठी कि कृष्ण ने मणि मांगी थी अतः उन्होंने ही मणि के लिए सत्राजित को मार डाला होगा। यह सुनकर कृष्ण मणि की खोज में उस पहाड़ की गुफा में गये जहां जामवंत रहता था।

दिन अट्ठाइस युद्ध कियो जब ऋच्छ भयो बल भंग।
तब पग परेउ बहुत अस्तुति करि जानि राम यह संग ॥६४७॥

उन्होंने अट्ठाइस दिन तक जामवन्त से युद्ध किया तब जामवन्त का बल समाप्त हो गया। तब उसने कृष्णजी के पांव पकड़ लिए। वह जान गया कि ये तो उसके स्वामी रामचन्द्रजी ही हैं।

तब हरि कहेउ भक्त तू मेरो तासों करि संग्राम।
कीन्हें शुद्ध तत्व सब तनु के पूरन कीन्हें काम ॥६४८॥

तब भगवान् ने कहा तू मेरा भक्त है तुझ से युद्ध करके मैंने तेरे शरीर के सभी तत्वों को शुद्ध कर दिया, अब तेरे मनोरथ पूरे होंगे।

जाम्बवती अरपी कन्या अरि मणि राखी समुहाय ॥
करि हरि ध्यान गयो हरि पुर को जहाँ योगेश्वर जाय ॥६४६॥

उसने अपनी कन्या जामवन्ती को अर्पित किया और मणि को सम्मुख रखा। फिर भगवान् का ध्यान कर वह भगवान के लोक को चला गया जहां योगेश्वर लोग ही पहुंच पाते हैं।

लै स्यमतमणि जाम्बवती सह आये द्वारकानाथ।
अति आनन्द कुलाहल घर घर फूले अंग न समात ॥६५०॥

अब स्यमतक मणि को लेकर जामवन्ती के साथ कृष्ण द्वारका आये। अब तो चारों ओर आनन्द छा गया, घर-घर में कोलाहल होने लगा।

आश्विन सुदि नौमी को शुभ दिन हरि आये निज धाम।
तौलों घर घर प्रति दुर्गा को पूजन कियो सब काम ॥६५१॥

आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन भगवान अपने घर आये थे। तभी से अब तक उस दिन दुर्गा की पूजा घर-घर होती है।

सत्राजित अपनी तनया को दीन्हें त्रिभुवनराम।
सतभामा जु नाम तेहि कहियत शोभा कहो न जाय ॥६५२॥

अब सत्राजित ने अपनी पुत्री सत्यभामा को त्रिभुवन-पति श्रीकृष्णचन्द्र को ब्याह दी। इस समय की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता।

कीन्हों ब्याह परम आनंद सों सतभामा सुखराम।
द्वारावती विराजत नित प्रति आनंद करत विलास ॥६५३॥

भगवान् का विवाह सत्यभामा के साथ बड़े आनन्द और उत्साह के साथ हुआ। भगवान् द्वारावती में आनन्द-विलास करते हुए नित्य विराजमान हैं।

विशेष—'सूरसागर' दशमस्कंध पद ४१९० में यह कथा अत्यन्त संक्षेप और नीरस रूप में कही गयी है। 'सारावली' में जामवन्त द्वारा कृष्णजी को भगवान राम के रूप में देखने और भक्ति का वरदान मांगकर मोक्ष प्राप्त करने में 'सारावली' का दृष्टिकोण स्पष्ट है। सत्यभामा के विवाह के उपरान्त द्वारका में प्रभु के नित्य विहार की व्यंजना भी कवि ने प्रस्तुत की है।

श्रीकृष्ण के अन्य विवाह

इन्द्रप्रस्थ हरि गये कृपा करि पांडव कुल को तारि।
तहं कालिन्दी वन में व्याही अति सुन्दरि सुकुमारि ॥६५४॥

एक बार भगवान् इन्द्रप्रस्थ में पांडवों पर अनुग्रह करने के लिए पधारे। यहाँ सूर्यपुत्री कालिन्दी (यमुना) वन में मिलीं। (वे कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए तपस्या कर रही थीं।) उस अत्यन्त सुन्दरी सुकुमारी के मनोभाव के जानने पर कृष्णजी ने उसके साथ व्याह कर लिया।

मित्रविन्दा यक नृपति नन्दिनी ताको माधव व्याये ॥
सात वैल नाथन के कारण आप अयोघ्या आये ॥६५५॥
सत्या व्याहि वहुत सुख कीन्हों मथ्यो नृपति को मान।
आये फेर द्वारका मोहन मंगल केलि निधान ॥६५६॥

अवन्ती के राजा विन्द और अनुविद की वहिन मित्रविन्दा भगवान् कृष्ण को चाहती थी उसने स्वयंवर में इन्हें ही वरा था। कृष्ण ने उसकी इच्छा पूरी की और उसके भाइयों के विरोध करने पर उसे हर ले गये। अयोध्या के राजा ने अपनी पुत्री सत्या के स्वयंवर के लिए शर्त रखी थी कि जो सात वैलों को नाथ देगा उसी के साथ सत्या का विवाह होगा। सत्या हृदय से कृष्ण को ही वर चुकी थी। अतः कृष्ण जी वहाँ गये, वैलों को नाथा और सत्या के साथ विवाह करके द्वारका लौट आये।

भद्रा व्याहि आप जव आये द्वारवती आनन्द।
तैसेही लक्ष्मणा विवाही पूरन परमानन्द ॥६५७॥

कैकय देश की भद्रा और मद्र प्रदेश की लक्ष्मणा के साथ भी श्रीकृष्णचन्द्र ने विवाह किया।

विशेष—इन सवकी कथा भागवत दशमस्कंध अध्याय ५८ में मिलती है।

नरकासुर को मारि श्याम घन सोरह सहस त्रिय लाये।
एकहि लग्न सवन कर पकरे एक मुहूर्त विवाये ॥६५८॥

नरकासुर (भौमासुर) को भगवान् ने मार डाला। उसने अपने महल में सोलह हजार राजकुमारियों को वन्द कर रखा था। भगवान् ने इन सवको जव जेल से मुक्ति दिलाई तो उन्होंने इच्छा प्रकट की कि वे उन्हीं की पत्नी वनना चाहती हैं। तव भगवान् ने एक ही मुहूर्त में उन सोलह सहस्र राजकुमारियों से विवाह कर लिया।

नारद संशय

यह सुनि नारद अचरज पायो ब्रह्मलोक ते धाये।
कृष्ण चन्द्र के चरन परस कर बीना मधुर बजाये ॥६५९॥

जब नारद ने सुना कि श्रीकृष्ण ने सोलह हजार नारियों से विवाह कर लिया है और अष्ट पटरानियों के साथ उन्हें द्वारकापुरी में रखा है तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि एक कृष्ण इतनी नारियों के साथ किस प्रकार निर्वाह करते हैं। वे यह देखने के लिए ब्रह्मलोक से चल कर द्वारकापुरी पहुँचे। उन्होंने कृष्ण जी के चरण स्पर्श किये और वीणा बजाई।

तब हरि रीझे कहेउ नारद सों कही कहाँ ते आये।
तब उन कहेउ दरस को आयो बहुत रूप धरि ध्याये ॥६६०॥

तब कृष्ण जी प्रसन्न होकर बोले कि हे नारद जी ! तुम कहाँ से आ रहे हो। तब नारद जी कहा कि मैंने सुना कि आपने बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह किया है।

यह कौतुक देखन के कारण मैं आयो जो देखायो।
रूप अनंत आदि अविनासी दरसन प्रेम बढ़ायो ॥६६१॥

इसलिए यह लीला देखने के लिए ही मैं यहां आया हूँ। आप अनन्त और अविनाशी हैं इसलिए मुझे दर्शनों की अभिलाषा बढ़ी है।

तब हरि कहेउ जाव घर घर प्रति देखोगे सब ठौर।
मैं ही हौं सब घल परिपूरन मो बिन नाहिन और ॥६६२॥

तब कृष्ण ने कहा कि हे नारद जी ! तुम घर-घर में जाकर सब जगह देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि मैं ही सर्वत्र हूँ, मेरे बिना कोई स्थान नहीं है।

तब मुनि चले देख घर घर प्रति परम केलि सुख पायो।
नाना क्रीड़ा करत निरंतर घर घर रूप दिखायो ॥६६३॥

तब मुनि ने जाकर घर-घर में देखा और देखा कि भगवान् हर घर में क्रीडा कर रहे हैं। यह देखकर नारद जी को बड़ा सुख प्राप्त हुआ। घर-घर में भगवान् के नाना रूप हैं। वे सर्वत्र निरन्तर क्रीडा में मग्न हैं।

कहुं क्रीड़त कहुं दाम बनावत कहूं करत शृंगार।
कहुं बालकन खिलावत माधव खेलत परम उदार ॥६६४॥

कहीं वे क्रीड़ा कर रहे हैं, कहीं रस्सी बना रहे हैं, कहीं शृंगार कर रहे हैं। कहीं वे अपने बच्चों से खेल रहे हैं।

कहुं चौपर खेलत युवतिन संग पाँच सात उच्चार।
कहुं मृगया को चले अश्व चढ़ि श्री वसुदेव कुमार ॥६६५॥

कहीं युवतियों के साथ पासा खेल रहे हैं। कहीं शिकार के लिए जा रहे हैं।

कहुं कर लेकर शस्त्र संवारत कहुं कछु करत विचार।
कहुं कछु बात कहत सबहिन सों कहुं ध्वनि वेद विचार ॥६६६॥

कहीं शस्त्रों की देख भाल कर रहे हैं और कहीं विचार कर रहे हैं कहीं वेद-ध्वनि में मग्न हैं।

कहुं मिलि यज्ञ करत विप्रन संग अति आनंद मुरार ।
नाना दान देत हय गज भुव ऐसे परम उदार ॥६६७॥
कहुं गोदान करत कहुं देखे कहुं कछु सुनत पुरान ।
कहुं निर्तत सव देख वारवधु कहुं गंधर्व गुनगान ॥६६८॥

किसी घर में वे ब्राह्मणों के साथ यज्ञ कर रहे हैं और कहीं नाना प्रकार के दान—घोड़ा, हाथी, भूमि दे रहे हैं, कहीं गोदान कर रहे हैं तो कहीं पुराण सुन रहे हैं। कहीं वे नाचते हुए हैं और अप्सराएँ और गन्धर्व उनका गुणगान करते हैं।

कहुं जप करत सनातन निज वपु ब्रह्म करत कहुं ध्यान ।
कहुं उपदेश कहूं जैवे को कहूं दृढ़ावत ज्ञान ॥६६९॥

कहीं वे जप करते हुए, स्नान करते हुए या ध्यान करते हुए देखे गये। कहीं पर उपदेश करते हुए या कहीं जाने की तैयारी में हैं।

कहुं भोजन नाना रुचि माँगत पटरस के पकवान ।
आरोगत ब्रजराज सांवरो कहूं करत जलपान ॥६७०॥

कहीं भोजन करते हुए नाना प्रकार के पकवान मांग रहे हैं और कहीं जल-पान कर रहे हैं।

कहुं जागत दरसन दियो मुनि को करि पूजा परनाम ।
संध्या करत कहूं त्रिभुवन पति स्नान करत कोउ धाम ॥६७१॥

कहीं जग रहे हैं और मुनियों को दर्शन दे रहे हैं, कहीं पर सन्ध्या कर रहे हैं।

कहुं पौढ़े कमला के संग में परम रहस्य एकन्त ।
कहुं व्रत करत कहूं निगमन को ज्ञान कर्म को अन्त ॥६७२॥

कहीं लक्ष्मी के साथ लेटे हुए हैं, कहीं व्रत करते हुए और कहीं वेद का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

कतहुं श्राद्ध करत पितरन को तर्पण करि बहु भांति ।
कहुं विप्रन को देत दक्षिणा कहुं भोजन की पांति ॥६७३॥
कहुं सुगन्ध जगावत लैके कहूं अश्व शृंगार ।
कहुं गजरथ कहुं वाजिरथन सजि डोलत हैं गृहद्वार ॥६७४॥

कहीं श्राद्ध कर रहे हैं और पितरों का तर्पण कर रहे हैं और कहीं ब्राह्मणों को दक्षिणा दे रहे हैं और उन्हें पंक्ति में विठा कर भोजन करा रहे हैं। कहीं सुगन्ध लगाने में मग्न हैं और कहीं घोड़े, हाथी और रथ पर बैठे द्वार पर डोल रहे हैं।

कहुं ऊधो सों ब्रज सुख क्रीडा परम प्रेम उच्चार ।
कहुं पाण्डव की कथा चलावत चिन्ता करत अपार ॥६७५॥

किसी घर में उद्धव के साथ ब्रज सुखों की चर्चा कर रहे हैं और किसी घर में वे पाण्डवों के विषय में चिन्ता कर रहे हैं।

कहुँ मिलि विप्र करत सबहिन सों प्रालक करन सगाई ।
कहुँ सुत ब्याह कहूँ कन्या को देत दायजो राई ॥६७६॥

कहीं ब्राह्मणों से कह रहे हैं कि मेरे पुत्रों की सगाई की व्यवस्था करो। कहीं किसी पुत्र का विवाह हो रहा है अथवा किसी कन्या का दहेज दे रहे हैं।

कहुँ गजराज बाजि शृंगारे तापर चढ़े जु ग्राप ।
संग बलभद्र चमू सब संग लै चले असुर दल कांप ॥६७७॥

कहीं हाथी घोड़े पर सवार होकर बलराम और सेना के साथ असुर दलों पर आक्रमण कर रहे हैं।

कहुँ हस्तिनापुर देखन को मन में करत विचार ।
कतहूँ अर्घ्य देत सूरज को कहुँ पूजत त्रिपुरार ॥६७८॥

कहीं हस्तिनापुर जाने की तैयारी में हैं और कहीं सूर्य को अर्घ्य दे रहे हैं तथा कहीं शिव की पूजा कर रहे हैं।

कहुँ यक दुर्गा देवि जानिकें जोरी विप्र निजधाम ।
करत होम बहु भांति वेद ध्वनि सब विधि पूरण काम ॥६७९॥

कहीं दुर्गा जी की पूजा कर रहे हैं, तो कहीं हवन में लगे हैं और वेद ध्वनि हो रही है।

प्रथम पुत्र को ब्याह जानिकें पूजत कहुँ गणेश ।
कहुँ ऋषिन के चरण धोय कें सिर पर धरत नरेस ॥६८०॥

कहीं अपने पहले पुत्र के ब्याह में गणेश की पूजा कर रहे हैं और कहीं ऋषियों के चरण धोकर शिरोधार्य कर रहे हैं।

कहुँ ब्याह की केलि परम सुख निरखत मुनि सचु पायो ।
शेष सहस मुख पार न पावें बपु इक सूर जु गायो ॥६८१॥

कहीं ब्याह-क्रीड़ाओं में आनन्द पा रहे है। भगवान् के नाना चरित का वर्णन शेषनाग अपने सहस्र मुखों से नहीं कर सकते उसे सूरदास एक जिह्वा से भला कैसे गावें।

फिर मुनि आय भवन कमला के चरन कमल सिर नायो ।
मैं सब ठौर फिरेउँ तुम देखन कतहूँ पार न पायो ॥६८२॥

अन्त में नारद मुनि रुक्मिणीजी के घर लौट कर आये और कहा कि हे भगवान् मैं सर्वत्र घूमता फिरा पर कहीं आपका पार न पा सका।

नारद-स्तुति

जित तित देखौं तुम परि पूरन आदि अनंत अखंड ।
लीला प्रकट देव पुरुषोतम व्यापक कोटि ब्रह्मण्ड ॥६८३॥

जहाँ-जहाँ मैंने देखा, आपको पूर्ण पुरुषोत्तम, अनन्त और अखण्ड रूप में देखा। आपकी लीला ही सर्वत्र प्रकट है। आप सर्वव्यापक हैं और करोड़ों ब्रह्मांडों में व्याप्त हैं।

शिव विरंचि सनकादि महामुनि शेष सुरेस दिनेस।
इन सबहिन मिलि पार न पायो द्वारावती नरेस ॥६८४॥

शिव, ब्रह्मा, सनकादि श्रेष्ठमुनि, शेष, इन्द्र और सूर्य आदि सबसे मिलकर भी आपका पार नहीं पाया।

तुम्हरे चरन कमल की महिमा जानत हैं त्रिपुरारि।
प्रगट गंग पावन चरनन ते ताहि रहत सिर धारि ॥६८५॥

आपके चरणों की महिमा को शिवजी जानते हैं इसीलिए आपके चरणों से निकलने वाली गंगा को अपने शिर पर धारण किये रहते हैं।

पुनि गौतम घरनी जानत हैं नावक शबरी जान।
उद्धव विदुर युधिष्ठिर अर्जुन अरु भीषम सुरज्ञान ॥६८६॥

आपके चरणों की महिमा को अहल्या, केवट और शवरी, उद्धव, विदुर, युधिष्ठिर, अर्जुन और भीष्म जानते हैं।

हनूमान अरु भक्त विभीषण चरण कमल रज माँगी।
सोई कृपा करो करुनानिधि माँगत हौं अनुरागी ॥६८७॥

श्री हनुमान और विभीषण ने आपके चरण-कमलों की धूलि आपसे माँगी थी। हे दयानिधान! आप मुझ पर अनुग्रह करें, मैं भी आपसे भक्ति ही माँग रहा हूँ।

यह कहि कै मुनि लोक सिधारे बीन बजाय रिझाय।
ब्रह्मलोक पहुँचे छिनही में हरि आज्ञा को पाय। ६८८॥

यह कहकर के वीणा बजाकर उन्होंने भगवान् को प्रसन्न किया और अपने मुनि-लोक को चले गये। भगवान् की आज्ञा पाकर वे तुरत ही ब्रह्मलोक पहुँच गये।

विशेष—नारद-संशय की उपर्युक्त लीला इतनी विस्तार से 'भागवत' और 'सूरसागर' में भी नहीं है। इसका कारण यह है कि 'सारावली' के दृष्टिकोण के अनुकूल होने के कारण यहाँ इसका निरूपण पूर्णरूपेण हुआ है।

प्रद्युम्न-विवाह

पहिलो पुत्र रुक्मिणी जायो प्रद्युमन नाम धरायो।
कामदेव प्रगटे हरि के गृह पहिले रुद्र जरायो ॥६८९॥

रुक्मिणी को प्रथम पुत्र हुआ, उसका नाम प्रद्युम्न रखा गया। प्रद्युम्न उस कामदेव के अवतार थे जिसको भगवान् शंकर ने जला दिया था।

नारद जाय कह्यो शंवर सों तव रिपु वपु धरि आयो।
वेग उपाय करो मारन को प्रगट द्वारका आयो ॥६९०॥

नारद ने शंवर राक्षस से जाकर कहा कि तेरा शत्रु रूप मानव शरीर धारण करके द्वारकापुरी में प्रकट हुआ है अतः तुम उसको मारने का प्रयत्न करो।

तब शंवर भयभीत द्वारका गयो तुरत त्यहि काल।
हरि को चक्र देख रखवारी व्याकुल भयो विहाल ॥६९१॥

शंवर घबरा कर तुरन्त द्वारका आया। यहाँ पर प्रद्युम्न सो रहे थे और चक्र सुदर्शन उसकी रखवाली कर रहा था। ऐसा देखकर वह व्याकुल हो गया।

तब नारद मुनि ग्राय चक्र सों बात करन ठहरायो।
इतने मांझ पुत्र लै भाग्यो निधि में जाय दुरायो ॥६६२॥

तब नारद ने उस चक्र को अपने पास बुला कर बातों में लगा लिया और शंबर बालक को लेकर भाग चला और उसे ले जाकर सागर में छिपा दिया।

एक मीन ने भक्ष कियो तब हरि रखवारी कीनी।
सोई मत्स्य पकरि मीपुक ने जाय असुर को दीनी ॥६६३॥

एक मछली ने बालक को निगल लिया। फिर भी भगवान् ने उस बच्चे के प्राणों की रक्षा की। मछुए ने उस मछली को पकड़ कर शंबर को दे दिया।

तब उन कह्यो पाकशाला में अबहीं यह पहुँचाम्रो।
चीर्यो उदर पुत्र तब निकस्यो उन जान्यो मय नाम्रो ॥६६४॥
नारद कह्यो यही तव पति है याकूँ वेग बढ़ाय।
जो लों बड़ो होय तो लों यह असुरन मतिहि देखाय ॥६६५॥

उसने कहा कि मछली को तुरन्त पाकशाला मे पहुँचाम्रो। जब मछली का पेट चीरा गया तो उसमें से एक बालक निकला। असुर की दासी मायावती थी। उसने उसे जाना। उससे नारदजी ने कहा कि यही तेरा पति है। इसे पालो और जब तक यह बड़ा न हो, असुर को मत दिखाना।

सेवा कीनी बड़े भये जब समरथ बिपुल उदार।
महाबली प्रद्युम्न कृष्णसुत कीन्हों असुर सँहार ॥६६६॥
मारि असुर को ग्राय द्वारका कृष्ण चरन सिर नायो।
भीतर गये नये रुक्मिनि को सर्बहित कंठ लगायो ॥६६७॥

मायावती ने खूब सेवा की और वे सर्वथा समर्थ और बली हुए। (मायावती ने उन्हें बताया कि वे कामदेव हैं और वह उनकी पत्नी रति है तथा शंबर उनका शत्रु है) तब प्रद्युम्न ने शंबरासुर को मार डाला और उन्होंने अपनी पत्नी के साथ द्वारकापुरी आकर कृष्ण के चरण स्पर्श किये। जब भीतर गये तो रुक्मिणी ने दोनों को गले लगाया।

वर अरु वधू आय जब जाने रुक्मिनि करत बधाई।
रति अरु काम प्रगट तादिन ते कवि मिलि कीरति गाई ॥६६८॥

वर-वधू का रुक्मिणी ने स्वागत किया। फिर रति और काम प्रकट हुए। सूरदासजी ने उनकी कीर्ति गायी।

या विधि केलि करत द्वारावति पूरन परमानन्द।
महिमा सिन्धु कहाँ लग बरनौं सूर जु कवि मतिमंद ॥६६९॥

इस प्रकार पूर्ण परमानन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी द्वारकापुरी में हरि-लीला कर रहे थे। सूरदासजी कहते हैं कि मैं मतिमंद इनकी महिमा का कहाँ तक वर्णन करूँ।

विशेष—सूरदास जी प्रभु की महिमा कथा के अन्त में प्रकाशित करते जाते हैं, जो कि 'सारावली' का लक्ष्य है।

उषा-अनिरुद्ध-विवाह

पुनि अनिरुद्ध भेद नारद के चित्ररेखा हरि लीन्हों।
चार वर्ष अरु चार मास लौं ऊषा को सुख दीन्हों ॥७००॥
तब हरि जाय संग हलधर लै सब यादव दल जोर।
सबै भुजा करि दूरि असुर की चार हाथ दिये छोर ॥७०१॥

(अनिरुद्ध प्रद्युम्न के पुत्र थे। बाणासुर की पुत्री उषा ने एक दिन अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा। वह प्रेम-विह्वल होकर दुखी हुई। उसकी दासी चित्ररेखा ने सभी सुन्दर कुमारों का चित्र खींचा। उन चित्रों में अनिरुद्ध के रूप को देखकर उषा ने बताया कि यही उसका प्रिय है। चित्ररेखा द्वारावती गयी और उड़नखटोले पर अनिरुद्ध को उड़ा लायी। अनिरुद्ध एवं उषा दोनों अन्तःपुर में गुप्त रूप से रहने लगे। किन्तु जब सहवास के कारण उषा के शरीर में विकार दिखाई पड़ा तब बाणासुर ने घर में प्रवेश किया और अनिरुद्ध से युद्ध करने लगा।) नारद ने यह समाचार कृष्ण को बताया कि चित्ररेखा अनिरुद्ध को हर ले गयी है और चार वर्ष और चार मास तक अनिरुद्ध उषा के साथ सुख से रहे हैं। तब कृष्ण और बलराम अनिरुद्ध को छुड़ाने के लिए गये। बाणासुर ने युद्ध किया। भगवान् ने युद्ध में उसकी हजार भुजाओं को काट डाला, केवल चार हाथ छोड़े।

आये रुद्र पक्ष करि ताको युद्ध करत हरि साथ।
छिन में जीति वधू सुत लैकै आय द्वारकानाथ ॥७०२॥

शंकरजी बाणासुर की ओर से लड़ने आये। उन्हें भी कृष्ण ने हरा दिया और अनिरुद्ध और उषा के साथ द्वारका को वापस आये।

विशेष—अनिरुद्ध-विवाह अत्यन्त सहज रूप में कहा गया है। किन्तु इस विवाह के वे संदर्भ नहीं छोड़े गये हैं जिनमें ईश्वरत्व का उद्घाटन था। इसीलिए बाणासुर की भुजाओं को काटना तथा शिव को युद्ध में पराजित करना कहा गया है।

पौण्ड्रक-वध

पुनि यक दिवस सुधर्मा बैठे यादव सभा अपार।
उग्रसेन वसुदेव सात्यकी अरु अक्रूर उदार ॥७०३॥
इतने मांझ दूत एक आयो सबहिन कहि समुझायो।
वासुदेव नृप आज्ञा करके मोको वेगि पठायो ॥७०४॥
वासुदेव यह कहत वेद में प्रगट ब्रह्म अवतार।
सो तौ मैं ही प्रगट भयो भुव यहि विधि कह्यो अपार ॥७०५॥

एक दिन यादव सभा में धर्मात्मा उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकी और अक्रूर बैठे थे। इतने में एक दूत आया। उसने सबको सुना कर कहा कि राजा पौण्ड्रक अपने को वासुदेव कहता है। उसने आज्ञा दी है कि ब्रह्म का अवतार वासुदेव तो मैं हूँ, कृष्ण नहीं है। मैंने ही पृथ्वी का उद्धार किया है।

छन में जाय तुरत हरि मार्यो दीन्हीं मुक्ति कृपाल ।
फेर द्वारका तुरत पधारे गरुड़ चढ़े गोपाल ॥७०६॥

यह सुनकर कृष्ण ने पौण्ड्रक पर धावा किया और तुरन्त ही उसको मार डाला तथा गरुड़ पर चढ़ कर द्वारकापुरी में पहुँच गये ।

कृत्या-नाश

एक दुष्ट ने बहुत कियो तप सो रीझे त्रिपुरार ।
तब शिव ने उन कृत्या दीन्हीं बाढ़ो क्रोध अपार ॥७०७॥
कृत्या चली जहाँ द्वारावति हरि जानी यह बात ।
आज्ञा करी चक्र को माधव छिन कृत्या कर घात ॥७०८॥
काशी जाय जराय छिनक में गये द्वारका फेर ।
अति आनन्द परम सुख सों सब दिन बीतत रस टेर ॥७०९॥

पौण्ड्रक के मित्र काशीराज भी युद्ध मे मारे गये थे । उनके पुत्र सुदक्षिण ने बदला लेने के लिए शंकरजी की बड़ी तपस्या की । शिव प्रसन्न हुए और वरदान मे उन्होंने उसे कृत्या दे दी । भयकर अग्नि के रूप मे कृत्या द्वारकापुरी को चली । कृष्ण को यह मालूम हुआ तो उन्होंने चक्र सुदर्शन को भेजकर कृत्या का नाश करा दिया । चक्र-सुदर्शन काशी गया और सारी काशी को जलाकर द्वारका लौट आया । इसके बाद भगवान् ने बड़े आनन्द से दिन बिताये ।

विशेष—इस प्रकार 'सारावली' मे कतिपय प्रसंगों का निर्देश करके कृष्ण के अलौकिक कृत्यों का संकेत प्रस्तुत किया गया है । भागवत की कथाओं का विस्तार कवि को अपेक्षित नहीं था । 'सूरसागर' के उत्तरार्ध में भी इसी प्रकार संक्षेप में कथाएँ कही गयी हैं । दोनों का दृष्टिकोण समान है । सूरसागर मे कहीं-कहीं कथाओं का विस्तार है ।

कुरुक्षेत्र-मिलन

पुनि कुरुक्षेत्र गये यादव मिलि कियो तीर्थ अस्नान ।
यज्ञ होम करि पितर देवता विप्रन को बहु दान ॥७१०॥

फिर कृष्ण कुरुक्षेत्र में तीर्थयात्रा के लिए आये । यहाँ पर स्नान, यज्ञ, हवन करके देवो तथा पितरो का तर्पण किया और ब्राह्मणो को दान दिया ।

सूरज ग्रहण नृपन बहु जान्यो आय जुरी सब भोर ।
दर्शन भयो सबन को हरि को मिट्यो ताप तनु घोर ॥७११॥

सूर्य ग्रहण समझ करके बहुत से राजाओं की भीड़ यहाँ इकट्ठी थी । सबने भगवान के दर्शन किये और सबके कष्ट दूर हुए ।

भीष्म द्रोण अरु कर्ण युधिष्ठिर भीमार्जुन सहदेव ।
कुन्ती नकुल और गांधारी कृपो विदुर सह देव ॥७१२॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, सहदेव, कुन्ती नकुल, गाधारी, कृपाचार्य, विदुर तथा साथ मे देव लोग थे ।

दुर्योधन सब भ्रात संग लै धृतराष्ट्रहि लै आयो ।
नारद गौतम बाल्मीकि मुनि हरि दर्शन हित धायो ॥७१३॥
भारद्वाज मरीचि अंगिरा अत्रे मुनी अनन्त ।
पुलह पुलस्त्य अगस्त्य कश्यप पुनि अरु सनकादिक संत ॥७१४॥
हरि को दर्शन करि सुख पायो पूजा बहु विधि कीन्हीं ।
अति आनन्द भये तन मन में सौंज बहुत विधि दीन्हीं ॥७१५॥

दुर्योधन तथा उसके सभी भाई और धृतराष्ट्र आये थे । नारद, गौतम, वाल्मीकि, भारद्वाज, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अगस्त, कश्यप और सनकादि सन्तों ने श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन किया, सुख पाया और उनकी पूजा की। सबको परमानन्द की प्राप्ति हुई ।

विशेष—इतने अधिक राजाओं और ऋषियों का नाम कदाचित् इसलिए गिनाया गया है कि कृष्ण का बड़प्पन सिद्ध हो । सभी ने भगवान के दर्शनों से परमानन्द की प्राप्ति की है ।

राधा-मिलन और उनका महत्व-निरूपण

ब्रजवासी सब सखा संग के जसुमति अरु ब्रजराज ।
दरसन पाय बहुत सुख पायो सफल भये सब काज ॥७१६॥

ब्रजवासी कृष्ण सखाओं के साथ यशोदा और नन्द भी आये थे । इन लोगों ने कृष्ण के दर्शनों से बड़ा सुख पाया । इनकी मनोकामना पूर्ण हुई ।

जसुमति मात उछंग लगाये बल मोहन को आय ।
बाल भाव जिय में सुधि आई अस्तन चले चुचाय ॥७१७॥

यशोदा माता ने कृष्ण और बलराम को गले लगाया । बचपन की सुधि से आज उनका वात्सल्य उमड़ आया और स्तनों से दूध चुचाने लगा ।

गोपिन देखि कान्ह की सोभा बहुतहि मन सुख पायो ।
सघन निकुंज सुरति संगम मिलि मोहन कंठ लगायो ॥७१८॥

गोपियों ने कृष्ण के राजसी रूप को देखकर बड़ा सुख प्राप्त किया । उन्हें वृन्दावन के कुन्जों की संयोग-लीला की याद आ गई । कृष्ण ने उन्हें गले लगाया ।

रुक्मिनि कहत कमल लोचन सों राधा हमें देखावो ।
जाकी नित्य प्रसंसा तुम करि हम सबहिन कुं सुनायो ॥७१९॥

रुक्मिणी ने कृष्णजी से कहा कि हमें राधाजी के दर्शन कराओ जिनकी प्रशंसा आप नित्यप्रति हमें सुनाया करते हैं ।

विशेष—भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है । 'सूरसागर' में कुरुक्षेत्र के मिलन के अवसर पर 'सारावली' की उक्त पंक्तियों की भाँति ही रुक्मिणी राधा के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रगट करती है—

बूझति है रुकुमनि पिय इनमें को वृषभानु किसोरी ।
नेकु हमैं दिखरावहु अपनी बालापन की जोरी ॥
जाके गुनगनि ग्रन्थित माला, कबहुं न उर तें छोरी ।
मनसा सुमिरन रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत उत मोरी ॥

यह लखि युवति वृन्द में ठाढ़ी नील वसन तन गोरी ।
सूरदास मेरो मन थाको, चितवनि बंक हर्‌यो री ॥
सूरसागर द० स्कंध, ४२८६

तब वृषभानु सुता पगधारी रानिन मंडल मांझ ।
मनो सरस इन्दीवर फूले तामधि फूली सांझ ॥७२०॥

तब राधाजी रानियों के बीच में उपस्थित हुईं । उस समय उनकी शोभा इस प्रकार हुई जैसे जहाँ सुन्दर कमल फूले हों, वहाँ सन्ध्या शोभित हो जाय । सन्ध्या की लालिमा में कमल मुकुलित हो जाते हैं, इसी प्रकार राधा के प्रस्तुत हो जाने से कृष्ण की पटरानियों का मुख निस्तेज हो गया ।

देख तेज वृषभानु सुता को सबै भई छबि हीन ।
अति आनन्द मोद मन मान्यो हमहि कृतारथ कीन ॥७२१॥

राधाजी के तेज को देखकर सभी रानियाँ छविहीन हो गईं, पर उन्हें ईर्ष्या नहीं हुई । वे तो राधा से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं । उन्होंने कहा कि आज हम राधा से मिलकर कृतार्थ हो गयीं ।

तब हरि कह्यो मोहि राधा बिन पल छन कछु न सोहाय ।
सुनो रुक्मिनी कथा घोष की मो पै कहिय न जाय ॥७२२॥

तब कृष्ण ने कहा कि मुझे राधा के बिना एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता । हे रुक्मिणी ! सुनो गोकुल की कहानी तो मैं कह ही नहीं सकता ।

एक दिना वन में इन मोको अपनो सुधा पियायो ।
ताके बल गिरि गोवर्धन लै अपने हाथ उठायो ॥७२३॥

एक दिन इन्हीं ने मुझे अपना अधरामृत पिलाया था । उसी के बल पर मैंने गोवर्धन पहाड़ को उठा लिया था ।

अघ काली धेनुक दावानल प्रगट पूतना आई ।
इनकी कृपा सकल विघ्नन को छिन में दियो नसाई ॥७२४॥

व्रज में हमने अनेक राक्षसों का संहार किया था, यह सब इन्हीं की कृपा से ही हो सका था ।

नित्य-विहार-लीला का स्मरण

भाँति भाँति हरि मोहि सतायो सघन कुंज में जाय ।
ताकी कथा कहौं कह तुमसे मोपै कहिय न जाय ॥७२५॥

इन्होंने कुंज-कुंज में जाकर भाँति-भाँति से प्रेम किया था । उस नित्य-विहार की कथा मैं तुमसे कह नहीं सकता ।

रास केलि करि कौतुक कीन्हों होरी खेल खिलायो ।
मटुकि छुड़ाय लियो दधि बाँसन तउ कछु मन नहिं आयो ॥७२६॥

रासलीला करके तरह-तरह की क्रीड़ाएँ इन्होंने की थीं । होली का खेल खेलाया था । मैंने इनकी दही की मटकी छीनी । उसमें से दही गिर पड़ा, फिर भी इन्होंने बुरा नहीं माना ।

रत्न जटित पर्यंक द्वारका पौढ़त हैं सुख धाम ।
तोहू इनको ध्यान करत ही बीतत है सब याम ॥७२७॥

मैं रत्नजटित पलंग पर द्वारिका में सोता हूँ, फिर भी मैं तो केवल इनका ही स्मरण कर अपने आठों पहर बिताता हूँ।

इन बिन मोंहि कछू नहि भावै नन्दराय की आन ।
सुनो रुक्मिनी लोचन में ये बसी रहैं मम प्रान ॥७२८॥

मैं तो नन्दबाबा की कसम खा के कहता हूँ कि इनके बिना मुझे कुछ भी नहीं भाता । हे रुक्मिणी ! सुनो ये हमेशा मेरे प्राणों में बसी रहती हैं ।

जागत सोवत अरु वन डोलत भोजन करत बिहार ।
ध्यान करत नख सिख इनहीं को बसि द्वारका मंझार ॥७२९॥

जागते, सोते, वन में डोलते, भोजन अथवा विहार करते हुए द्वारिका में, मैं तो इन्हीं के नख-शिख का ध्यान करते हुए व्यतीत करता हूँ ।

तब मिलि रंग बहुत भांतिन सो कीन्हे विपुल विहार ।
ब्रज जन चले सकल गोकुल को दीन्हें दान अपार ॥७३०॥

उसके बाद उन्हीं के रंग में मिलकर भगवान ने अनेक प्रकार विहार किये । इसके उपरान्त ब्रजवासी कुरुक्षेत्र में दान आदि करके ब्रज को लौट गये ।

विशेष—'सारावली' में कवि जहाँ भी अवसर पाता है राधा-कृष्ण की नित्य-विहार लीला पर संकेत करता है और इसी को सर्वाधिक महत्त्व देता है । यहाँ राधा की जो प्रशंसा कृष्ण ने अपनी भार्याओं के बीच में की और राधा के साथ नित्य-विहार की महिमा गायी, वह सारावली के दृष्टिकोण के सर्वथा अनुकूल है । 'सूरसागर' में भी यही बात कही गयी है । अन्तर केवल यह है कि वहाँ कवि का दृष्टिकोण अधिक काव्यात्मक है अतः वर्णन अधिक मार्मिक है । किन्तु कुरुक्षेत्र में राधा-कृष्ण-मिलन सूरदासजी की एक मौलिक कल्पना है । दोनों ग्रंथों में मूल वस्तु की एकरूपता यह सिद्ध करती है कि दोनों ही रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं ।

चले द्वारका यदुकुल सब मिलि भयो कुलाहल भार ।
पहुंचे आय द्वारका सन्मुख घर-घर मंगलचार ॥७३१॥

सभी यदुवंशी द्वारका को चले, वहाँ शोर हुआ । ये द्वारका वापस आये और घर-घर में मंगलाचार हुए ।

पांडवों के राजसूय यज्ञ में कृष्ण का सम्मान

कियो विचार यज्ञ को राजा राजसूय जिय जानि ।
कृष्णचन्द्र को वेगि बुलाओ संग सकल पटरानि ॥७३२॥
आये इन्द्रप्रस्थ सब यदुकुल महा महोत्सव मान ।
जुरे भूप बहु सकल देस के हरि दरसन जिय जान ॥७३३॥
चारों भ्रात चारि दिसि जीती भारत वही वखान ।
ठौर ठौर के नृप सब आये लै उपहार प्रमान ॥७३४॥

बड़ो जग्य राजसू रचायो जुरे विप्र बहु भारी ।
महा भाग्य राजा जु युधिष्ठिर जहँ माधव अधिकारी ॥५३५॥

राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया । उन्होंने पटरानियों समेत कृष्णजी को बुलवाया । यदुकुल के सभी श्रेष्ठजन यज्ञ को बड़ा महोत्सव समझ कर आये । साथ ही सभी देश के राजा लोग कृष्ण के दर्शन के निमित्त आये । युधिष्ठिर के चारों भाइयों ने चारों दिशाओं को जीत लिया । इसीलिए जगह-जगह के राजा उपहार ले लेकर वहां उपस्थित हुए । महाभाग युधिष्ठिर यज्ञ कर रहे थे । उसमें श्री कृष्णचन्द्र जी अधिकारी थे ।

सबहिन कह्यौ प्रथम पूजा अब कहौ कौन की कीजै ।
सबमें बड़ो कौन भुवपति है जाहि अर्चना दीजै ॥५३६॥
तब सहदेव कह्यौ सबहिन सों सुनो नृपति मन लाय ।
पूजा योग प्रगट पुरुषोतम कृष्णचन्द्र यदुराय ॥५३७॥
सबहिन कह्यो साधु यह बानी सुर मुनि मनुज सराई ।
यक शिशुपाल दुष्ट नृप कहिये सुनतहि उठ्यो रिसाई ॥५३८॥

सबने विचार किया कि इस यज्ञ में सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाय । सबसे बड़ा महाराज कौन है जिसकी अर्चना की जाय ? तब सहदेव जी ने कहा कि हे राजन् मेरी बात सुनिए । पूजा के योग्य तो पुरुषोत्तम के प्रगट रूप यदुराय श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं । सबने कहा कि यह अत्युत्तम है । सभी सुर-नर-मुनियों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया । केवल एक दुष्ट राजा शिशुपाल ऐसा था, जो इस प्रस्ताव को सुनकर क्रुद्ध हो उठा ।

शिशुपाल-वध

गोकुल नन्द अहीर गोप गृह पय पिय के यह जीयो ।
दधि जु चुराय खाय वृन्दावन चरित विषम बहु कीनो ॥५३९॥
मातुल मारि बहुत अघ कीन्हें कहँ लौं करौं बड़ाई ।
वृन्दावन गोवर्द्धन कुंजन लूटी नारि पराई ॥५४०॥
बन बन गाय चरावत डोलत कांधे कमरिया राजे ।
लकुटि हाथ गरे गुंजमाला अधर मुरलिका बाजे ॥५४१॥
ऐसे ख्याल करे इन बहुविधि कहत जु आवे लाज ।
वेद विदित सुन काज बिगारे कहवाये ब्रजराज ॥५४२॥
जग्य करत विप्रन मथुरा में जांचे भीख न दीन्हीं ।
अरपन कियो नहीं देवन को पहिले इन मति कीन्हीं ॥५४३॥
माखन चोर चोर गोपिन को दूध जु दधि लै खायो ।
यमुना न्हात गोप कन्यनि को लै पट कदम चढ़ायो ॥५४४॥

शिशुपाल कृष्ण के लिए कटु वचन कहने लगा—कि कृष्ण तो गोकुल के अहीर वंश का है । इसका ग्वालों के घर से दूध मांग-मांग कर हुआ है । वृन्दावन में दही चुरा-चुरा कर खाता था और अनेक कुकर्म वहां पर इसने किए हैं । इसने [illegible] को मारकर बड़ा पाप किया है । इसने वृन्दावन के कुंजों में पराई नारि

यह कंधे पर कमरी लेकर वन-वन गायें चराता था। हाथ में लकुटी लेकर, गले में गुंजा की माला पहनकर बांसुरी बजाया करता था। इसने ऐसे तरह-तरह के कार्य किये हैं कि कहते हुए भी लज्जा लगती है। इसने वेद विहित इन्द्र की पूजा बन्द की और नन्दजी को बहका दिया। इसने मथुरा के यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों से भीख मांगी पर उन्होंने नहीं दी। बात यह है कि जब तक उन्होंने देवों को अर्पण नहीं किया था तब तक वे इसे कैसे दे सकते थे। यह तो मक्खन का चोर है। गोपियों का दूध-दही चुराया करता था। गोपियाँ यमुना में स्नान कर रही थीं, तो यह उनके वस्त्र चुरा कर कदम्ब पर चढ़ गया।

काली हरि की आज्ञा को लै यमुना मांझ बसायो।
ताहि निकाल दियो छिनही में नेक सँकोच न आयो ॥७४५॥

हरि की आज्ञा मानकर कालीनाग यमुना में निवास कर रहा था, इसने उसको क्षण में ही निकाल दिया। इसे जरा भी संकोच नहीं लगा।

यक पूतना पयपान करावन प्रेम सहित चलि आई।
ताहि लगाय हृदय लपटानो प्रान जो लिये चुराई ॥७४६॥

एक पूतना नारी थी कि उसने प्रेम से अपना दूध पिलाना चाहा। वह प्रेम से आयी थी। उसने इसे हृदय से लिपटाया था और इसने उसका प्राण ही हर लिया।

जन्म होत इन मात तात को तबहीं बन्धन दीन्हौं।
यादव जात भाज जित तितको अनत जाय सुख कीन्हों ॥७४७॥

इसने जन्म के साथ ही अपने माता-पिता को जेल में बँधवा दिया। यादव लोग जहां-तहां भाग गये और इसने अन्यत्र (गोकुल में) जाकर सुख किया।

वेनु बजाय रास इन कीन्हों मुग्ध गोपकी नारी।
परनारी को दोष कछू चित इन नहिं कीन्ह विचारी ॥७४८॥

बांसुरी बजाकर इसने रास किया और गोपियों को मोहित कर लिया। इसने परनारी-गमन के दोष को तनिक भी नहीं विचारा।

दूध दही के भाजन चाटे नेकहु लाज न आई।
माखन चोर फोरि मथनी को पीवत छाछ पराई ॥७४९॥

इसने दूध दही के बर्तन चाटे, इसे जरा भी लज्जा नहीं लगी। इस मक्खन-चोर ने दूध के बर्तन फोड़े और दूसरों की छाछ पी गया।

छाक खाय जूठन ग्वालन को कछु मन में नहिं मान्यो।
परदारा के संग जाय निसि कुब्जा सों सुख मान्यो ॥७५०॥

इसने ग्वालों की जूठी छाछ खाई और मन में कुछ भी नहीं समझा। फिर पराई नारि कुब्जा से जाकर इसने मिलाप-सुख भोग किया।

बहुत प्रीति करि गोपन जाने बहुविधि लाड़ लड़ायो।
ताको जतन कछू नहिं मान्यो मथुरा में चलि आयो ॥७५१॥

बेचारे गोपों ने इससे इतना प्यार किया था, पर इसने उन सबको भुला दिया

और मथुरा चला आया।

जरासंध इन बहुत बार ही करि संग्राम पलायो।
हमरे डरकर दोऊ भाई नगर समुद्र बसायो ॥७५२॥

जरासंध ने इसे अनेक बार युद्ध में भगा दिया। हमारे डर से ही दोनों यादवों ने समुद्र में नगरी बसाई है।

कालयवन के आगे भाज्यो जाय गुफा गहि लीन्हीं।
लात मारि मुचकुन्द जगायो नेकु दया नहिं कीन्हीं ॥७५३॥

कालयवन के आगे से यह भाग निकला और गुफा में जाकर छिप गया। लात मार कर उसने सोते हुए मुचुकुंद को जगवा दिया, इसे उस पर जरा भी दया नहीं आई।

बातें बहुत याहि की लंपट सभा मांझ नहिं कहिये।
जिय में समुझ आपने सन्मुख मुख ते चुप करि रहिये ॥७५४॥

इस लंपट की बहुत बातें हैं, सभा में क्या कहें, जी में ही समझ कर चुप रहना ठीक है।

अतिशय क्रोध भये पांडव सुत और नृपति हरिदास।
ताते बरज सबन को माधव नेक न भये उदास ॥७५५॥
अति ही भई अवज्ञा जानी चक्र सुदर्शन मान्यो।
करि निज भाव एक शत्रुन में छिनक दुष्ट सिर भान्यो ॥७५६॥

उसकी ये बातें सुनकर पांडव लोग बड़े ही क्रुद्ध हुए और भी जो हरिभक्त राजा थे, क्रोधित हुए। किन्तु कृष्ण ने सबको रोक रखा और स्वयं तनिक भी उदास नहीं हुए। जब उन्होंने समझा कि उसने काफी अपमान कर लिया तब चक्र सुदर्शन को लिया और उसमें शत्रुभाव मानकर क्षण भर में ही उसका सिर काट डाला।

परम कृपाल दयाल देवकी नन्दन पावन नाम।
दीनी मुक्त दया करिकें तब दियो लोक निज धाम ॥७५७॥

किन्तु वे तो परमब्रह्म हैं, उनका देवकीनन्दन नाम बड़ा पवित्र है। उन्होंने दया करके उसे मुक्ति दी और स्वर्ग में उसे निवास दिया।

जै जैकार भयो वसुधा पर राज जुधिष्ठिर हरषे।
अमृत स्नान कराय वेद विधि कनक कुसुम सिर बरषे ॥७५८॥

पृथ्वी में जय-जयकार हुआ, राजा युधिष्ठिर हर्षित हुए। उन्होंने वेद-विधि से सुन्दर स्नान कराके स्वर्ण-पुष्पों की वर्षा उनके सिर पर की।

द्रौपदी-रक्षा

दीन्हीं सभा बनाय पांडु को मय माया गत अन्त।
ताको देख भ्रमे दुर्योधन महामोह मति मंद ॥७५९॥
जल में थलमति थल में जलमति भई नृपति को जान।
अंध पुत्र लखि हँसे पवनसुत सुन जिय में रिस मान ॥७६०॥

मयदानव ने पांडवों का बड़ा अद्भुत महल बना दिया था। उसे देखकर महा-मोहमंद दुर्योधन की बुद्धि भ्रम में पड़ गई। उसने जल को थल समझा और थल को

जल। ऐसा देखकर भीम ने कहा कि अंधे का पुत्र तो अंधा ही होता है और वे हँस पड़े। इससे दुर्योधन को बड़ा क्रोध आ गया।

गयो भवन अकुलाय बहुत जिय क्रोधवंत अभिमानी।
ताही दिन ते पांडु पुत्र सों बैर विषम गति ठानी ॥७६१॥

दुर्योधन घर पर गया, किन्तु अभिमानी होने से मारे क्रोध से व्याकुल हो उठा। उसी दिन से उसने पांडवों से कठिन वैर ठान लिया।

सभा रची चौपर क्रीड़ा करि कपट कियो अति भारी।
जीत जुधिष्ठिर भइ सब जानी तउ मन में अधिकारी ॥७६२॥
जुवती धरी जान दुष्टन ने जब द्रौपदी बुलाई।
हरि को सुमिरन करत पंथ में दुश्शासन गहि लाई ॥७६३॥

उसने सभा में चौपड़ का खेल कराया। उसमें कपट करके युधिष्ठिर का सब कुछ जीत लिया। तब मन में अधिकारी मानकर उन्होंने युवती द्रौपदी को बुलवाया। दुश्शासन द्रौपदी को पकड़े ला रहा था और वह रास्ते में भगवान को स्मरण कर रही थी।

अहो नाथ ब्रजनाथ नाथ निज यदुकुल के निज नाथ।
गोकुल नाथ नाथ सब जन के मोपति तुम्हरे हाथ ॥७६४॥

हे ब्रजनाथ! आप तो अनाथों के नाथ हैं, हे यदुनाथ, गोकुलनाथ, सब के नाथ, अब तो मेरी लज्जा आपके हाथ है।

ज्यों गजराज बचायो जल में नेक विलंब न कीन्ही।
अपनो भक्त बचावन कारन विष अमृत करि दीन्हीं ॥७७५॥

हे प्रभु! आपने गजराज की पुकार पर उसे जल में बचाया था। तनिक विलम्ब नहीं किया। अपने भक्त को बचाने के लिए आप विष को अमृत कर देते हैं।

सिवरी गीध और पशु पक्षी सबकी रक्षा कीनी।
अब तो सहाय करो तुम मेरी हौं पांवर मति हीनी ॥७६६॥

आपने शबरी, जटायु और पशु-पक्षियों तक की रक्षा की है। अब तो आप मुझ जैसी पामर और मतिहीना की रक्षा कीजिए।

चौपर खेलत भवन आपने हरि द्वारका मंझार।
पांसो डारि परम आतुर सों कीन्हें अनत उचार ॥७६७॥
चीर बढ़ाय दियो बहु तेहि छिन ऐंचत पार न पायो।
भीष्म द्रोण अरु करनहि जुधिठर सब विस्मय मन लायो ॥७६८॥

इस समय कृष्ण द्वारका में अपने भवन में चौपड़ खेल रहे थे। उन्होंने बड़ी आतुरता से पांसे डाल दिये। अन्यत्र द्रौपदी का उच्चारण सुना। तुरन्त उन्होंने द्रौपदी के चीर को बढ़ा दिया। दुश्शासन खींचते-खींचते हार गया, पर चीर न खींच सका। यह देखकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और युधिष्ठिर आदि विस्मय में पड़ गये।

रहेउ दुष्ट पचिहार दुशासन कछू न कला चलाई।

बैठो आय सभा में पाछे बार बार पछिताई॥७६९॥

दुष्ट दुश्शासन परिश्रम करके हार गया। उसकी एक भी कला काम न कर सकी। बाद में हार कर सभा में बैठ गया और बार-बार पछताया।

फिर द्रौपदी भवन में आई श्री हरि लज्जा राखी।

वेद पुराण तंत्र भारत में कही बहुतविधि भाखी॥७७०॥

फिर द्रौपदी घर में आई। भगवान ने उसकी लज्जा रख ली। वेद, पुराण और तंत्र आदि में भगवान की अनेक प्रकार से प्रशंसा कर रखी है।

पांडव-सहाय

पुनि वनवास दियो पांडव सुन हरि द्वारका में जानी।

अक्षय पात्र दिवायो रवि पै बड़े भक्त सुखदानी॥७७१॥

फिर कृष्ण को द्वारका में खबर मिली कि पांडवों को वनवास भेज दिया गया। (वनवास में दुर्योधन की चतुराई से एक दिन दुर्वासा अपने बहुत से शिष्यों के साथ युधिष्ठिर के अतिथि बन गए।) तब भगवान ने सूर्य के द्वारा द्रौपदी को अक्षय-पात्र दिलवा दिया।

दुरवासा शापन को आये तिनको कछु न चलाई।

अक्षय कियो कमल दल लोचन भक्तन भये सहाई॥७७२॥

उसके कारण सभी अतिथियों का भोजन पूर्णरूपेण हुआ। दुर्वासा आये तो शाप देने के लिए थे पर उनकी कुछ न चली। भगवान ने पात्र को अक्षय कर दिया, वे तो भक्तों के सहाय हैं।

पांडव कुल के सहाय भये हरि जहँ तहँ संगहि डोले।

. दुर्योधन सों कहेउ दूत ह्वै भक्त पच्छ दृढ़ बोले॥७७३॥

वे पांडवों के सहाय बने और हमेशा अदृश्य रूप में उनके साथ चला करते थे। वे दुर्योधन के पास गये और वे भक्तों के पक्ष में बोले।

पाँच गाँव पांडव को दीजै सुनौ नृपति मम बात।

और राज सब तुमहीं करिये निपट जगत विख्यात॥७७४॥

उन्होंने कहा कि हे राजा! मेरी बात सुनो। पांडवों को पाँच गाँव दे दीजिए, शेष सब पर आप राज्य करें।

प्राची और प्रतीचि उदीची और अवाची मान।

इन्द्रप्रस्थ बीच में दीजै और राज सुख जान॥७७५॥

सुनि कै क्रोध भयो दुर्योधन सब पांडव को राज।

तुमरो कुल सब नास होयगो कहि जो चले व्रजराज॥७७६॥

ये पाँच गाँव हैं—प्राची, प्रतीची, उदीची, अवाची और सबके बीच का इन्द्रप्रस्थ। यह सुनकर दुर्योधन क्रोधित हो गया। उसने कहा कि सारा राज्य मेरा है। तब कृष्ण यह कह कर चल पड़े कि तेरे कुल का नाश हो जायेगा।

बहुत दुःख दीन्हो पांडव को अब लौं मैं सहि लीन्हों ।
लाख भवन वैठार दुष्ट ने भोजन में विष दीन्हों ॥७७७॥

दुर्योधन ने पांडवों को वड़ा दुख दिया । अव तक तो मैंने यह सव बरदाश्त कर लिया, वेचारे वन-वन फिरे । उन्हें लाक्षागृह में विठाया, भोजन में विप दिया ।

वन वन फिरे अर्क तूलन ज्यों वास विराटहि कीन्हों ।
अन्तहि गुप्त रहे तापुर में भेद काहु नहि दीन्हों ॥७७८॥

वेचारे वन-वन इस प्रकार फिरते रहे जैसे आक की रुई इधर-उधर उड़ती रहती है । उन्होंने विराट के यहाँ एक वर्ष का अज्ञातवास भी किया ।

जुरे नृपति अक्षोन अठारह भयो युद्ध अति भरी ।
रथ हांकत गोविंद अर्जुन को दीन्ह शस्त्र सव डारी ॥७७९॥

अन्त में महाभारत हुआ और अठारह अक्षौहिणी राजा एकत्र हुए । कृष्ण ने अर्जुन का रथ हाँका और जव उन्होंने अस्त्र रख दिये तो भगवान ने उन्हें गीता का उपदेश देकर युद्ध की प्रेरणा दी ।

भीष्म-प्रतिज्ञा

करी प्रतिज्ञा कहेउ भीष्म मुख पुनि पुनि देव मनाऊँ ।
जो तुम्हरे कर शर न गहाऊं गंगा सुत न कहाऊँ ॥७८०॥

एक वार भीष्म पितामह ने प्रतिज्ञा की कि हे देव ! यदि मैं आपको शस्त्र न धारण करा दूं तो मैं गंगासुत न कहलाऊँगा ।

चढ़े प्रवल दल दोउ ओर के विच अर्जुन रथ ठाढ़ो ।
इत पारथ गांगेय वली उत जुरो युद्ध अति गाढ़ो ॥७८१॥
दश दिन लरे वली गंगा सुत श्याम प्रतिज्ञा जानी ।
सत्य वचन हरि कियो भक्त को निगम झूठ कर वानी ॥७८२॥
धरि रथ चक्र श्याम निज कर में जवहिं भीष्म पर डारो ।
शीतल भई चक्र की ज्वाला जव सिर तिलक निहारो ॥७८३॥

दोनों ओर की सेना इकट्ठी थी । वीच में अर्जुन का रथ था । युद्ध हो रहा था । इधर अर्जुन थे, उधर भीष्म । दस दिन तक भीष्म लड़ते रहे । भगवान ने भीष्म की प्रतिज्ञा की याद की । उन्होंने अपने भक्त भीष्म की वात सत्य की । वेद की वात अर्थात् भगवान ने अपनी प्रतिज्ञा मिथ्या कर दी । उन्होंने रथ का पहिया लेकर भीष्म के ऊपर फेंकना चाहा । पर ज्यों ही उन्होंने भीष्म के मस्तक का तिलक देखा, उन्हें शान्ति मिली ।

धन्य धन्य कहि परे आय पग गुणनिधान गंगेव ।
तव हरि कहेउ विपुल वल तुम्हरे जीति लिये सव देव ॥७८४॥

भीष्म पितामह धन्य-धन्य कह कर भगवान के पाँवों पर पड़ गये । तव कृष्ण ने कहा कि तुम वड़े वली हो, तुमने सभी देवताओं को जीत लिया ।

तब उन कहेउ चरन अपने में राख्यौ निसि दिन ध्यान ।
मोरि प्रतिज्ञा तुम राखी है मेटि वेद की कान ॥७८५॥
डारि सस्त्र सर सेज्या सोये हरि चरनन चित लायो ।
उत्तर दिसि रवि जान देह तजि महा परम पद पायो ॥७८६॥

तब भीष्म ने कहा आप मुझे अपने चरणों में सदा रखिए । आपने मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा की और वेद की मर्यादा को मिटा दिया । फिर उन्होंने शस्त्र को छोड़कर शर-शय्या ले ली, वे भगवान के चरणों मे लीन हो गये । जब सूर्य उत्तरायण हुए तब शरीर छोड़ कर उन्होंने परम पद प्राप्त किया ।

युधिष्ठिर का राजतिलक

नृपति जुधिष्ठिर राजतिलक दै मारि दुष्ट की भीर ।
द्रोण करन अरु शल्य मुक्त करि मेटी जग की पीर ॥७८७॥
गोविन्द आय द्वारका निज गृह अति आनन्द बढ़ायो ।
घर घर मंगल महा कुलाहल यदुकुल होत बधायो ॥७८८॥

दुष्टों की भीड़ को मार कर भगवान ने युधिष्ठिर का राजतिलक किया । द्रोण, कर्ण और शल्य आदि को मुक्ति दी और संसार का कष्ट दूर किया । क्योंकि धर्मराज्य की स्थापना हो गयी । अब भगवान अपने घर द्वारिका आये और आनन्द मे घर-घर में मंगल-गान होता रहा ।

शाल्व-वध

साल्व नृपति तप किय चंचलता तापै यह बर पायो ।
दियो बनाय नगर गोपुर में काहू न जात लिखायो ॥७८९॥

शिशुपाल का मित्र शाल्व राजा कृष्ण का शत्रु था । उसने शिशुपाल का बदला लेने के उद्देश्य से भगवान शंकर की आराधना की । शंकर के वरदान से उसने ऐसा विमान पा लिया, जो आकाश मे एक नगर था । उसे कोई तोड़ नहीं सकता था ।

आय द्वारका सोर कियो उन हरि हस्तिनपुर जाने ।
प्रद्युमन लरे सप्त दस दो दिन रंच हार नहि माने ॥७९०॥

उसने जाना कि कृष्ण तो हस्तिनापुर गये हैं । इसलिए उसने द्वारका पर चढ़ाई कर दी । प्रद्युम्न उससे सत्ताईस दिन तक लड़ते रहे । उन्होंने हार नहीं मानी ।

हरि अपसगुन जानि हस्तिनपुर बैठ तुरत रथ धाये ।
बहुत देस को पावन करि करि साँझ द्वारका आये ॥७९१॥
कीन्हों युद्ध आय साल्व सों उन बहु माया कीन्हीं ।
जल मे थल थल में जल देखी स्याम दूर करि दीन्हीं ॥७९२॥

कृष्ण के हस्तिनापुर मे अपशगुन होने लगे । इसलिए वे हस्तिनापुर से चल पड़े और सायंकाल तक द्वारिका पहुँच गये । उन्होंने शाल्व से युद्ध किया । शाल्व ने तरह-तरह की माया की । जल मे थल और थल में जल दिखाता था । किन्तु कृष्ण ने उसकी सारी माया नष्ट कर दी ।

माया दूर करी नंदनंदन चक्र दियो सिर डार ।
छिनहीं माँझ दुष्ट संहारो भुव को भार उतार ॥७९३॥

माया नष्ट करके उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र उसके सिर पर चला दिया, दुष्ट क्षण भर में मारा गया और पृथ्वी का भार हल्का हुआ ।

जय जयकार करत देवांगन बरषत कुसुम अपार ।
कियो प्रवेस द्वारका मोहन घर घर मंगलचार ॥७९४॥

देवताओं ने जय-जयकार किया और पुष्प वर्षा की । कृष्ण ने द्वारका में प्रवेश किया और घर-घर में मंगलाचार हुए ।

जरासंध-दंतवक्र आदि का वध

राजसूय करवाय स्यामघन जरासंध मरवायो ।
दन्तवक्र महिपाल महाबल विदुरथ प्राण नशायो ॥७९५॥

युधिष्ठिर के राजसूय के उपरान्त जरासंध को मरवा डाला । दंतवक्र और विदूरथ को भी मार डाला ।

देवकी के पुत्रों का लाना

बालक मृतक देवकी माँगे सो छिन में हरि लाये ।
दीन्हों दरस भक्त नृप बलि को तन के ताप नसाये ॥७९६॥
बालक आय देवकी जाने अस्तन पान कराये ।
हरि को शेष पान करि कै वे हरि के पद पहुँचाए ॥७९७॥

एक दिन देवकीजी ने कहा कि वे अपने मृत पुत्रों को देखना चाहती हैं । भगवान सुतल लोक में गये, जहां बलि रहते थे । बलि ने भगवान की पूजा की और देवकी के पुत्रों को दे दिया । देवकी ने अपने पुत्रों को देखकर अपने स्तन से दूध पिलाया । इसके बाद उनको भगवान ने उनके लोक में पहुँचा दिया ।

जनक-मिलन

एक दिना यदुनाथ संग सब विप्र मंडली लीन्हें ।
मिथिला चले जनक राजा पै दरश कृपा करि दीन्हें ॥७९८॥

एक दिन कृष्णजी ब्राह्मणों को साथ लेकर मिथिला को चल पड़े । वे राजा जनक को दर्शन देकर उन पर कृपा करना चाहते थे ।

तहां बसत श्रुतदेव महामुनि सुनि दर्शन को धायो ।
तब उन कहेउ चलौ मेरे गृह हरि स्वीकार करायो ॥७९९॥
नृपति कह्यउ मेरे गृह चलिए करो कृतारथ मोय ।
ताहू पै हरि आप पधारे प्रगट धरे वपु दोय ॥८००॥

वहां श्रुतदेव ऋषि रहते थे । वे कृष्ण को आया सुनकर दर्शन के लिए दौड़े । ऋषि ने प्रार्थना की कि आप मेरे घर चलिए । कृष्णजी ने स्वीकार कर लिया । उसी समय राजा जनक ने भी अपने घर चलने की प्रार्थना की । कृष्ण ने उसे भी स्वीकार कर लिया । इस प्रकार दो शरीर धारण करके उन्होंने दोनों को एक साथ ही कृतार्थ किया ।

देख चरित्र विनोद तात के विस्मित भे द्विजराय।
अद्भुत केलि कृपा करि कीन्ही द्विज को मान दृढ़ाय ॥८०१॥
बहुत दिवस लों कृपा करी हरि जनक राय सुख दीन्हों।
बहुरि पधारे पुरी द्वारिका जदुकुल में सुख कीन्हों ॥८०२॥

श्रुतदेव ऋषि इस प्रकार का चरित्र देखकर बड़े विस्मित हुए। इस अद्भुत लीला से ब्राह्मण का मान दृढ़ हो गया। बहुत दिन तक उन्होंने राजा जनक को सुख दिया। फिर द्वारका पधार कर यदुवंशियों को सुख दिया।

सुभद्रा-विवाह

बहिन सुभद्रा ब्याह विचारो हरि अर्जुन चित धारो।
श्री बलदेव कह्यउ दुर्योधन नीको दुलह विचारो ॥८०३॥

कृष्ण ने बहिन सुभद्रा के विवाह के लिए अर्जुन को चित्त में स्थिर किया। किन्तु बलराम ने कहा कि दुर्योधन अच्छा वर रहेगा।

हरि को भेद पायके अर्जुन धरि दंडी को रूप।
भिक्षा को निज भवन बुलायो श्री बलभद्र अनूप ॥८०४॥
नयनन मिलत हाई कर गहिकें फाल्गुन चले पराय।
सुनि बलदेव क्रोध अति बाढ्यउ कृष्न शांत कियो आय ॥८०५॥

कृष्ण का गुप्त मत पाकर अर्जुन एक दंडी साधु का रूप बनाकर आये। सुभद्रा के नेत्रों से नेत्र मिले। सुभद्रा ने स्वीकार कर लिया। तब अर्जुन उसे लेकर भाग चले। यह सुनकर बलरामजी बड़े क्रुद्ध हो गये। कृष्णजी ने उन्हें शान्त कर दिया।

फेरि बुलाय ब्याह करि दीन्हो विजय बहुत सुख पायो।
फिर आये हस्तिनपुर पारथ सघवाप्रस्थ बसायो ॥८०६॥

इसके बाद उन्होंने अर्जुन को बुलाया और विधिपूर्वक सुभद्रा और अर्जुन का ब्याह करा दिया। इसके बाद अर्जुन हस्तिनापुर लौटे और उन्होंने इन्द्रप्रस्थ नगर को बसाया।

सुदामा-स्वागत

एक दिना एक विप्र भक्तमति हरि को सखा कहावे।
अति दारिद्र दुखी जब जाने तब पतनी समुझावे ॥८०७॥
जाहु नाह तुम पुरी द्वारका कृष्नचन्द्र के पास।
जिनके दरस परस करना ते दुख-दरिद्र को नास ॥८०८॥

सुदामा भगवान के भक्त और उनके सखा थे। वे बड़े दरिद्र और दुखी थे। एक दिन उनकी पत्नी ने उन्हें समझाया कि हे नाथ! तुम द्वारिकापुरी श्रीकृष्ण के पास जाओ, जिनके दरस-परस से दुख-दरिद्रता का नाश हो जाता है।

तंदुल माँगि जाँचिके लाई सो दीन्हों उपहार।
फाटे बसन बाँधि के द्विजवर अति दुर्बल तनहार ॥८०९॥

वह माँग जाँच कर थोड़े चावल ले आई, वह उसने भेंट स्वरूप दिया। श्रेष्ठ ब्राह्मण सुदामाजी ने फटे वस्त्र में चावल बाँध लिए अत्यन्त दुर्बल शरीर वाले सुदामा जी द्वारिकापुरी को चले।

आये देव द्वारका हरि पैं जाय चरन सिर नायो ।
हरि भेंटे भ्राता की नाई पूजा विविध करायो ॥८१०॥

वे द्वारिका में आये और उन्होंने कृष्णजी के चरणों में शिर नवाया। कृष्णजी ने उन्हें भाई की भाँति भेंटा और तरह-तरह से सत्कार किया।

अपने पुनि आसन वैठारे हँसि हँसि बूझत वात ।
कहो विप्र हम गये अवँतिका गुरु के सदन विख्यात ॥८११॥

फिर उन्होंने अपने आसन पर उन्हें विठाया और हँस हँस कर वातें करने लगे। उन्होंने कहा कि कहो विप्रवर ! हम लोग वचपन में अवंतिका में गुरु के घर पर गये थे।

वन में वह वर्षा जव आई ताको सुधि करि लेहौ ।
गुरु आये आपुन को वोलन मंत्र थकायो मेहौ ॥८१२॥

वन में वर्षा आई थी इसकी याद कर लीजिये। उस दिन वर्षा के कारण हम थक गये थे और गुरुजी हमें ढूँढने आये थे।

ता दिन की यह कथा तुम्हारी विसरत नाहिं न मोहिं ।
किधौं कौन कारज को आये सो पूछत हौं तोहिं ॥८१३॥

उस दिन की तुम्हारी कहानी मुझे भूलती ही नहीं। आज मैं जानना चाहता हूँ कि क्या तुम किसी कार्यवश आये हो ?

कछु हमको उपहार पठायो भाभी तुमरे साथ ।
फाटे वसन सकुच अति लागत काढ़त नाहिं न हाथ ॥८१४॥

क्या भाभीजी ने मेरे लिए कोई भेंट भेजी है। फटे वस्त्रों में चावल वँधे थे, लेकिन शर्म के मारे वे उसे नहीं निकाल रहे थे।

हरि अपने कर छोरि वसन को तंदुल लीन्हें हाथ ।
मुट्ठी एक प्रथम जव लीन्हें खान लगे जदुनाथ ॥८१५॥

कृष्ण ने अपने हाथ से वस्त्र को छीन लिया और चावल खोल डाले। एक मुट्ठी चावल लेकर खाने लगे।

द्वितीय मुष्टिका लेन लगे जव कमला गहि लियो हाथ ।
दियो द्विजहि मघवा को वैभव वाढ़्यो जस विख्यात ॥८१६॥

जव वे दूसरी मुट्ठी लेने लगे तव रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने सुदामाजी को इन्द्र का वैभव दे दिया यह विश्व विख्यात है।

भोर भये उठि चले भवन को हरि कछु इनहिं न दीन्हों ।
ताको हरष सोक निज मन में मुनिवर कछू न कीन्हों ॥८१७॥

प्रातःकाल सुदामा जी उठकर घर चले। कृष्ण ने उन्हें कुछ भी नहीं दिया। इस पर सुदामा जी को कुछ हर्ष या विषाद नहीं हुआ।

भली भई हम दरसन पायो तन को ताप नसायो ।
दर्वल विप्र कुचील सुदामा ताको कंठ लगायो ॥८१८॥

वे सोचने लगे कि अच्छा हुआ कि कृष्ण का दर्शन हुआ और हमारे मन का

दुःख दूर हुआ। मुझ जैसे दुर्बल और मलिन वस्त्र वाले ब्राह्मण को उन जैसे राजा ने गले लगाया।

धन्य धन्य प्रभु की प्रभुताई मोपै बरनि न जाई।
शेष सहस मुख पार न पावत निगम नेति कहि गाई ॥८१६॥

प्रभु की प्रभुता धन्य है। मैं इसका वर्णन नहीं कर सकता। शेषजी अपने सहस्र मुख से उसका वर्णन नहीं कर सकते। वेदों ने नेति-नेति कहा है।

ऐसे कहत गये अपने पुर सबहि विलच्छन देख्यो।
मनिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यो ॥८२०॥

ऐसा कहते हुए वे अपने गाँव पहुँचे, किन्तु यहाँ तो उन्होंने सारी ही विलक्षण बातें देखीं। मणियों के महल थे। संगमरमर एवं स्वर्ण की बनी हुई पुरी गोलोक लग रही थी।

पतिनी मिली परम सुख पायो कृष्णचन्द्र आराधे।
मघवा को सुख भयो सुदामहि तऊ कछुक नहि बाधे ॥८२१॥

उनकी पत्नी मिलीं, सब हाल सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। भगवान कृष्ण के ध्यान में मग्न हो गये। सुदामा को इन्द्र का ऐश्वर्य मिल गया। फिर भी कृष्ण की आराधना में उन्हें कोई बाधा नहीं हुई (क्योंकि वे तो भगवान के परम भक्त थे।)

विशेष—सुदामा-प्रकरण में कृष्ण के ईश्वरत्व की ओर संकेत है। सुदामा कृष्ण के भक्त थे। उन्होंने ही कृष्ण के चरणों का स्पर्श किया। कुछ न पाने की स्थिति में भी वे सन्तुष्ट थे जैसा कि भक्त-हृदय होता है। उनकी प्रभुता के लिए कहा है कि शेष वर्णन नहीं कर सकते, वेद नेति-नेति कहते हैं तथा ऐश्वर्य प्राप्ति पर भी सुदामा कृष्ण-आराधना में लीन हुए। 'सूरसागर' की भाँति हृदयस्पर्शी वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं थी, यहाँ तो प्रभु के ईश्वरत्व की ओर ही संकेत मात्र करना था।

नृग-उद्धार

सोलह धेनु दई राजा नृग बहुतहि दान दिवायो।
कृष्ण भक्ति बिन विप्रसाप ते गिरगिट की गति पायो ॥८२२॥

राजा नृग ने सब सारा गायें दान में दी थीं किन्तु कृष्ण भक्ति से रहित होने के कारण उन्हें गिरगिट योनि मिली थी।

ताको चरन परसि कै माधव दु:खित सार छुड़ायो।
कृपा करी जदुनाथ महानिधि जिन बैकुंठ पठायो ॥८२३॥

उस नृग को भगवान कृष्ण ने चरण स्पर्श करके उसके शाप को मिटा दिया और भगवान की कृपा से उसे बैकुण्ठ मिला।

विशेष—नृग की कथा के बीच कृष्ण-भक्ति का महत्त्व-कथन करना ही 'सारावली' का उद्देश्य है। 'कृपा' शब्द के द्वारा पुष्टिमार्ग का संकेत भी इसमें है। पुष्टिमार्ग से तात्पर्य है—प्रभु-अनुग्रह का महत्त्व और दान-यज्ञ-तप आदि की व्यर्थता।

वलराम-लीला

वलराम को भी अवतार माना गया है। भागवत के दशम स्कंध, अध्याय ६३ में व्रजगमन और ७९ में वलराम की तीर्थयात्रा का वर्णन है। 'सारावली' में सारा विवरण एक ही स्थान पर है।

वलदाऊ व्रजमंडल आये व्रजवासिन को भेंटे।
वहुत दिनन के विरह ताप दुख मिलत छिनक में मैटे ॥८२४॥

एक वार वलदेव जी व्रजमंडल पधारे। उन्होंने लोगों से भेंट की और उनके वहुत दिनों के विरह-दुःख को क्षण भर में मिटा दिया।

सघन निकुंज सुभग वृन्दावन कीन्हें विविध विहार।
गोपिन संग रास-रस खेले वाढ़्यो श्रम सुकुमार ॥८२५॥

उन्होंने वृन्दावन की सघन कुंजों में गोपियों के साथ विविध विहार और रास-लीला की जिससे उनका श्रम वढ़ गया।

कालिन्दी को निकट वुलायो जल क्रीड़ा के काज।
लियो आकर्षि एक क्षण में हरि अति समरथ जदुराज ॥८२६॥

फिर उन्होंने जल-क्रीड़ा के लिए यमुनाजी को वुलाया। यमुना के न आने पर उन्होंने अपने आयुध हल से यमुना को खींच लिया।

विविध भांति क्रीड़ा हरि कीन्हीं व्रजवासिन सुख दीन्हों।
द्वादस वन अवलोकि मधुपुरी तीरथ को चित कीन्हों ॥८२७॥

फिर उन्होंने गोपियों के साथ खूव जल-विहार किया और उन्हें सुख दिया। वृन्दावन के वारहों वनों में घूमने के वाद उन्होंने तीर्थयात्रा का विचार किया।

सुभ कुरुक्षेत्र अयोध्या मिथिला प्राग त्रिवेनी न्हाये।
पुन सतद्रु और चन्द्रभागा गंगा सागर न्हवाये ॥८२८॥

कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मिथिला, प्रयाग, शतद्रु, चन्द्रभाग आदि पवित्र तीर्थों और गंगा सागर में स्नान किया।

नैमिषारन आये वल जू जव सकल विप्र सिर नायो।
करी अवज्ञा कथा कहत द्विज अपने लोक पठायो ॥८२९॥

फिर वलरामजी नैमिषारण्य तीर्थ आये। वहाँ सभी ब्राह्मणों ने वलराम जी को नमस्कार किया। यहाँ सूतजी ने जो ब्राह्मणों को कथा सुना रहे थे, वलरामजी का अपमान किया। (उन्होंने और ब्राह्मणों की भांति इन्हें प्रणाम नहीं किया) तव उन्होंने उसे मार डाला।

तव द्विज कहेउ कथा कहिके यह हमको सुख उपजायो।
हम कापै अव कथा सुनेंगे वलदाऊ समझायो ॥८३०॥
इनको पुत्र होय जो वालक ताको वेग विठायो।
धरेउ हाथ सिर दीन्हीं विद्या नित प्रति कथा सुनायो ॥८३१॥

तव ब्राह्मणों ने कहा कि इसने कथा कह करके हम लोगों को वड़ा सुख दिया

था। अब हमें कथा कौन सुनावेगा? तब बलदेव जी ने कहा कि जो इनका पुत्र हो उसे बुलवाओ। उसे बुलाया गया। बलरामजी ने उसके सिर पर हाथ फेरा। उसे विद्या मिल गयी। वह नित्यप्रति कथा सुनाने लगा।

पुन द्विज विनती करि यह भाष्यो असुर एक इहँ आवे।
जज्ञ करत में दान परत वह आय रुधिर बरसावे ॥८३२॥

फिर ब्राह्मणों ने कहा कि यहा पर एक असुर आता है और हमारे यज्ञ में खून आदि गिरा कर यज्ञ भ्रष्ट करता है।

यह सुन के बलदेव गुसाई हल मूसल लियो हाथ।
लियो पकर हल नभ मडल ते कर मूसल सो घात ॥८३३॥

यह सुन कर बलरामजी ने हल मूसल उठाया। उन्होंने हल से उसकी गर्दन पकड़ ली और मूसल से मार-मार कर उसका सिर तोड़ डाला।

जय जयकार भयो सुर लोकन देव दुन्दुभी बाजें।
अस्तुति करत बहुत पुजा द्विज प्रति आनन्द समाजें ॥८३४॥

देवताओं ने जय-जयकार किया और दुंदुभी बजायी। सभी ब्राह्मणों ने उनकी बड़ी स्तुति की और समाज मे आनन्द छा गया।

विनती करी बहुत विप्रन ने राम विप्र तुम मारेउ।
तीरथ न्हाय शुद्ध तन को करि हरि द्विज वचन बिचारेउ ॥८३५॥
बरष दिवस में अरसठ तीरथ न्हाय करत घर आये।
आय प्रभास विप्र बहु जन को बहुतहि दान देवाये ॥८३६॥

ब्राह्मणों ने कहा कि आपने सूतजी को मारा है। अत प्रायश्चित रूप मे आप तीर्थों में स्नान करके अपने शरीर को शुद्ध कीजिए। इसलिए एक वर्ष मे अड़सठ तीर्थों में स्नान करके अपने घर वापस आये और प्रभास क्षेत्र मे आकर उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया।

पुन मिथिला यक दिवस पधारे हरि बलदेव गोसाई।
गदायुद्ध दुर्योधन सिखयो नाना भेद बताई ॥८३७॥

फिर एक बार वे मिथिला जा रहे थे। तब उन्होंने दुर्योधन को नानाभेदों सहित गदायुद्ध की शिक्षा दी।

पुनि द्वारका पधारे निजपुर अति आनन्द सुख पाइयो।
प्रगट प्रबल नित बसत द्वारका कलह भूमि को काट्यो ॥८३८॥

फिर वे द्वारिका को लौट आये और सदा आनन्द के साथ वहाँ रहने लगे और संसार के कष्टों को काटते रहे।

कृष्ण-सन्तति

दस दस पुत्र एक एक कन्या हरि सब के उपजाई।
सुत के सुत नाती पोतों की महिमा कहिय न जाई ॥८३९॥

भगवान् ने अपनी प्रत्येक रानी के दस पुत्र और एक पुत्री पैदा किये। उनके

पौत्र (अनिरुद्ध) तथा नाती-पोतों की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। (भागवत द० स्कंध अ० ६१ में बड़ विस्तार से इस सब का विवरण प्राप्त है)।

बड़े बली प्रद्युम्न कहावत कृष्ण अंस अवतार।
सब जग जीत्यो तिहुँ लोकन लिन बाढ़्यो सुजस अपार ॥८४०॥

उनके सबसे बड़े पुत्र हैं प्रद्युम्न जो इनके अंशावतार हैं। उन्होंने सारे संसार में विजय प्राप्त की और उनका यश तीनों लोकों में फैला।

युधिष्ठिर का अश्वमेघ यज्ञ

अश्वमेध करवाय युधिष्ठिर कुल को दोष मिटाओ।
करि दिगविजय विजय को जग में भक्त पक्ष करवायो ॥८४१॥

भगवान् ने युधिष्ठिर से अश्वमेध यज्ञ करवाया। ऐसा करने से अपने कुल के लोगों के मारने का जो दोष उन पर था वह दूर हुआ। इस यज्ञ में अर्जुन ने दिग्विजय की। इस प्रकार भगवान् ने अपने भक्तों के पक्ष की सब प्रकार से रक्षा की।

यदुवंशियों को शाप

नाना विधि कीन्हीं हरि क्रीड़ा जदुकुल साप दिवायो।
जो ज्यहि लोक छाँड़ि कै आयो ताको तहं पहुँचायो ॥८४२॥

भगवान् ने अन्त में द्वारका में नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ कीं। अन्त में प्रभु इच्छा से ऋषियों ने यदुवंशियों को शाप दे दिया। और वे सब समुद्र में लड़-लड़ कर समाप्त हो गये और जो जिस लोक से आया था वहीं चला गया।

(यदुवंशियों को अपने बल-वैभव का अभिमान हो गया था। एक दिन वे एक किशोर को स्त्री वेश करके उसके पेट पर लोहा बाँध कर ऋषियों के पास ले गये। उन्होंने पूछा कि इस स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री? ऋषियों ने विचार करके उनकी असलियत जानी तो उन्हें क्रोध आया। उन्होंने कहा कि जो इसके पेट में है, उसी से तुम सबका विनाश होगा। यदुवंशी डरे, उन्होंने लोहे को चूर-चूर करके समुद्र में फेंक दिया। उससे एक कटीली लता निकली, जिससे आगे चलकर सब यदुवंशी जल-विहार करते हुए आपस में लड़े और उसी लता से एक दूसरे को मार कर सब काल के गाल में समा गये।)

उद्धव को उपदेश

ऊधो को कहि ज्ञान आपनो निगमन तत्व बतायो।
कही कथा दत्तात्रिय मुनि की गुरु चौबीस करायो ॥८४३॥

यदुवंशियों के जाने पर उद्धवजी भगवान् के पास आये और उन्होंने ज्ञानोपदेश प्राप्त करने की इच्छा की। तब भगवान् ने उन्हें तरह-तरह के उपदेश दिये। उन्होंने दत्तात्रेय ऋषि की कथा सुनाई और उनके चौबीस गुरुओं का विवरण दिया।

विशेष—भागवत के ग्यारहवें स्कंध के अध्याय ६ से १२ तक में ये उपदेश विस्तार से हैं।

कहि आचार भक्त विधि भाषी हंस धर्म प्रगटायो।
कहो विभूती सिद्धि साधनता आश्रम धार बढ़ायो ॥८४४॥
सांख्य तत्व गीताहरि कीन्हों गुन को भेद करयो।
ऐलगीत पुनि भिक्षुगीत कहि पूजा विधि दरसायो ॥८४५॥

उद्धव को उपदेश देते हुए भगवान् ने हंसावतार का विस्तृत वर्णन किया (भागवत एकादश स्कंध अध्याय १३) फिर भगवान् की विभूतियों सिद्धियों और वर्णाश्रम का निरूपण किया (भागवत एकादश स्कंध अध्याय १५-१८) फिर उन्होंने सांख्य तत्व का निरूपण किया (अध्याय २४)। उसके बाद ऐल गीत और भिक्षुगीत सुना कर पूजा की विधियों को समझाया।

अर्जुन को भूमा-दर्शन

सदा बसत हरिपुरी द्वारिका यदु विधि भोग विलासी।
आदि अनन्त अघट्ट अनूपम है अविगति अविनासी ॥८४६॥

भगवान् द्वारकापुरी में रहते हुए विविध भोग-विलास में रत थे। वे अनादि, अनन्त, अनुपम, अघट, अविगत और अविनाशी हैं।

एक दिना एक विप्र द्वारका बसत सुखद निज धाम।
वेद रूप तप रूप महामुनि कृष्ण विप्र यह नाम ॥८४७॥
बालक दस जु भये वाके जब भूमा लिये मँगाय।
चित में यह अनुराग विचारत हरि दरसन को चाय ॥८४८॥

उनके ईश्वरत्व के सम्बन्ध में एक कथा है। द्वारका में एक बड़ा तपस्वी ब्राह्मण रहता था। उसके दस पुत्र हुए, किन्तु उन्हें भूमा ने मँगा लिए। इन पुत्रों के मंगाने का कारण यह था कि भगवान् भूमा कृष्ण का दर्शन करना चाहते थे।

विशेष—भागवत दशम स्कंध अध्याय ८६ में यह कथा है। वहीं भूमा का स्पष्टीकरण है। भूमा ब्रह्मादि लोकपालों के स्वामी हैं। वे शेष शय्या पर विराजमान हैं। वेही परम पुरुषोत्तम भगवान् हैं। उन्हीं के अवतार रूप श्रीकृष्ण थे। कृष्णावतार के सारे कार्यों की समाप्ति पर पुरुषोत्तम भगवान् चाहते थे कि कृष्ण उनके पास आएँ और वे उनसे कहें कि अब उन्हें वापस आकर भूमा में मग्न हो जाना चाहिए। इसलिए उन्होंने ब्राह्मण के पुत्रों को ले लिया था।

दस सुत गयो जान के ब्राह्मन हरि पुकार हरि पास।
तब हरि कहेउ देव की गति यह करत काल जग नास ॥८४९॥

जब ब्राह्मण के दस पुत्र गये तब वह ब्राह्मण द्वारका में कृष्ण के पास गया और अपनी पुकार सुनाई। कृष्ण ने कहा कि यह तो ईश्वरी गति है। काल तुम्हारे पुत्रों को नाश करता है।

तब अर्जुन यह कहेउ सत्त हौं नृप नाहिन भुव भार।
मैं अर्जुन गांडिव धनु जाको काल सों सरों इन बार ॥८५०॥

अर्जुन वहाँ बैठे थे। सुनकर उन्होंने साभिमान कहा कि मैं गांडीवधारी अर्जुन हूँ। मैं काल से लड़ूँगा। अब जब आपका अगला पुत्र हो तो मुझे बताः

तब सुत भयो कहेउ ब्राह्मन ने अर्जुन गये गृह ताईं ।
घर पिंजर बांध्यो चहुँ दिसि ते जहाँ पवन नहिं जाईं ॥८५१॥

जब उसके दूसरा पुत्र हुआ तो ब्राह्मण ने अर्जुन को बुलाया । उन्होंने बाणों से घर के बाहर एक पिंजरा बना दिया कि उसमें हवा भी प्रवेश न कर सके ।

तब सुत भयो देह को संग दरसन भयो न ताय ।
अति ही शोच भयो ब्राह्मन को बहुत बक्यो बिललाय ॥८५२॥

फिर भी किसी ने न देखा, उसका पुत्र सदेह जाता हुआ किसी ने नहीं देखा । इस पर ब्राह्मण को बहुत कष्ट हुआ । अब तो बिलख-बिलख कर उसने अर्जुन को बहुत बुरा-भला कहा ।

तब अर्जुन ढूँढन को निकसे तीन लोक फिरि आयो ।
कहुँ न पायो सुत ब्राह्मन के तब मन में अकुलायो ॥८५३॥

तब अर्जुन उन लड़के को खोजने निकले । उन्होंने तीनों लोकों में भ्रमण किया किन्तु कहीं भी वह बालक न मिला । तब वे मन में बड़े ही आकुल हुए ।

कियो विचार प्रवेश अग्नि को हरि आये समुझायो ।
लै निज संग चले पश्चिम को लोकालोक सोहायो ॥८५४॥

उन्होंने अग्नि में प्रवेश करके प्राण देना चाहा । इतने में कृष्णजी वहाँ पहुँच गये । उन्होंने अर्जुन को समझाया और उन्हें लेकर पश्चिम दिशा में चल पड़े ।

कनक भूमि अरु धाम देव को देखि परम सुहायो ।
बहुत निविड़ तम देख चक्र धरि धरेउ हाथ समुझायो ॥८५५॥
महाकाल पुर तुरत पधारे हरि भूमा के पास ।
तुल्य अग्नि वर अगिन समानो भूमा तेज प्रकाश ॥८५६॥

देवलोक की स्वर्णभूमि देखने के बाद वे लोग बड़े अन्धकार-लोक में पहुँचे । चक्र सुदर्शन को रास्ता समझाने को कहा । फिर वे महाकाल पुरी में पहुँचे, जहाँ भगवान् भूमा का निवास था । भूमा का प्रकाश बड़ा जाज्वल्यमय था ।

कृष्ण तेज को देख सकल सुर तन मन भयो हुलास ।
अति ही मंद तेज भूमा को हरि के तेज प्रकाश ॥८५७॥

जब उन्होंने कृष्ण के तेजस्वी रूप को देखा तो उनका मन हर्षोल्लास से परिपूर्ण हो गया । कृष्ण के तेज के सम्मुख भूमा का तेज भी कुछ मन्द हो गया ।

अति आनन्द परस्पर वाढ्यो जब उन बिनती कीन्ही ।
भली भई भुव भार उतारेउ मेरी फिर सुधि लीन्ही ॥८५८॥

दोनों एक-दूसरे को देखकर अत्यन्त आनन्दित हो गये । तब भूमा ने निवेदन किया कि अच्छा हुआ कि तुमने पृथ्वी का भार उतार दिया और अब मेरी सुधि ली ।

लै दस पुत्र द्वारका आये दीन्हें विप्र बुलाय ।
कीन्हों दुःख दूर अर्जुन को महिमा प्रगट देखाय ॥८५९॥

कीनी केलि बहुत बन मोहन भुव को भार उतारेउ।
प्रगट ब्रह्म राजत द्वारावति वेद पुरान विचारेउ ।।८६०।।

अब विप्र के दस पुत्रों को लेकर द्वारका आये और उन्हें गुना कर वालकों को दे दिया। इस प्रकार अपनी अपार महिमा दिखा कर अर्जुन का दुख दूर किया। इस प्रकार कृष्ण-बलराम ने क्रीड़ाएँ कीं और पृथ्वी का भार उतारा। कृष्ण ब्रह्म के प्रकट रूप हैं, द्वारका पुरी में सुशोभित हैं। वेद पुराणों ने उनके सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किये हैं।

विशेष—इस कथा में भी भगवान् कृष्ण के परब्रह्म रूप का ही आख्यान है। 'सूरसागर' के दशमस्कंध के अन्त में यह कथा इसी प्रकार गायी है। (पद संख्या ४३०६)। 'सारावली' में भागवतीय कथा का अन्त यहीं हो जाता है। भूमा ने कृष्ण से वापस लौटने की बात की। बाद में यदुवंशियों का नाश हुआ और भगवान् भी जरा नामक व्याध के तीर से आहत होकर स्वधाम को चले गये। 'सारावली' में इन कथाओं का वर्णन नहीं है। कदाचित् सूरदासजी इस प्रसंग को यहाँ इसलिए लाना नहीं चाहते थे कि 'सारावली' तो प्रभु के नित्य-विहार लीला का स्पष्टीकरण करती है। इसके उपरान्त उन्होंने उनकी प्रणय-लीलाओं का वर्णन संवत्सर लीला के रूप में प्रस्तुत किया है अतः उनका अन्त दिखाना उन्होंने उचित नहीं समझा।

निकुंज-लीला का संदर्भ

एक दिना रुक्मिनी सों माधव करत बात सुखदाई।
सुनु रुक्मिनि राधिका बिना मोहिं पल छिन कल्प बिहाई ।।८६१।।

निकुंज लीला का विवरण देने के लिए सूरदासजी ने पूर्व घटना से सम्बद्ध करने का उपक्रम किया है। द्वारिका में रुक्मिणी के समक्ष उन्होंने राधा और ब्रज-गोपियों की चर्चा की ही थी। अब उसी चर्चा को दोहराते हुए कवि ने सदर्भ जोड़ दिया है।

एक दिन कृष्ण रुक्मिणी से बात करते हुए बोले कि मुझे तो राधा के बिना एक पल एक कल्प के समान कष्टकारी होता है।

कनक भूमि रतन खचित द्वारका कुंजन की छवि नाहीं।
गोवर्धन पर्वत के ऊपर बोलत मोर सुहाहीं ।।८६२।।

द्वारिका यद्यपि स्वर्णभूमि पर रत्नों से सुशोभित है तथापि यहा उन कुंजों की छवि (निकुंज) कहाँ है? वहाँ गोवर्धन पर्वत के ऊपर मोर आदि पक्षीगण बोलते हैं और वातावरण अत्यन्त शोभायमान लगता है।

यमुना तीर और खग मृग की मोहिं नित प्रति सुधि आवें।
वृन्दाविपिन राधिका मंदिर नित प्रति लाड़ लड़ावें ।।८६३।।

यमुना के किनारे खग-मृग की भीड़ रहती है। उसकी याद मुझे सदा आती रहती है। वह वृन्दावन के कुंज जहां राधा के मिलन-स्थल हैं, वहाँ हमारी प्रणय-लीला होती थी।

राति दिवस रस श्रवत सुधा में कामधेनु दरसाई।
लूटि लूटि दधि खात सखन सँग तैसो स्वाद न पाई ॥८६४॥

वहाँ रात-दिन अमृत रस बरसता था और सब प्रकार की इच्छाएँ पूरी होती थीं। वहाँ हम सखाओं के साथ लूट लूट कर दही खाते थे। वह स्वाद भला कहाँ प्राप्त हो सकता है।

षटरस भोजन नाना विधि के करत महल के माहीं।
छाकें खात ग्वाल मंडल में वैसो तो सुख नाहीं ॥८६५॥

हम यहाँ पर राजमहल में छह रसों वाला श्रेष्ठ भोजन पाते हैं किन्तु ग्वाल-वालों के साथ छाक खाते हुए जो आनन्द मिलता था वैसा स्वाद यहां कहाँ सुलभ है।

जन्म भूमि देखन के कारन मेरो मन ललचावै।
धौरी धेनु बुलावन कारन मधुरे वेनु बजावै ॥८६६॥

मेरा मन तो जन्मभूमि देखने को ललचाता है। वहाँ की धौरी धूसरी गैयां मधुर बांसुरी सुनने के लिए मुझे बुलाया करती हैं।

रास विलास विविध में कीन्हें सँग राधिका लीन्हें।
कीन्हें केलि विविध गोपिन सों सबहिन को सुख दीन्हें ॥८६७॥

मैंने वृन्दावन के कुंजों में राधिका को साथ लेकर नाना प्रकार के रास किये थे और भाँति-भाँति की क्रीड़ाओं से गोपियों को सुख दिया था।

बलमोहन फिर ब्रजहि पधारे ऊधो को संग लीने।
दीन्हों बास चरन रज गोपिन गुल्म लता रस भीने ॥८६८॥

इसलिए बलराम और कृष्ण उद्धव जी को साथ लिए हुए ब्रज पधारे। उन्होंने वृन्दावन के लता-गुल्मों में अपने चरण-रज से रसानन्द की वृष्टि कर दी।

सदा विलास करत गोकुल में धनि धनि जसुमति मात।
ज्यों दीपक ते दीपक कीन्हों भये द्वारका नाथ ॥८६९॥

अब यहां उनका नित्य-विहार आरम्भ हुआ। यशोदा माँ धन्य हैं। जैसे एक दीपक से अनेक दीपक बन जाते हैं उसी प्रकार यशोदा के लाल ने अनेक गोप-गोपियों में प्रणय-लीला का सूत्रपात किया।

वधाई

पुष्टिमार्गी भक्तों की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रथम सोपान है प्रभु की जन्म वधाई, उसी से रसानन्द का सूत्रपात होता है।

नित प्रति मंगल रहत महर के नित प्रति बजत वधाई।
नित प्रति मंगल कलस धरावत नित प्रति वेद पढ़ाई ॥८७०॥

नित्यप्रति नन्दजी के यहाँ मंगलगान होते हैं और वधाई गाई जाती है। नित्य प्रति मंगल कलश रखे जाते हैं और वेद-ध्वनि होती है।

श्री वृषभानु राय के आंगन नित प्रति बजत वधाई।
नित प्रति मिल मुनि राज मण्डली मंगल घोष कराई ॥८७१॥

श्री वृषभानुजी के आंगन में भी राधा जी के जन्म हेतु नित्य मंगल गान और वधाइयां होती हैं। सभी लोग मिलकर मंगल गान करते हैं।

विशेष—नित्य विहार में राधा और कृष्ण दोनों समान स्वीकृत हैं। इसीलिए कृष्ण जन्माष्टमी के साथ राधाष्टमी मनाई जाती है। संवत्सर-लीला का सबसे प्रथम पर्व जन्मोत्सव है। पुष्टि मार्गीय सेवा भक्ति में बधाई बड़ी महत्वपूर्ण समझी जाती है। 'सूरसागर' में बधाई के बहुत पद हैं।

दान-लीला

(दान-लीला निकुंज-लीला में बहुत महत्वपूर्ण है। दान लीला नित्य-विहार मंदिर का प्रवेश द्वार है। भक्त रूपा गोपियों के अन्तर्मन में प्रणय की पुण्य सलिला प्रवाहित थी, फिर भी वे लोक-लज्जा के आच्छादन को धारण किये थी। पुष्टिमार्ग के अनुसार भक्त के प्रयत्नों—जप-तप, साधना आदि के द्वारा जगत् के बन्धन दूर नहीं होते। प्रभु के अनुग्रह से ही भक्त और भगवान के बीच का आवरण हटता है। प्रभु स्वयं कृपा करके भक्तों को नित्य-विहार में लाते हैं। प्रभु की बाललीला के आश्रय केवल यशोदा और नन्द हैं। शेष सभी गोपांगनाएँ मधुर भक्ति के माध्यम से ही लीला में सम्मिलित होती हैं। चन्द्रावली इन गोपियों की अग्रणी है। लीला की नोक-झोंक में चन्द्रावली ही प्रमुख पात्र है। राधाजी तो रस-केलि के संदर्भ में ही स्वामिनी के रूप में आती हैं। विहार-लीला से पूर्व राधा के उल्लेख की आवश्यकता नहीं है।)

बाल केलि खेलत ब्रज आँगन जसुमति को सुख दीन्हों।
तरुन रूप धरि गोपिन के हित सबको चित हरि लीन्हों ॥८७२॥

बाल लीला में भगवान कृष्ण नंदजी के आँगन में खेलते थे और यशोदा को सुख देते थे। वात्सल्य की आश्रय केवल यशोदा हैं, वे प्रभु को सुत रूप में देखा करती थी और उनसे वत्सल-भाव का आनन्द लेती थी, किन्तु कृष्ण के तरुण रूप का रसपान करने वाली गोपियाँ आश्रय है। कृष्ण ने ब्रज की समस्त गोपियों का मन मोह लिया था।

चन्द्रावली गोप की कन्या चन्द्रभाग गृह जाई।
भई किसोर स्याम ने देखी अद्भुत प्रीति बढ़ाई ॥८७३॥

चन्द्रभाग गोप की कन्या चन्द्रावली यौवनावस्था को प्राप्त हुई। कृष्ण ने उसे देखा तो उसके प्रति माधुर्य भाव की अद्‌भुत प्रीति को प्रसारित किया।

तब ललिता पूछ्यो नीके करि केहि विधि स्याम मिलाई।
अब न परत मोकूँ कल छिन हू जिय में अति अकुलाई ॥८७४॥

ललिता आदि अन्य सखियाँ भी कृष्ण के प्रति प्रेम भाव रखती थी। चन्द्रावली से मिलकर ललिता ने कहा अब तो बिना कृष्ण से मिले एक पल भी रहा नहीं जाता। किस प्रकार से उनसे मिला जाय।

विशेष—चन्द्रावली और ललिता में प्रेमभाव प्रगाढ़ रूप में है किन्तु बँधी भक्ति में लोक-लाज का बन्धन होता है। इसीलिए ललिता लोक-लाज रूपी बन्धन से मुक्ति पाने का उपाय पूछ रही है।

तब उन कहेउ सीस गोरस ले बेचन के मिस आओ ।
गोवर्धन पर गोविंद खेलत निरख परम सुख पाओ ॥८७५॥

चन्द्रवली के कहा कि गौरस बेचने के बहाने चलो ।

(गोरस शब्द क्लिष्ट है । गौरस का अर्थ है—गाय का रस-दूध, दही, मक्खन आदि और (२) इन्द्रिय रस) चन्द्रावली का मत स्वीकार करके गोपियाँ वृन्दावन में आईं । यहाँ गोवर्धन की चोटी पर सारे गोप खेल रहे थे । कृष्ण आदि ने गोपियों को देखकर बड़ा सुख पाया । भगवान तो अन्तर्यामी हैं अतः वे गोपियों के लोक-लाज के बँधे प्रेम-भाव को समझ गये ।

करि शृंगार चली चन्द्रावलि नख सिख भूषन साजें ।
ज्यों करिनी गजराज विलोकत ढूँढत है अति गाजें ॥८७६॥

चन्द्रावली शृंगार (१६ शृंगार) और नख से शिख तक गहने (१२ आभरण) पहिन कर प्रेम से मतवाली होकर इस प्रकार चली जैसे हथिनी मस्त हाथी को खोजती हुई चलती है ।

विशेष—उपमा के माध्यम से गोपी में प्रेमाधिक्य की स्थिति स्पष्ट बताई गयी है ।

गोवर्द्धन के सिखर चारु पर सखा वृन्द सँग लीन्हें ।
गोपिन देखि टेरि हरि कीन्हों दान लेन मन कीन्हें ॥८७७॥
राखौ घेरि सकल युवतिन को सखा वृन्द सों भाष्यो ।
आप जाय पकर्यो कोमल कर दधि अमृत रस चाख्यो ॥८७८॥

गोवर्धन पर्वत पर सखाओं के साथ कृष्ण खेल रहे थे । गोपियों को देखकर उन्होंने पुकारा और दान लेने की इच्छा की ।

विशेष—दान शब्द का अर्थ यहाँ पर कर (टैक्स) या चुंगी है । यहाँ दान से तात्पर्य स्वेच्छा से देना नहीं है । स्वेच्छा से देने में भक्त अपना सर्वस्व प्रभु पर निछावर करता है किन्तु कर के रूप में दिये हुए धन में इच्छा के अभाव में भी देना ही पड़ता है । यद्यपि चन्द्रावली आदि मन से प्रभु के समक्ष अपने को समर्पण करती हैं किन्तु लोक-लाज के कारण वे प्रत्यक्ष नहीं आतीं । अतः प्रभु को विवश करके दान (आत्म समर्पण) लेना पड़ता है । अपने साथियों से कृष्ण ने कहा सभी गोपियों को घेर लो । और आप जाकर अग्रणी (चन्द्रावली) का हाथ पकड़ लिया और दही का अमृत रस (प्रेमामृत चख लिया) ।

देवौ दधि को दान नागरी गहर न लावो चित्त ।
तुमरे काज नित्य हम ठाढ़े अरपे अपनो वित्त ॥८७९॥

कृष्ण ने कहा कि हे नागरी ! दही का दान दो, चित्त में कोई देर (आगा-पीछा) न करो । तुम्हारे लिए ही हम नित्य यह अपने सारे धन को अर्पित किए खड़े हैं ।

विशेष—'नागरी' शब्द सारे कृष्ण काव्य में प्रेमिका के लिए ही प्रयुक्त होता है । संकेत से कृष्ण कहते हैं कि हम तुम्हारे मनोभाव को जानते हैं । इसी प्रकार तुम्हारे

काज निल्य हम ठाढ़े' में प्रभु के अनुग्रह की स्पष्ट व्यंजना है। प्रभु स्वयं ही भक्तों के लिए खड़े रहते हैं, उनके जप-तप आदि सामर्थ्य की अपेक्षा नहीं करते।

वृन्दावन में धेनु चरावत मांगत गोरस दान।
नाना खेल सखन सँग खेलत तुम पायो नृप मान ॥८८०॥

चन्द्रावली ने कहा—तुम तो वृन्दावन में गायों के चरवाहे हो अब गोरस दान माँग रहे हो। तुम तो यहाँ अपने साथियों के साथ खेल रहे हो। क्या तुम्हें राजा ने वह पद दिया है जिस पर बैठ कर तुम कर वसूल कर सकते हो।

अरी ग्वालि मद मत्त वचन को बोलति बिन विचार।
अचल राज गोवर्धन मेरो वृन्दावन भंडार ॥८८१॥

इस पर कृष्ण बोले—ऐ मतवाली ग्वालिनी! तू सँभल कर बात नहीं बोलती। यह वृंदावन तो मेरा ही अचल राज्य है। तात्पर्य यह है कि मुझे किसी दूसरे राजा से कर वसूल करने के अधिकार लेने की क्या आवश्यकता है? मैं स्वयं कर ले सकता हूँ।

जो तुम राजा आप कहावत वृन्दावन को ठौर।
लूटि लूटि दधि खात सखन को सब चोरन के मौर ॥८८२॥

गोपियों ने कहा—यदि तुम वृंदावन के राजा हो तो सबसे दही लूट-लूट कर क्यों खाते हो? चोरों के सिरमौर कहीं के।

चोरी करत भक्त के चित की अरु दधि अरु नवनीत।
सखा वृन्द सब मीत हमारे बड़ो राज रजनीत ॥८८३॥

कृष्ण ने उत्तर दिया—हाँ, मैं तो भक्त के चित्त की चोरी करता हूँ, दही और मक्खन भी मैं चाहने वालों का चुराता हूँ। मेरे सखा लोग मेरे मित्र हैं और मेरी यही राजनीति है।

विशेष—व्यंजना से यहाँ पुष्टिमार्गीय भक्ति का सिद्धान्त-निरूपण है। भगवान अनुग्रह करते हैं और भक्तों के चित्त को मोह लेते हैं। कृष्ण की माखन-चोरी में भी मधुरा भक्ति का यही दृष्टिकोण था। 'सूरसागर' में इसका स्पष्टीकरण भी है।

मैया री, मोहि माखन भावै।
+ × +
ब्रज जुवती एक पाछें ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात।
मन-मन कहत कबहुँ अपने घर देखौं माखन खात॥
बैठें जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी।
सूरदास प्रभु अन्तरजामी, ग्वालिनि मन की जानी॥

(सूरसागर, पद सं० ८८२)

'मेरे सखा-मित्र और मेरी राजनीति' में भी पुष्टिमार्गीय सख्य भक्ति और मधुरा भक्ति की ओर संकेत है।

जो तुम राजनीति सब जानत बहुत बनावत बात।
जब तुम जन्म लियो मथुरा में आये आधीरात ॥८८४॥

गोपी बोली—बड़ी-बड़ी बातें बनाते हो तुम, यदि राजनीति निपुण ही हो तो तुमने जन्म तो मथुरा में लिया था, पर आधी रात को ब्रज में क्यों भाग आये?

सुनरी ग्वालि गँवार बात की बोलत बिना विचार।
कमल कोष में बसत मधुप ज्यों त्यों भुव रहैं मुरार। ८८५॥

कृष्ण—गँवार ग्वालिनी तू सँभाल कर नहीं बोलती—जिस प्रकार से पुष्प में भौंरा रहता है उसी प्रकार मैं भी जगत में रहता हूँ। तात्पर्य यह है कि लकड़ी को काटने वाला भौंरा कोमल कमल की पंखुड़ियों को नहीं काटता। कारण यह है कि वह प्रेम के वशीभूत है। इसी प्रकार कृष्णावतार प्रेमी भक्तों की इच्छा पूरी करने हेतु हुआ है। प्रेम-बन्धन में भगवान बँधे हैं। 'सूरसागर' में भी इसी प्रकार की पंक्तियाँ मिलती हैं।[1]

दूध दही के नात बनावत बातें बहुत गोपाल।
गढ़ि गढ़ि छोलत कहा रावरे लूटत हौ ब्रज बाल॥८८६॥

गोपी—हमारे दूध दही के नाते बड़ी बातें बना रहे हो। तरह-तरह की बातें क्यों बना रहे हो, तुम तो ब्रज-बालाओं को केवल लूटने का काम करते हो?

'सूरसागर' में यही मुहावरा मिलता है।

गढ़ि गढ़ि छोलत लाड़िले, भली नहीं यह स्याम।
(सूरसागर, पद १६१८)

जो प्रभु देह धरे नहिं भुव पर दीन अधम को तारे।
बढ़े असुर पुहमी पर खल अति तिन्हैं तुरत को मारे॥८८७॥

कृष्ण—यदि परमेश्वर (मैं) अवतार धारण कर पृथ्वी पर न आवे तो दीन और अधम प्राणियों का निस्तार कैसे होगा? पृथ्वी पर जो बहुत से राक्षस बढ़ जाते हैं उनको और कौन मार सकता है?

जोग-जुक्ति कर ध्यान लगावत जोग सिद्ध कर ज्ञान।
नेति नेति करि निगम बतावत ताहि होत निरमान॥८८८॥

योगी लोग तो ध्यान लगाकर सिद्धि प्राप्त करते हैं। वेद नेति-नेति कह कर परमेश्वर का स्वरूप निरूपण करते हैं।

जोग सांख्य अरु ज्ञान नामिनी माया हृदय विनास।
प्रेम भक्त मेरे जस गावे तेहि घट मेरो वास॥८८९॥

सांख्य तथा योग से माया का विनाश होता है। किन्तु पुष्टमार्गीय भक्त योग-ध्यान आदि नहीं करते। वे तो केवल भगवान का आश्रय लेते हैं। अतः भगवान उनके हृदय में निवास करते हैं। सारांश यह है कि कृष्ण के अवतार लेने, मथुरा से गोकुल आने और यहाँ पर गोपियों के साथ क्रीड़ा करने में प्रभु का पुष्टिमार्गीय दृष्टिकोण ही

---

१. अरी ग्वालि मदमत्त बचन बोलति जु अनेरी।
... ...
कमल कोष अलि भुरै त्यों तुम भुर्यो गोपाल। (सूरसागर पद २२३६)

बहुत भये हो ढीठ सांवरे मुख पर गारी देत।

तुमरे डर हम डरपत नाहीं कहा कँपावत बेत ॥८९२॥

गोपी—कृष्ण तुम बड़े ढीठ हो, प्रत्यक्ष गालियाँ सुना रहे हो। हम तुमसे बिल्कुल नहीं डरतीं, तुम व्यर्थ ही हमें धमका रहे हो।

स्याम सखनि सों कहेउ टेरि दै घेरौ सब अब जाय।

बहुत ढीठि यह भई ग्वालिनी मटुकी लेहु छिनाय ॥८९३॥

गोपियों की इस ललकार पर कृष्ण ने अपने सखाओं को पुकारा और कहा कि इन्हें घेर लो। ये ग्वालिनियाँ बड़ी ढीठ हो गयी हैं[1]। इनकी मटकी छीन लो।

जाय स्याम कंकन कर लीनो गहि हारावलि तोरि।

लूटि लूटि दधि खात साँवरो जहाँ साँकरी खोरि ॥८९४॥

कृष्ण ने स्वयं जाकर (राधा जी के) कंगन पकड़ लिए और गले का हार तोड़ डाला तथा लूट-लूट कर प्रेम की 'सांकरी गली' में दही खाया।

इन्दा विन्दा और राधिका चन्द्रावलि सुकुमारि।

विमल विमल दधि खात सबनि को करत बहुत मनुहारि ॥८९५॥

इन्द्रा-विन्द्रा-राधिका और चन्द्रावली[2] आदि सुकुमार गोपियों के स्वच्छन्द दही खा लिए और सबको आनन्द दिया।

विशेष—'सांकरी खोर' और 'करत बहुत मनुहार' शब्द द्रष्टव्य हैं। प्रेम गली अति सांकरी' बहुचर्चित है। इसी प्रकार 'मनुहार' से गोपियों की सद्भावना सुस्पष्ट है। कृष्ण के छीन-छीन कर दही खाने से गोपियाँ रुष्ट नहीं हुई प्रत्युत उनका मनचाहा हुआ है[3]। कृष्ण की समस्त लीलाओं में ध्वनि की प्रधानता है। प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण जबरदस्ती कर रहे हैं, लूट-लूट कर दही खा रहे हैं किन्तु इसके पीछे है उनकी वह लीला जिसमें कि पीछे 'सूरसागर' में कहा गया है—"जो मो कौं जैसेहि भजैं री ताकों तैसेहि मानों' जो जिस रूप में प्रभु को भजता है वे उसे उसी रूप में मिलते हैं। गोपियों की सन्तुष्टि के लिए उन्होंने राहजनी की और लूट-लूट कर दही खाने की बदनामी भी सही। पर दान-लीला तो साधन मात्र थी, साध्य है विहार-लीला। दान-लीला के उपरान्त गोपियों की लोक-लाज की बाहरी दिखावट दूर हो गयी और वे अपने प्रभु की विहार-लीला में खुलकर सम्मिलित हो गयीं। 'सूरसागर' में लीला का विस्तार है।

---

१. हांक दियो करि नंद दुहाई, आइ गए सब ग्वाल।
सूर स्याम को जानत नाहीं, ढीठि भई हैं बाल। (सूरसागर २१४९)

२. इन्दा विन्दा राधिका स्याम कामा नारि।
ललिता अरु चन्द्रावली सखिनि मध्य सुकुमारि॥ (सूरसागर २२३६)

३. व्रज जुवतीं सब मगन भई।
यह बानी सुनि नंद-सुवन मुख, मन व्याकुल तन सुधिहुं गई।
(सूरसागर २२०७)

निकुंज-विहार-लीला

निकुंज लीला के आलम्बन हैं राधा और कृष्ण। 'सारावली' के आरम्भ में ही कहा है "तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ" तथा "गोपिन मंडल मध्य विराजत निसिदिन करत विहार" गोपियों के साथ कृष्ण-रति-विहार का प्रश्न ही नहीं उठता। गोपियाँ तो सहचरियाँ हैं। ये राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ा की समस्त साज-सज्जा करती हैं। वे तो केवल 'तत्सुखीभाव' में आनन्द लेती हैं। राधा-कृष्ण के रति-आनन्द को दूर से देखती हुई वे परमानन्द का लाभ पाती हैं। मधुरा भक्ति के इसी आनन्द का वर्णन आगे की पंक्तियों में सूरदास जी ने बड़े कम शब्दों में किया है।

गहि बहियां से चले स्याम घन सघन कुंज के द्वार।
पहिले सखी सबै रचि राखी कुसुमन सेज सँवार ॥८६६॥

सखियों ने पहिले से ही निकुंज में पुष्पों द्वारा सुख सेज तैयार कर रखी थी। कृष्ण ने राधा की बाँह पकड़ ली और खींच कर कुंज में ले गये।

नाना केलि सखिन सँग विहरत नागर नन्द कुमार।
आलिंगन चुम्बन परिरम्भन भेंटत भरि अँकवार ॥८६७॥

अब वे रति-विहार में संलग्न हो गये। आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भण करने लगे।

श्रम जल विन्दु इन्दु आनन पर राजत अति सुकुमार।
मानो विविध भाव मिलि विलसत मगन सिंधुरस सार ॥८६८॥

रति-विहार के कारण उनके मुख पर पसीने की बूँदें दिखाई पड़ने लगीं। सुरति के विविध भावों में वे रस-सागर में गोते लेने लगे।

कुंज-रंध्र अवलोकि सहचरी अपनो तन मन वारे।
निरखि निरखि दंपति नैनन सुख तोर तोर तृन डारे ॥८६६॥

सहचरियाँ (गोपियाँ) कुंज के छेदों से राधा-कृष्ण की सुरति-लीला को देख-देख कर तत्सुखी भाव का आनन्द लेने और उस आनन्द पर अपने तन मन को निछावर करने लगीं।

यह अवलोकि देव गन्धव मुनि बरषत कुसुम अपार।
जय जय करत वार नीराजन बोलत जय जय कार ॥१०००॥

यह आनन्द देख कर देवता, गन्धर्व और मुनि भी पुष्प वर्षा करने लगे अप्सराएँ भी जय-जयकार करने लगीं।

विशेष—निकुंज-लीला का राधा-कृष्ण-विहार 'सूरसागर' में अनेक बार बड़े विस्तार से कहा गया है। सूरदास इस आनन्द-लीला पर सदा निछावर होते हैं। ऊपर

कान्ह माखन खाहु हम सु देखें।
सद्य दधि दध ल्याई अबहिं हम, खाहु तुम।
सफल करि जन्म लेखें (सूरसागर-१५६६)
गोपियां अति आनन्द भरीं
माखन दधि हरि खात प्रेम सों निरखत नारि खरी ॥
(सूरसागर १५६८)

गोपियाँ जिस प्रकार इस सुरति-लीला को देखकर परमानन्द लाभ करती हैं उसी प्रकार सूरदास जी 'सूरसागर' में इस लीला के वर्णन के उपरान्त अपनी अनुभूति को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

धन्य कान्ह धनि राधा गोरी ।
धनि यह भाग सुहाग धन्य यह, धन्य नवल नवला नव जोरी ॥
धनि यह मिलनि, धनि यह बैठनि, धनि अनुराग नहीं रुचि थोरी ।
धनि यह अरस-परस छवि लूटनि, महा चतुर मुख मोरे-भोरी ।
प्यारी अंग अंग अवलोकति, पिय अवलोकति लगति ठगोरी ।
सूरदास प्रभु रीझि थकित भए, नागरि पर डारत तृन तोरी ॥
(सूरसागर द० स्कंध २१३४)

सख्य-लीला

गोवर्द्धन की सघन कंदरा कीनो रैनि निवास ।
भोर भये निज धाम चले दोउ अति आनन्द विलास ॥६०१॥
नन्द धाम हरि बहुरि पधारे पौढ़ि रहे निज सैन ।
जसुमति मात जगावति भोरहिं जागे अम्बुज नैन ॥६०२॥
करो मुखारी और कलेऊ कीने जल असनान ।
करि शृंगार चले दोउ भइया खेलन को सुखदान ॥६०३॥

गोवर्धन की सघन कंदराओं में रात्रि में निवास करके प्रातःकाल अपने-अपने घर में चले गये। कृष्ण और राधा रति के उपरान्त अपने-अपने घर में सो गये। प्रातःकाल माँ ने जगाया।[1] उन्होंने उठकर दांत साफ किये, कलेवा किया और स्नान किया। फिर शृंगार करके दोनों भाई खेलने को चल पड़े।

विशेष—पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति के अनुसार कृष्ण-सेवा के आठ अंग हैं—१. मंगला, २. शृंगार, ३. ग्वाल, ४. राजभोग, ५. उत्थापन, ६. भोग, ७. सन्ध्या आरती, ८. शयन। मंगला के अन्तर्गत कृष्ण-जागरण, कलेवा और आरती हैं। शृंगार में कृष्ण जी स्नान करते है और उनकी वेशभूषा की साज-सज्जा होती है। इसके बाद ग्वाल के अन्तर्गत कृष्ण गोचारण को जाते हैं। मध्याह्न को उनके खाने के लिए घर से भोजन भेजा जाता है। इसे छाक कहते हैं। इसमें कृष्ण ग्वाल बालों के साथ छीन-झपट कर खाते हैं। यही है उनका राजभोग। नित्य सेवा विधि के इन चार अंगों का

---

१. जागिये व्रजराज कुंवर, कमल कुसुम फूले ।
कुमुद-वृंद सकुचित भए, भृंग लता भूले ॥
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बन राई ।
राँभति गौ खरिकनि में, बछरा हित धाई ॥
विधु मलीन रवि प्रकास, गावत नर-नारी ।
'सूर' स्याम प्रात उठो, अम्बुज कर धारी ॥ (सूरसागर ८२०)

निरूपण प्रस्तुत पदावली में है। कृष्ण जगाए गए, उन्होंने दाँत धोये, कलेवा हुआ फिर स्नान और शृंगार कराया गया। गोचारण और राजभोग आगे है।

कहूँ खेलत मिलि ग्वाल मंडली आँख मीचनी खेल।
चढ़ा-चढ़ी को खेल सखन में खेलत हैं रंग-रेल ॥६०४॥

गोचारण के साथ-ही-साथ कृष्ण मेल मेलते हैं। कहीं ग्वाल-मंडली में आँख मिचौनी खेलते हैं तो कहीं एक दूसरे के ऊपर चढ़ा-चढ़ी का खेल खेलते हैं।

कहूँ अमरू डार विटप की खेलत सखन मँझार।
कूदि कूदि धरनी सब धावत दांव देत किलकार ॥६०५॥

कभी अमराइयों में पेड़ की डालियों में खेलते हैं। पेड़ की डालियों में चढ़ते और कूद-कूद कर पृथ्वी पर चले जाते हैं। खेल में दाँव देने का समय होता है। वे बड़ी जोर से किलकारी मारते हैं।

भोजन समय जान जसुमति ने लीने दुहुँनि बुलाय।
बैठ आय गोद जसुमति की आनंद उर न समाय ॥६०६॥

भोजन का समय जान कर यशोदा माँ दोनों बालकों को बुला लेती हैं। वे यशोदा की गोद में बैठते हैं तो यशोदा जी को असीम आनन्द होता है।

बहुविधि के पकवान बनाये परसति जसुमति माय।
आरोगत बल मोहन दोऊ सुख देखत ब्रजराज ॥६०७॥

अनेक प्रकार के पकवानों को माता यशोदा परसती हैं। बलराम और कृष्ण भोजन करते हैं और नन्दजी उन्हें देखकर सुख अनुभव करते हैं।

कबहूँ कौर खात मिरचनि को लागी दसन टकोरि।
भाजि चले तब गहे रोहिनी लाई बहुत निहोरि ॥६०८॥

कभी-कभी खाते हुए जब मिर्च की तिताई लगती है तो उठकर भाग चलते हैं और रोहिणी जी उन्हें पकड़ती हैं और बड़े अनुनय-विनय से उन्हें ले आती हैं।

भोजन करि नाना विधि दोऊ लीनो मठा सलोनो।
अँचवन करि ब्रजराज पधारे बल मोहन सुख मानो ॥६०९॥

भोजन के उपरान्त नमकीन छाछ पीते हैं। इसके बाद हाथ मुँह धोकर नन्दजी के पास पहुँचे और सबने सुख माना।

विशेष—गोचारण और राजभोग सम्बन्धी पद 'सूरसागर' में मिलते हैं। उनके भाव तथा शब्द 'सारावली' में बहुत मिलते हैं।

राधा-मान लीला

राधा का मान निकुंज लीला का प्रमुख अंश है। 'सूरसागर' में राधा की मान-लीला बहुत विस्तार से वर्णित है। 'साहित्य लहरी' में भी मान लीला सम्बन्धी बहुत पद हैं। मान के द्वारा प्रणय में तेजी और सघनता आती है इसीलिए इस लीला में भक्तों ने विशेष रुचि दिखाई है। नायिका के मान का कारण है अन्य नारी में प्रिय के अनुरक्ति की आशंका। इसी को आधार बनाकर सूरदासजी ने 'सूरसागर' में

कृष्ण का बहुनायकत्व दिखाया है। यहाँ भी मान लीला संक्षेप में प्रस्तुत की गयी है पर भाव-धारा और पदावली एक जैसी है।

बीरी खाय चले खेलन को बीच मिली ब्रज नार।
लै चलि पकरि बाँह राधा पै सघन कुंज के द्वार ॥६१०॥

पान का बीड़ा खाकर कृष्ण खेलने को निकले। रास्ते में राधाजी मिल गयीं। कृष्णजी उनकी बाँह पकड़ कर सघन कुंजों में ले गये।

राधा सों मिलि अति सुख उपज्यो उन पूछी इक बात।
कहाँ जु आज रैनि कहँ सोये हम देखे तुम जात ॥६११॥

राधा से मिलकर कृष्ण को तो बड़ा सुख मिला, किन्तु राधा ने उनसे पूछा कि आप आज रात कहाँ सोये थे, मैंने तुम्हें वन की ओर जाते देखा था। तात्पर्य यह कि राधा को शंका हुई कि कदाचित् ये किसी दूसरी गोपी के साथ रमण करके आ रहे हैं। यह शंका ही मान का कारण है। किन्तु जब इस शंका का प्रमाण नहीं मिलता तो मान टिक नहीं पाता वह लघुमान का रूप लेकर रह जाता है।

तब हरि कहेउ सुनो मृगनैनी गाय गई इक दौरि।
ताको लेन गयो गोवर्धन सोय रहेहुँ तेहि ठौर ॥६१२॥

कृष्ण ने उत्तर दिया कि हे मृगनैनी सुनो। मेरी एक गाय वन में भाग गई थी।[1] मैं उसी की खोज में गोवर्धन की ओर गया और रात में वहीं सो गया।

कन्द मूल फल दीने गोधन सो निसि को मैं खायो।
भोर भयो उठि तेरे आयो चरण कमल परसायो ॥६१३॥

वहाँ पर मैंने कन्दमूल फल खाया, गोवर्धन पर रहा और प्रातःकाल होने पर तुम्हारे पास आ गया। इस प्रकार कृष्ण ने उत्तर तो दे दिया। पर यह उत्तर विश्वसनीय कम है अतः राधा के मन में एक शंका का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इस शंका की प्रतिक्रिया अगले पद में स्पष्ट हो उठी है।

निज प्रतिबिम्ब विलोकि राधिका हरि नख मंडल माँह।
द्वितिय रूप देखे अबला को मान बढ्यो तन छाँह ॥६१४॥

कृष्ण वक्षस्थल पर बघनख पहिनते थे। उसमें राधा की अपनी परछाईं दिखाई पड़ी। उसे भ्रम हो गया कि कृष्ण ने अपने गले में किसी और नारी का रूप रख रखा है इससे उसकी पूर्व शंका मान के रूप में परिवर्तित हो गयी।

---

१. यह प्रसंग कुछ भिन्न रूप में 'सूरसागर' में मिलता है—

स्याम सखा जेंवत ही छांड़े।

× × ×

अति आतुर तुम चले कहाँ हो, हमहिं कहो गोपाल।
अबहीं एक सखा मह कहि गयो, गाइ रही बन ब्याइ।
सुनहु 'सूर' मैं जेंवत बैठ्यो, वह सुधि गई भुलाइ ॥ (सूरसागर २६००)

चली रिसाय कुंज मृगनयनी जहँ अलि करत गुंजार।
बैठी जाय एकान्त भवन में जहाँ मान गृह धार ॥६१५॥

फिर तो क्रुद्ध होकर राधा चल पड़ी और निकुंज में पहुँची जहाँ भौरे गूँज रहे थे और एकान्त भवन में बैठ गई।

विशेष—'सूरसागर' में इसी आशय का राधा-मान कई जगह[1] मिलता है।

नन्दकुँवर विरहन राधा के विरह भये भरपूर।
बैठे जाय एकान्त कुंज में सखा कियो सब दूर ॥६१६॥

कृष्णजी राधा के विरह में पूरी तरह हो के एकान्त कुंज में दूर जा बैठे।

ललिता बोल कही मृदुवानी कृष्न विमल दल नैन।
बिन राधा मोहिं कल न परत है कहत मधुर मृदु बैन ॥६१७॥

ललिता को बुलाकर कृष्ण जी ने विनम्र वाणी से कहा। राधा के बिना मुझे चैन नहीं मिल रहा है।

बेगि जाय परि पायँ राधिका बिनती करो सुनाय।
दरसन देउ सकल दुःख मेटो तुम बिन रह्यउ न जाय ॥६१८॥

जल्दी जाओ। राधा के पाँव पड़के उससे बिनती करो कि दर्शन दे कर मेरे सारे दुखों को दूर करो। उससे कहो कि तुम्हारे बिना मुझसे रहा नहीं जाता है।

तुम बिन खान पान नहिं भावत गोचारन सिंगार।
रैन नींद नहिं परत निरंतर सम्भाषन व्यवहार ॥६१९॥

तुम्हारे बिना मुझे खान पान गोचारण और शृंगार अच्छा नहीं लगता। न रात में नींद लगती है और न बोल-चाल-व्यवहार कुछ रुचता है।

---

१. राधा कृष्ण के हृदय पर अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर और नारी की शंका करती है और मान कर बैठती है।

पियहिं निरखि प्यारी हँसि दीन्हौं।
रीझे स्याम अंग अंग निरखत हँसि नागरि उर लीन्हौं ॥
... ...
इहि अंतर प्यारी उर निरख्यौ, झझकि भई तब न्यारी।
'सूर' स्याम मोको दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी ॥

सूरसागर, ३०३०

बिहँसि बोले गुपाल, सुनिहो ब्रज की बाल।
उछंगहि लेत कर परनि सननि।
अपनी भाईं निहारि, काहैं कों करति आरि।
काम की कसौटी 'सूर' संक ले बसति ॥ सूरसागर, ३०३६

विशेष—'सूरसागर' में भी राधा के मान पर ठीक वही दशा कृष्ण की होती है।[1]

करि दण्डवत चली ललिता जो गई राधिका गेह।
पायँनि परि परि बहुत विनय करि सफल करन को नेह ॥६२०॥

कृष्ण को प्रणाम करके ललिता राधाजी के घर गई पांव पड़के प्रेम को सफल करने के लिए उसने बहुत विनती की।

वेगि चलो वृषभानुनन्दिनी बोलत नन्दकुमार।
तुम बिन पल छिन कल न परति है भोजन सुख व्यवहार ॥६२१॥

वह कहने लगी कि हे राधा! तुम जल्दी चलो। कृष्ण ने तुझे बुलाया है। तुम्हारे बिना उन्हें चैन नहीं मिल रहा है। भोजन, सुख, व्यवहार सब उन्हें अप्रिय हो गये हैं।

नव निकुंज में मिलों स्याम सों भेंटो भरि अँकवार।
कुसुम सेज पर करो केलि प्रिय गिरधर परम उदार ॥६२२॥

तुम निकुंज में चल कर उनसे गले मिलो, कुसुम शय्या पर क्रीड़ा करो।

तो बिन पियहि कछू नहिं भावे तोसों पिय आधीन।
तो बिन स्याम रहत हैं ऐसे जैसे जल बिन मीन ॥६२३॥

तुम्हारे बिना तुम्हारे प्रिय को कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। वे तो तेरे सर्वथा आधीन हैं। तेरे बिना तो वे इस प्रकार रह गये हैं जैसे जल के बिना मछली।

कहा सुभाव पर्‌यो सखि तेरो यह विनवति हौं तोह।
मान करति गिरवरधर पिय सों मानत नाहिन मोह ॥६२४॥

तेरा क्या स्वभाव हो गया है। मैं तुझसे विनती करती हूँ। कृष्ण जैसे प्रिय से मान करना तुझे शोभा नहीं देता।

करि सिंगार सकल व्रज सुन्दरि नीलाम्बर तनु साज।
रैनि अँधेरी कछू न दीखत नूपुर ध्वनि निज बाज ॥६२५॥

हे व्रज सुन्दरी! शृंगार करो। सुन्दर नीला वस्त्र पहिनो, पैरों में नूपुर ध्वनि बजाओ।

---

१. स्याम नारि के विरह भरे।
कबहुँक बैठत कुंज द्रुमनि तर, कबहुंक रहत खरे।
कबहुँक तन की सुरति बिसारत, कबहुंक तन सुधि आवत।
तब नागरि के गुनहिं बिचारत, तेई गुन गनि गावत।
कहुँ मुकुट, कहुँ मुरलि रही गिरि, कहुँ कटि पीत पिछौरी।
'सूर' स्याम ऐसी गति भीतर, आई दूतिका दौरी॥
सूरसागर, ३०५७

कुवलय दल कुसुमनि सेज्या रचि पंथ निहारत तोर।
सपन जाग अरु सयन सुसुप्ति तुव यचन सत्य है मोर ॥६२६॥

कमल लोचन कृष्ण पुष्पों से सेज रच कर तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। स्वप्न, जागृत और सुषुप्त अवस्था में तुम्हें ही ध्यान में रखते हैं। यह मेरा वचन सत्य मानो।

सित अरु पीत जूथिका बेनी गूँदो विविध बनाय।
रचो भाल निज तिलक मनोहर अंजन नयन सोहाय ॥६२७॥

श्वेत और पीले पुष्पों से जूड़ा सजाओ। माथे में टीका लगाओ, आँखों में अंजन दो।

तू छवि-सिंधु बिरह ब्रजनायक छुद्र नदी नहिं भावै।
जब तेरा स सुन्यो श्रवननि तुव रैनि नींद नहिं आवै ॥६२८॥

तू सुन्दरता की समुद्र है तेरे आगे भला कृष्णजी क्षुद्र नदी रूपी अन्य सुन्दरियों को क्यों चाहेंगे ? जब से तेरा नाम उन्होंने सुना है उन्हें नींद नहीं आती।

हरि राधा राधा रटत जपत मंत्र दुरदाम।
बिरह बिराग महाजोगी ज्यों बीतत हैं सब जाम ॥६२९॥

वे तो 'राधा राधा' नाम का मन्त्र रट रहे हैं। विरह रूपी विराग में महायोगी बनकर वे रात दिन बिता रहे हैं।

कबहूँक किसलय सेज सँवारत तेरे ही हित लाल।
कबहूँक अपने हाथ सँवारत गूँथत कुसुमनि माल ॥६३०॥

कभी वे कोमल पत्तों की शय्या तैयार करते हैं, कभी अपने हाथ से तेरे लिए फूलों की माला गूँथते हैं।

तुव बिन बट संकेत सदन बन देखत सघन उदास।
बिरह अगिनि चहुँ दिसि में धावत फूले दिखत पलास ॥६३१॥

तेरे बिना वट वृक्ष, मिलाप का संकेत-स्थल, घर, वन, देखते हैं और उदास हो जाते हैं। पलाश के लाल फूलों को देखकर उन्हें लगता है कि विरह की अग्नि सारे वन में लग रही है।

सारस हंस मोर पारावत बोलत अमृत बान।
बैठ रहे दुर सदन सघन बन ध्वनि नहिं सुनियत कान ॥६३२॥

सारस, हंस, मोर और कबूतर अमृतवाणी बोलते हैं किन्तु कृष्ण दूर सघन वन में बैठते हैं और पक्षियों की आवाज नहीं सुनते क्योंकि उन्हें कष्ट होता है।

कालिन्दी तट बिमल कदमतर करत मदन गुन ध्यान।
सुहृदय सखा त्यागि मनमोहन करत मधुर तुव गान ॥६३३॥

यमुना के किनारे स्वच्छ कदम्ब के नीचे बैठ कर वे तेरा ही ध्यान कर रहे हैं। अपने सखाओं को छोड़ कर वे तेरा ही गान कर रहे हैं।

गुंजत भ्रमरनि मधुप सुनत हैं तब धुनि की सुधि आवै।
कंचन बरन जात तेरो बपु पीताम्बर पहिरावै ॥६३४॥

जब वे भौरों की गूँज सुनते हैं तो उन्हें वेद की याद आती है। तेरे स्वर्ण रंग को स्मरण करके पीताम्बर पहिनते हैं।

सुनत कोकिला सब्द मधुर ध्वनि कमल नयन अकुलात।
तेरे बोल करत सुधि जिय में विरह मगन ह्वै जात ॥१३५॥

कोयल की मधुर वाणी सुनकर वे कमलों जैसे नेत्र वाले कृष्ण व्याकुल हो जाते हैं क्योंकि वे तेरी बोली को स्मरण करते और विरह-मग्न हो जाते हैं।

तुव नासापुट गात मुक्त फल अधर बिंब उनमान।
गुंजाफल सब के सिर धारत प्रगटी मीन प्रमान ॥१३६॥

तेरे नाक के मोती पर तेरे [होठों की चमक [का अनुमान करने के लिये वे गुंजाफल को लेकर धारण करते हैं। उनकी दशा ऐसी है जैसे जल से निकाली हुई मछली।

'सूरसागर' में भी कृष्ण के विरह का इसी प्रकार का वर्णन दूती राधाजी को अनेक पदों में सुनाती है।[1]

दृष्टकूट पद

सिन्धु सुता सुत ता रिपु गमनी सुन मेरी तू बात।
काम पिता वाहन भख को तनु क्यों न धरत निज गात ॥१३७॥

शब्दार्थ—सिंधु सुता सुत ता रिपु गमनी (सिंधु सुता=सीप, तासुत=मोती, ता रिपु=हंस)=हंस-गमनी। काम पिता-वाहन भख (काम पिता=ब्रह्मा, वाहन=हंस, हंस भख=मोती)=मुक्ता।

१. (अ) पिय की बात सुनहि चित प्यारी।
तब जु वियोग सोक अति उपज्यो, काम देह तिन जारी।
नेपज अधर सुधा है तुम पैं, चलियैं बिथा निवारी ॥ (सूरसागर, ३२०१)

(आ) जब जब तेरी सुरति करत।
तब तब ढबढबाइ दोउ लोचन, उमंगि भरत।
जैसें मीन कमल दल को चलि अधिक अरत।
पलक कपाट न होत तबहिं ते निकसि परत ॥
आंसु परत ढरि ढरि उर, मुक्ता मनहुं झरत।
सहज गिरा बोलत नवनत हित हेरि धरत ॥
राधा मैन चकोर बिना मुख चन्द्र जरत।
'सूर' स्याम तव दरस बिना नहिं धीर धरत ॥ (सूरसागर ३२०२)

(इ) राधे हरि तेरो नाम विचारैं।
तुम्हरोइ गुन ग्रंथित करि माला रसना कर सों टारैं।
लोचन मूंदि ध्यान धरि दृढ़ करि, पलक न नेकुं उघारैं।
अंग अंग प्रति रूप माधुरी, उर तें नाहिं बिसारैं।
ऐसो नेम तुम्हारो पिय कैं, कह जिय निठुर निहारैं।
'सूर' स्याम मन काम पुरावहु, उठि चलि कहे हमारैं ॥
(सूरसागर, ३२०५)

कृष्ण ने अपने हाथ में मुरली ले रखी है। उस पर सात स्वरों में 'राधा राधा' ही पुकार रहे हैं।

सूरसागर—जब जब मुरली कान्ह बजावत।

तब तब राधा नाम उचारत बारंबार रिझावत॥ (सूरसागर, १६७६)

सुत प्रह्लाद तासु सुत ता पित भ्राता वृथा गँवायो।
संज्ञा सुत वपु सदृश बसन तन सो तन लागत छायो॥६४३॥

शब्दार्थ—सुत प्रह्लाद तासु सुत ता पित भ्राता (सुत प्रह्लाद तासु सुत= वलि, ता पित=वैरोचन, भ्राता=शुक्र (वीर्य) काम=प्रेम)=प्रेम भाव। संज्ञा सुत सदृश बसन (संज्ञा सुत=वृहस्पति, वपु सदृश=पीला, वस्त्र=पीताम्बर।

उनका प्रेम भाव व्यर्थ हो रहा है। उन्होंने पीताम्बर से अपने शरीर को ढक लिया है।

सारंग ऊपर सारंग राजत सारंग शब्द सुनावै।
सारंग देख सुने मृगनैनी सारंग सुख दरसावै॥६४४॥

शब्दार्थ—सारंग=हाथ, मुरली, अमृत, कृष्ण, स्वर्ग।

कृष्ण के हाथों पर मुरली शोभायमान है और उससे अमृत ध्वनि सुनाई पड़ रहा है। हे मृगनैनी राधा, कृष्ण को देख सुन कर तो स्वर्ग का सुख दिखाई पड़ता है।

सारंग रिपु की वदन ओट दै कह बैठी है मौन।
ब्रह्मसुता सारंग के धोखे करत सकल ब्रज गौन॥६४५॥

शब्दार्थ—सारंग रिपु (सारंग=दीपक, दीपक का अरि-आँचल-वस्त्र)= घूँघट। ब्रह्मसुता=मुरली। सारंग=शब्द।

घूँघट की ओट किये तुम क्यों मौन बैठी हो। मुरली के शब्दों में मग्न होकर सारे ब्रजवासी जा रहे हैं।

सारंग सुता देखि सारंग को तेरो अटल सुहाग।
सारंग पति ता पति ता वाहन कीरत रट अनुराग॥६४६॥

शब्दार्थ—(सारंग सुता=सारंग=सूर्य=वृषभानु-सुता)=राधा, सारंग= रंगीले कृष्ण। सारंगपति=(सारंग=पक्षी, पक्षीपति=गरुड़, ता पति=विष्णु= कृष्ण। ता वाहन=मुरली।)

हे राधा! तू कृष्ण को देख, तेरा सुहाग अटल है। कृष्णजी वंशी पर तेरी ही कीरति गा रहे हैं।

दधिसुत वाहन सुभग नासिका दधिसुत वाहन देख्यो।
दधिसुत वाहन वचन सुनत तुव अंग अंग अवरेख्यो॥६४७॥

शब्दार्थ—दधिसुतवाहन=(दधिसुत=कमल, कमल वाहन है जिसका ब्रह्मा= ज्ञानी=शुकदेव=शुक) तोता। दधिसुत वाहन=(दधिसुत=उदधिसुत=चन्द्रमा, चन्द्रवाहन=मृग=नेत्र) नेत्र। दधिसुतवाहन=उदधिसुत अमृत को वहन करने वाले।

सोने के समान कृष्ण की नासिका है, मृग के समान उनके नेत्र हैं। इनको देखो। अमृत धारण करने वाले उनके वचनों को सुनकर तुम्हारे अंग अंग में प्रभाव पड़ रहा है।

> शशि को भ्रात कहत ता वाहन कुन्द कुसम ललचात।
> खंजन सदृश देख तव अँखियाँ तन मन में अकुलात ॥६४८॥

शब्दार्थ—शशि को भ्रात=बादल (चन्द्र और बादल दोनों सागर से उत्पन्न हैं) बादल का वाहन=बिजली।

कृष्ण के दाँतों को देखकर बिजली और कुन्द पुष्प ललचाते हैं और खंजन के समान तेरी आँखों को देखकर उनकी आँखें अकुलाती हैं।

> भासत सुरपति रिपु ता पतनी ता सुत वाहन बात।
> श्रवन सुनत अकुलात साँवरो कछुक कहो नहिं जात ॥६४६॥

शब्दार्थ—सुरपतिरिपु ता पतनी ता सुत(सुरपति=विष्णु=कृष्ण, रिपु=इन्द्र=बादल, ता पत्नी=बिजली, ता सुत=गर्ज)=बादल की गर्जन।

बिजली चमक रही है, उसकी गरज हो रही है। उसे सुनकर कृष्ण इतना अकुला रहे हैं कि कुछ कहा नहीं जाता।

> चतुरानन सुत ता सुत पतनी ता सुत को जो दास।
> ता सुत वाहन पुत्र अंग धरि जल सुत करौं प्रकास ॥६५०॥

शब्दार्थ—चतुरानन सुत ता सुत पतनी ता सुत को जो दास ता सुत वाहन पुत्र (चतुरानन=ब्रह्मा, सुत=पुलस्त्य, सुत=रावण, पत्नी=मदोदरी, ता सुत=मेघनाद=मेघ (बादल), दास=पवन, ता सुत हनुमान (बन्दर), वाहन=वृक्ष, (चन्दन), पुत्र—चूर्ण)=चन्दन का चूर्ण।जलसुत=चन्द्रमा=चन्द-मुख।

अब तुम चन्दन चूर्णों से शृंगार करो और अपने चन्द्रमुख को सजाओ।

> श्री बलदेव रास जो कहिये तामे भान मिलाय।
> ताकी सुता कहत चतुरानन निगम सदा गुन गाय ॥६५१॥

शब्दार्थ—श्रीबलदेव रास=वृष (बलराम जी की जन्म-राशि वृष थी)+भान=वृषभानु, ताकी सुता=राधा।

हे वृषभानु सुता राधा, तेरा सभी वेदों ने गुणगान किया है। तू तो बहुत अच्छी है, बात मान जाओ।

> सिंधु सुता तव भाग्य बिलोकत मन में रही लजाय।
> काम पिता माता गुरु ता वपु युवति कोटि दरसाय ॥६५२॥

शब्दार्थ—सिंधु सुता=लक्ष्मी। काम पिता माता गुरु ता वपु (कामपिता=ब्रह्मा, माता=कमल नाल, नाल का गुरु=कमल, सहस्रदल, तावपु युवति=हजारों सुन्दरियों मे कोटि=श्रेष्ठ।

लक्ष्मी भी तेरा भाग्य देखकर लजा जाती है। सहस्रों सुन्दरी स्त्रियों में तू श्रेष्ठ दिखाई पड़ती है।

सातों रास मेल द्वादश में ऐसे बीतत याम।
द्वितिय रास में मिलत सप्तमी सो जानत निज धाम ॥१५३॥

शब्दार्थ—सातों रास = सातवीं राशि तुला = तुल्य = समान। द्वादश = बारहवीं राशि मीन = मछली। द्वितीय राशि = दूसरी राशि = वृष, सूर्य। सप्तमी = तुला = समान।

जल से निकाली हुई मछली के समान कृष्ण के आठो पहर बीत रहे हैं। उन्हें अपना घर सूर्य के समान जलता हुआ लगता है।

सैल सुता धर ता रिपु बाँधत अंग अंग पिय आज।
कोटि यत्न करि सींचत तौऊ मिटत नहीं व्रजराज ॥१५४॥

शब्दार्थ—शैल सुता धर ता रिपु = (शैलसुता = गंगा, गंगाधर = शिव, ता रिपु = कामदेव)—काम।

काम श्री कृष्ण के अंग अंग को जला रहा है। अनेक यत्न करके वे शरीर को ठंडा करते हैं फिर भी उन्हें शान्ति नहीं मिल रही है।

वायस अजा शब्द मन मोहन रटत रहत दिन रैन।
तारापति के रिपु पर ठाढ़े देखत हैं हरि नैन ॥१५५॥

शब्दार्थ—वायस अजा शब्द (वायस शब्द = कौए का शब्द = कां = का और अजा (बकरी) शब्द म) = काम। तारापति के रिपु (तारापति = चन्द्रमा के रिपु = राहु = राह) = रास्ता।

कृष्ण काम (प्रेम) को रात दिन रटते हैं अर्थात् मन में प्रेमभाव रखते हैं और राह पर खड़े अपने नेत्रों को लगाये रहते हैं अर्थात् तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

'साहित्य लहरी' में यही दृष्टकूट मिलता है।

वायस सब्द अजा को मिलवन कीनो काम अनूप।
सब दिन राखत नीकन आगे सुन्दर स्याम सरूप ॥ पद सं० ६८

गंगा सुत रिपु रिपु सिष मेरी सुनत नहीं सखि काह।
नारायण सुत ता सुत ता सुत लगत विषम विष ताह ॥१५६॥

शब्दार्थ—गंगासुत रिपु रिपु (गंगासुत = भीष्म, रिपु = अर्जुन, रिपु = कर्ण = कान) = कान। नारायण सुत ता सुतता सुत (नारायण सुत = कमल-नाल, सुत = कमल, ता सुत = पराग) = पुष्प पराग।

हे सखी! तेरे कान मेरी सीख क्यों नहीं सुनते। आज तुझको पुष्प पराग (सौन्दर्य का साधन) विषम विष के समान लग रहा है।

जलसुत वाहन देख वदन तुव ब्रह्मसुता अकुलानी।
मंगल मात तासु पति वाहन राजत सदृश भुलानी ॥१५७॥

शब्दार्थ—जलसुतवाहन (जलसुत = कमल, वाहन = जल = आँसू, ब्रह्म सुता = वाणी) मंगल मातु तासु पति वाहन = (मंगल की माता = पृथ्वी, उसका पति = ब्रह्मा, उसका वाहन = बुद्धि) बुद्धि।

तेरे मुख पर आँसू बहते देखकर वाणी अकुला उठी है। लगता है बुद्धि भुला गयी है।

दक्ष प्रजापति की तनया पति ता सुत नार गई।
सिंधु सुता पति वाहन की गति देखत विषम भई ॥६५८॥

शब्दार्थ—दक्ष प्रजापति की तनया पति ता सुत (दक्ष प्रजापति की तनया = सती, पति = शंकर, ता सुत = गणेश = शान्त = अचल। सिंधु सुता पति वाहन की गति (सिंधु सुता = लक्ष्मी, पति = विष्णु, वाहन = गरुड़-की गति = तेज जैसे मन) मन।

राधा बिल्कुल शान्त और अचल है। उसका मन बिल्कुल विषम (कठोर) हो गया है।

अग्नि तात तेहि तात अंगना त्यों उनमे तू राखी।
बंधु कुसुम द्रुम ता रिपु को पति सारंग रिपु कर भाखी ॥६५६॥

शब्दार्थ—अग्नि तात तेहि तात अंगना (अग्नि तात = पत्थर, तेहि तात = पर्वत) अंगना (स्त्री) = कठोरता। बन्धु कुसुम ता रिपु को पति (बंधु कुसुमद्रुम = कल्प वृक्ष, ता रिपु = बलराम। (वे कल्पवृक्ष स्वर्ग से उखाड़ लाये थे) = बलराम पति (स्वामी) = कृष्ण। सारंग रिपु = हिरण—शत्रु = व्याध = कपटी।

तूने कृष्ण के प्रति कठोरता धारण कर ली है और उन्हें कपटी (व्याध) कहकर पुकार रही है।

पति पाताल लग्न तन धारन सो सुज भुजा बिसारी।
प्रथम मथत जलनिधि जो प्रकट्यो सो लागत सब नारी ॥६६०॥

शब्दार्थ—पति पाताल = बलि। लग्न तन धारन = बलि के लिए शरीर धारण करने वाले = वामन अर्थात् कृष्ण। प्रथम मथन जलनिधि जो प्रकट्यो = लक्ष्मी।

भगवान कृष्ण की सुखदायी बाँहों को तुमने भुला दिया है किन्तु तुम उनको नारियों के बीच साक्षात् लक्ष्मी सी लगती हो।

बंधु कुमुद पति पिता सुता जो तुव जस मधुरं गावै।
ब्रह्म सुता सुत पदरज परसत सारंग सुता देखावै ॥६६१॥

शब्दार्थ—बंधु कुमुद पति पिता सुता (बंधु कुमुद = चन्द्रमा, चन्द्र पति = सूर्य, सूर्य-पिता = ब्रह्मा, ब्रह्मा-सुता = योगमाया) = मुरली।

ब्रह्मसुता सुत = (ब्रह्मसुता = मुरली—सुत राग) = संगीत। सारंग-सुता = सागर-सुता = लक्ष्मी—श्री = शोभा।

कृष्ण की मुरली तुम्हारा यशगान गाकर रही है। संगीत चरणों पर लोट रहा है और शोभा विराजमान है।

इन्द्रसुता पति भुजा लगन सलि जलसुत हृदय लगावै।
इन्द्र सुता तनया पति को सुत तारे गुने न पावै ॥६६२॥

शब्दार्थ—इन्द्रसुतापति = (इन्द्र = बादल, सुता = बिजली = पति = बादल, घन) = घनश्याम। जल-सुत = कमल।

इन्द्र सुता तनय पति को सुत (इन्द्र-सुता=वर्षा, तनया=कमलिनी, पति=कमल-सुत=ब्रह्मा ।

घनश्याम कृष्ण भुजाओं से लगना चाहते हैं अतः वे कमल को लेकर हृदय से लगा लेते हैं ।

अर्थात् कृष्णजी तुमसे मिलने के लिए बड़े आतुर हैं। उनकी इस विरह पीड़ा को ब्रह्मा भी नहीं समझ सकते ।

धरत कमल में कमल कमल कर मधुर वचन उच्चार ।
कमला वाहन गहत कमल सों कमलन करत विचार ॥६६३॥

शब्दार्थ – कमल=हृदय, कमल । कमला वाहन=कमल । कमल=हाथ ।

इस समय कृष्ण प्रतीक रूप में स्वीकार कर अपने हृदय में कमल धारण करते हैं और हाथ में भी कमल लिए हुए मधुर वचन बोल रहे हैं। कमल को कर (कमल) से पकड़े हुए कमल के सम्बन्ध में ही विचार मग्न हैं ।

कालिन्दी पति नैन तासु सुत लागत हैं सव लोग ।
इन्द्र मात तेहि तात सो सरधत प्रगट देखियत भोग ॥६६४॥

शब्दार्थ—कालिन्दी पति नैन तासु सुत (कालिंदी पति=कृष्ण) इन्द्रमात=अदिति । तेहितात (पुत्र) – वामन भगवान्=कृष्ण, सरधत=श्रद्धापूर्वक देखना ।

कृष्णजी के कमल नेत्रों से सभी लगे हैं और सभी लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक देख रहे हैं ।

अम्बुज मात तात पति ता रिपु ता पति काम विगारै ।
ताते सुन तू भाननन्दिनी मेरो वचन विचारै ॥६६५॥

शब्दार्थ—अम्बुज मात तात पति ता रिपु ता पति (अम्बुज मात=कमल-नाल, तात (पुत्र)=कमल, पति=सूर्य-ता रिपु=अन्धकार=रात्रि, तापति=राका-पति=चन्द्र)=चन्द्रमा । भाननंदिनी=वृषभानुनंदिनी=राधा ।

विरह की स्थिति में चन्द्रमा काम विगाड़ रहा है, विशेष कष्ट पहुँचा रहा है। इसलिए हे राधा ! अब तू मेरे वचनों पर विचार कर ।

तीस भान द्वै मास सकल ऋतु सिंधु सुता सन जान ।
भूषन अंग लसत गुंजावलि और न कछू समान ॥६६६॥

शब्दार्थ—तीस मान=तीस दिन=सारे महीना । सिंधु सुता=लक्ष्मी=राधा ।

कृष्णजी सारे दिन, महीने और ऋतुओं में राधा से ही चित्त लगाते हैं। इस समय उनके शरीर पर गुंजा की माला ही शोभायमान है और कुछ सामान नहीं है अर्थात् अब तो वे तेरे ही नाम की माला जप रहे हैं ।

विशेष—डा० टंडन अपनी 'सारावली एक प्रामाणिक रचना' नाम के ग्रंथ में दृष्टकूटों के (६३७-६६६) पदों को बिल्कुल ही छोड़ गए हैं। ग्रन्थ की एक-एक पंक्ति

को देखकर उन्होंने या तो 'सूरसागर' से भिन्नता देखी है या 'सूरसागर' के पदों की चोरी दिखाई है। पर दृष्टकूट पद-रचना जो साधारण कवि से हो नहीं सकती और इसमें चोरी का आश्रय ही चारा होता है इस प्रकरण को बिल्कुल छोड़ देने का आशय कदाचित् यह है 'सारावली' के दृष्टकूट बिल्कुल मौलिक हैं। इसमें 'सूरसागर' के दृष्टकूटों की पंक्तियाँ नहीं मिलतीं। 'सूरसागर' के इस प्रकरण में भी दृष्टिकूट हैं फिर भी सारावलीकार ने चोरी नहीं की। तब बेचारे डा० टंडनजी क्या करते, मौन रहना ही उचित था।

कबहुँक सेज रचत बेदी कर हृदय होम घृत नैन।
विप्र भोज बोलत तुव देखियत अंग कृस नहिं चैन ॥६६७॥

कृष्ण शैय्या रचकर तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनकी बनायी हुई शय्या रूपी वेदी है, हृदय रूपी हवन है और घी रूपी आँसू हैं, ब्राह्मण भोजन के निमित्त तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है। उनको किसी प्रकार चैन नहीं है। इस प्रकार का जो प्रेम-यज्ञ वे कर रहे हैं उसमें तू चल और यज्ञ की पूर्ति कर।

अलंकार — सांग रूपक

अब तू वेगि विचार वचन मम सुनु वृषभानु कुमारि।
मिलिहौ वेगि कमल दल लोचन सुनु मेरी मनुहारि ॥६६८॥

इसलिए हे वृषभानु कुमारी राधा ! अब तू शीघ्र ही मेरे वचनों पर विचार कर और कमल-लोचन कृष्ण से मिल। तू अब तो मेरा निवेदन स्वीकार कर ले।

गौर बरन हूँ जात साँवरो ध्यान करत तुव अंग।
पुनि ललिता हरि के ढिग आई बैठे श्यामल रंग ॥६६६॥

मैं देख रही हूँ कि तेरा गौर वदन साँवला होता जा रहा है। इतना कहने पर भी राधा नहीं बोली। तब ललिता कृष्ण के पास वापस आयी।

विशेष—गुरुमान की स्थिति में नायिका बोलती ही नहीं। 'सूरसागर' में भी नहीं बोलती।[1]

---

(१) काहि मनाऊँ स्याम लाल जू बाल न नैंकहुँ दीठि।
मुखहूँ जो बोलै तो सहिए, मन की ऐम तुम्हारी हीठि ॥
अपनी सी मैं बहुत कही पै, आइ बूंद कहा को बसीठि।
सूरदास प्रभु आपुहि जैयैं जैसी बयारि तैसी कीजै पीठि ॥

(सूरसागर ३१६६)

बिहरति मान-सर सुकुमारि।
कैसेहू निकसति नहीं हौं रही करि मनुहारि।
मौन धारि अपार रचि अवगाहि आँसु जु वारि।
... ...
सूर आपुन आनियै गहि बाँहि नारि निवारि ॥ (सू० सा० ३१६३)

वेगि चलो तुम स्याम मनोहर आपु काज मँह काज।
लेहु मनाय प्राणप्यारी को प्रगट्यो कुंज समाज ॥९७०॥

ललिता जी कहती हैं कि हे कृष्ण जी ! आप स्वयं तुरन्त कुंज में चलिए और स्वयं अपनी प्राण प्यारी जी को मनाइये।

ऋतु वसंत अब आय देखियत फूले कुसुम सुरंग।
मानो मदन वसंत मिले दोउ खेलत हैं रस रंग ॥९७१॥

वसन्त ऋतु आ गया है। फूल चारों ओर खिले हैं। ऐसा लगता है मदन और वसन्त दोनों मिल कर रस-रंग खेल रहे हैं।

विशेष—मदन और वसन्त का मानवीयकरण किया गया है। वसन्त ऋतु में पुष्पादि खिलते हैं और अदृश्य काम सर्वत्र साकार हो जाता है। ललिता का तात्पर्य यह है कि वसन्त का अदृश्य प्रभाव राधा पर भी होगा और कुंज-विहार का समय आ चुका है अतः अब मिलन आवश्यक है।

वेगि चलो अब पिया मनावन नेंक विलम्ब न लाओ।
मेरी कही बात नहिं मानत ता को ज्ञान दृढ़ाओ ॥९७२॥
परो पांय अपराध क्षमावन सुनत मिलेगी धाय।
सुनत वचन दूतिका वदन में स्याम चले अकुलाय ॥९७३॥

आप स्वयं राधा जी को मनाने चलो। वह मेरा कहना नहीं मान रही है। आप स्वयं उसे समझाओ। वह गुरु मान में है। आप उसके पांव पर पड़िये[1] और अपराधों की क्षमा मांगिये। ऐसा करने पर वह दौड़ कर मिल जायगी। उसके वचनों को सुन कृष्ण जी बड़ी तीव्रता से चल पड़े।

जहँ बैठी वृषभानुनन्दिनी तहँ आये धरि मौन।
परे पांय हरि चरण परस करि छिम अपराध सलोनि ॥९७४॥

जहाँ राधा जी बैठी थीं वहीं श्रीकृष्ण जी चुपचाप आ गये। राधा जी के पांव पड़े और चरण स्पर्श करके कहा—हे सलोनी ! मेरे अपराधों को क्षमा करो।

विशेष—'सूरसागर' में भी कृष्ण ने जब राधा जी के चरण-स्पर्श किये तभी उनका मान छूटा—

जब परसे प्यारी चरन, परम प्रीति नंद नंद ॥
छुट्यो मान हरषी प्रिया, मिट्यो विरह दुख दंद ॥
(सूरसागर, पद ३४४६)

साहित्य लहरी- सूरदास दृष्टांत पाइं पर देखत नंद दुलारो। (पद सं० २१)
'सूर स्याम' सुजान पाइन परो कारो कान ॥ (पद सं० २२)

---

१. गुरु मान के निवारण के लिए पांव पड़ना आवश्यक है—
सहजैं हाँसी खेल तें, विनय वचन सुनि कान।
पांय परैं पिय के मिटै, लघु, मध्यन, गुरुमान ॥ (भाषा भूषण)
अर्थात् मान तीन प्रकार के हैं—लघु, मध्यम और गुरु।
इनका निवारण क्रमशः हँसी-खेल, विनय और पांव पड़ने से होता है।
इस प्रकार गुरु मान का उपाय नायक का पांव पड़ना ही है।

मुनि हरि वचन विलोकति सोभा गयो मान मन छूट ।
मिले धाय अकुलाय स्याम घन प्रेम काम रस लूट ॥६७५॥

कृष्ण के वचन सुनकर राधा ने उनके रूप पर दृष्टि डाली और उनका मान छूट गया। फिर तो कृष्ण बड़ी तेजी से उसे गले मिले और गाढ़ालिंगन का आनन्द लेने लगे।

रच्यो सिंगार स्याम अपने कर नख सिख प्रिया बनायो ।
सीस फूल बेनी नक बेसर तिलक भाल करवायो ॥६७६॥
जुग ताटंक चिबुक दसनावलि कर कंकन उर माल ।
नूपुर पद कटि क्षुद्रघंटिका सब सिंगार रसाल ॥६७७॥
सकल सिंगार करत बरनन को कृपा जथा मति मोर ।
होत विलम्ब मिलन के कारन ताते बरनत थोर ॥६७८॥

अब कृष्ण ने अपने हाथों से राधा जी का नख से सिख तक शृंगार किया। शीश फूल पहिराया और वेणी सँवारी। नाक में बेसर, माथे पर टीका, कान में दो काँटे पहिनाए। हाथ में कंगन, गले में माला, पाँव में पाजेब, कटि में किंकिणी आदि सभी आभूषण पहिनाये।[1] राधाजी का शृंगार-वर्णन मैं और विस्तार से यथामति करता, किन्तु अब तो राधा-कृष्ण के संयोग के लिए विलम्ब हो रहा है। इसलिए थोड़ा ही वर्णन किया है।

निकुंज-विहार

चले धाय नवकुंज दोउ मिलि किसलय सेज विराजे ।
परिरंभन मुखरास हास मृदु सुरत केलि सुख साजे ॥६७९॥

अब दोनों नवकुंज में दौड़ कर पहुँचे। वहाँ पर मुलायम पत्तों और पुष्पों की शय्या थी उसी पर आसीन हुए और अब सुख की राशि परिरंभण, मृदु हास और सुरति क्रीड़ा में मग्न हो गये।

नाना बंध विविध रस क्रीड़ा खेलत स्याम अपार ।
रस रस तत्व भेद नहिं जानत वपति अंग सँभार ॥६८०॥

नाना प्रकार के आसनों के द्वारा वे रस क्रीडा में इतने मग्न हो गये कि उन्हें अपने अंग की सुधि न रही।[2]

---

१. मोहन मोहिनि अंग सिगारत ।
बेनी ललित ललित कर गूँथत, सुन्दर माँग सँवारत ।
... ...
सूरस्याम तिय अंग सँवारत, निरखि आप मनमोहन ।
(सूरसागर पद ३२४७)

२. 'सूरसागर' में राधा-कृष्ण की सुरति-लीला बहुत विस्तार से है—
नवल निकुंज नवल नवला मिलि नवल निकेतन रुचिर बनाए ।
विलसत विपिन विलास विविध वर वारिज वदन विकच सचुपाए ॥

सुरति समुद्र मगन दंपति झेलत अति सुख झेल ।
निरवधि रमन अपरमित अच्युत मनुज भाय बहु खेल ।।९८१।।

सुरति-सागर में दोनों मग्न हैं और उसका आनन्द ले रहे हैं। भगवान् जो अनन्त हैं, असीम और अच्युत हैं वे आज मनुष्य की भाँति अनेक प्रकार की संयोग क्रीड़ाएँ कर रहे हैं।

विशेष—सुरति-क्रम में भी कृष्ण के ईश्वरत्व पर संकेत प्रस्तुत किया है। 'सूरसागर' में भी सुरति-क्रीड़ा में इसी प्रकार कथन है—

जेइ कमल सनकादिक दुरलभ, जिनहि निकसी गंग।
तेई कमल 'सूर' तिल चितवत, निपट निरंतर संग ।।
(सूरसागर ३०८५)

नूपुर संचित किंकिन की ध्वनि की धुनि सुनत मधुर किलकार।
मदन सिंधु मधु मत्त मधुपगन फूले करत गुंजार ।।९८२।।

इस सुरति-क्रम में राधा की पायजेबों और किंकणी के मधुर स्वर सुनाई पड़ रह हैं। वह ऐसी लगती हैं मानो काम के सागर में मदमत्त भौंरे गुंजार कर रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा

मधुप यूथ मिलि सबनि चन्द्रमा तड़ित लिये आकाश।
खंजन मीन बजावत गावत निरतत सुख सुविलास ।।९८३।।

राधा जी के मुख के चारों ओर बालों की शोभा देखकर कवि कहता है कि भौंरों के झुंड चन्द्रमा और बिजली को चारों ओर से घेरे हैं। खंजन और मीन रूपी नेत्र मिल-मिल कर रस-रंग में नृत्य कर रहे हैं और सुख-विलास में लीन हैं।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

जलद समूह खसत उडुगन गन पै समुद्र के बीच।
मकर कपोल बोल मृदु कोकिल अमृत सुधारस सींच ।।९८४।।

रति-क्रीड़ा के बीच बाल रूपी बादलों से मोती रूपी तारे गिरते हैं और कुच रूपी दुग्ध सागर में गिरते हैं।

लागत चन्द्र मयूख सुतिय तनु, लता भवन रंध्रनि मग आए।
मनहुँ मदन-वल्ली पर हिमकर, सींचत सुधा सार सत नाए।
सुनि सुनि सुचित स्रवन जिय सुन्दरि, मौन किये मोदति मन लाए।
सर सखी राधा माधव मिलि क्रीड़त रति रति-पतिहि लजाए ।।
(सूरसागर २६०५)

हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्हो।
प्रिया बिनु बसन करि, उलटि धरि भुजन भरि,
सुरति रति पूरि अति निबल कीन्हीं ।।
... ...
सूर प्रभु नवल-नवला, नवल निकुंज गृह अंत नहिं
लहत दोउ रति बिहारें। (सूरसागर २६०७)

'सूरसागर' में भी सुरति-वर्णन के एक पद में यही रूपकातिशयोक्ति मिलती है—

जलद तैं तारा गिरत ससि परत पयनिधि माँहि। (सूरसागर २७५०)

मकराकृत कुंडल कपोलों पर सुशोभित हैं। दोनों कोनन की दोनों-सी लगती है। अधरों पर सुधारस प्रवाहित है।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति, उपमा और रूपक।

मोहन बेल सृंगार विपट सों उरझी आनंद बेल।
कंचन बेल तमालहिं लपटी रसिक रस भरि रेल ॥६८५॥

राधा कृष्ण के पास इस प्रकार लिपटी है जैसे मोहिनी लता शृंगार रूपी वृक्ष से उलझ गयी हो। अथवा स्वर्ण बेलि तमाल वृक्ष से लिपटी है,[1] और रस-रेल में मग्न है।

युगल कमल सों मिलत कमल युग युगल कमल ले संग।
पाँच कमल मध्य युगल कमल लखि मनसा भई अपंग ॥६८६॥

शब्दार्थ—युगल कमल=दो नेत्र। युगल कमल=राधा और कृष्ण के मुख। पाँच कमल=एक मुख कमल+दो नेत्र-कमल+दो हस्त कमल। युगल कमल=दो कुच-कमल।

कृष्ण के नयन राधा के नयनों से मिल रहे हैं और दोनों के मुख पास-पास आ जाते हैं। राधा के अंगों (मुख (१) नेत्र (२) हाथ (२) और उनके पाँच कुचों (२) को देखकर कृष्ण जी अपनी सुधि-बुधि खो देते हैं।[2]

किरन कदम्ब कंचुकी पूरन सौरभ उड़त अवेस।
अगर धूप सौरभ नासा सुख बरषत परम सुदेस ॥६८७॥

शब्दार्थ—किरण कदम्ब=कदम पुष्प से निकली हुई किरण रूपी रेखें=रोमाव। सौरभ=सुगन्धि, अगराग आदि की सुगन्धि।

परिरम्भण के कारण दोनों के शरीर रोमांचित हैं। शरीर के अगराग आदि

---

१. 'सूरसागर' में भी पंक्ति है—

कनक बेलि तमाल अरुझी, सुभुज बंधन खोलि ॥ (सूरसागर २७५१)

२ 'सूरसागर' में इसी से मिलता-जुलता एक दृष्टकूट है —

देखि सखि पाँच कमल द्वै सम्भु।
एक कमल ब्रज ऊपर राजत, निरखत नैन अचम्भु ॥
\+ \+ \+
षट जु कमल मुख सन्मुख चितवत, बहु विधि रंग तरंग।
जेइ कमल सनकादिक दुरलभ, जिनही लिखगी तन।
तेई कमल 'सूर' तिन चितवत, निपट निरंतर संग ॥

(सूरसागर पद, ३०८५)

की सुगन्धि उड़ती है। शरीर की सुगन्धि का आनन्द सूँघ कर दोनों सुख की अनुभूति कर रहे हैं।

कुंद कुमुद बंधूक मिलत पुनि मीन देख ललचात।
तापर चन्द्र देख संज्ञा-सुत तन में बहुत डेरात ॥९८८॥

शब्दार्थ—कुंद कुमुद=दांत। बंधूक=होठ। मीन=नेत्र। चंद्र=दंत-क्षत। संज्ञा-सुत=बृहस्पति-जीव।

राधा और कृष्ण के दांत और होठ मिल रहे हैं। इस चुम्बन के सुख को देखकर नेत्र ललचा रहे हैं। इसी बीच राधा के अधरों पर दंद-क्षत देख कर कृष्ण का जी डरने लगता है।

बरना-भख कर में अवलोकत केस-पास कृत बन्द।
अधर समुद्र सदल जो सहसा धुनि उपजत सुख कन्द ॥९८९॥

शब्दार्थ—बदना-भख=पुष्प।

कृष्ण जी अपने हाथों में राधा जी के केशपाश में बँधे हुए पुष्पों को देखते हैं। वे अधरामृत के पान में लग्न हैं। चुम्बन में सहसा सुखकारी ध्वनि निकल जाती है।[1]

मुदित मराल मिलत मधुकर सों खंजन मिलत कुरंग।
कीर कीर रनधीर मिलत सम रति रस लहर तरंग ॥९९०॥

शब्दार्थ—मराल हँस=हँसने वाले कृष्ण के अधर। मधुकर=मिठास उत्पन्न करने वाले राधा के अधर। खंजन=राधा के नेत्र। कुरंग=कृष्ण के नेत्र। कीर-कीर=राधा-कृष्ण की नाक।

कृष्ण और राधा के होंठ, नेत्र और नाक एक दूसरे से मिल रहे हैं। इस प्रकार दोनों रति-युद्ध में वीरता से लड़ रहे हैं। रस की तरंगें उठ रही हैं।

सुरति समुद्र कहत दम्पति कैं निरवधि रमन अपार।
भयो शेष मन मूढ़ कहन को राधा कृष्न विहार ॥९९१॥

राधा-कृष्ण की संभोग लीला अपार सागर और अनंत है। इसका वर्णन करने में मन मूढ़ हो जाता है।

निकुंज लीला का माहात्म्य

शोभा अमित अपार अखंडित आप आत्मा राम।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम सब विधि पूरन काम ॥९९२॥
आदि सनातन एक अनूपम अविगत अल्प अहार।
ओंकार आदि वेद असुरहन निर्गुन सगुन अपार ॥९९३॥

प्रभु के आनन्द रूप की शोभा असीम अपार है। प्रभु अखंड और आत्माराम

---

१. 'सूरसागर' में इसी भाव की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

लपटे अंग सो सब अंग।
+ +
गिरत कर ते कुसुम कुन्तल, अरल तरल तरंग।
नवल मृग-दृग त्रिषित आतुर पिवत नीर निसंग॥
(सूरसागर पद २७५०)

है। पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से पूर्ण काम रूप में प्रकट हैं। प्रभु अनादि हैं, सदा एक रूप में अनुपम हैं, उनका रूप अव्यक्त और सूक्ष्म है। उन्हें इस रूप में वेद में कहा है। वे असुरों का विनाश करने के लिए अपने निर्गुण निराकार को सगुण साकार रूप देते हैं।

चतुरानन पंचानन अरु पुनि षट आनन सम जान।
सहसानन बहु आनन गावत पार न पाय बखान ॥९९४॥

चार मुख वाले ब्रह्मा, पाँच मुख वाले शिव, छः मुख वाले स्वामी कार्तिक, हजार मुख वाले शेषनाग आदि अनेक मुखों से उनकी महिमा गाते हैं पर पार नहीं पाते।

सघन कुंज में अमित केलि सब तनु सुगन्ध की रेल।
मधुकर निकर आय पीवत रस सुखद सदा रस भेल ॥९९५॥

वृन्दावन के सघन निकुंजों में प्रभु के शरीर से निकलने वाली सुगन्धि को प्राप्त करने के लिए भ्रमर समूह रूपी मुख भूमि पर आते हैं और परमानन्द रस की प्राप्ति करते हैं।

मगन भये रस मानसरोवर मुनिजन मानस हंस।
चकित विलोकि सारदा बरनन करिये बहुत प्रशंस ॥९९६॥

मुनियों के मन रूपी मानसरोवर के हंस रूपी जीवात्माएँ रस-मग्न हो जाती हैं। सरस्वती इस परमानन्द को देख कर थक जाती है और प्रशंसा करने में असमर्थ हो जाती हैं।

वृन्दावन निज धाम परम रुचि बरनन कियो बढ़ाय।
व्यास पुरान सघन कुंजन में जब सनकादिक आय ॥९९७॥

व्यास जी ने भागवत पुराण में बड़ी रुचि के साथ वृन्दावन के निज धाम की निकुंज लीला का वर्णन किया और सनकादिक ऋषियों ने सुना।

धीर समीर बहत तोहि कानन बोलत मधुकर मोर।
प्रीतम प्रिया बदन अवलोकत उठि उठि मिलत चकोर ॥९९८॥

उस वृन्दावन में मद-मद वायु बह रही है और भौंरे तथा मोर आदि गा रहे हैं। वहाँ पर प्रिया और प्रियतम (राधा कृष्ण) एक दूसरे का मुँह देख रहे हैं।

अमित एक उपमा अवलोकत जिय में परत विचार।
नहिं प्रवेस अज सिव गनेस पुनि कितक बात संसार ॥९९९॥

इस असीम परमानन्द रूप की उपमा कहीं प्राप्य नहीं है। यहाँ पर ब्रह्मा, शिव और गणेश का भी प्रवेश नहीं है फिर संसार की बात ही क्या है।

सहस रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।
कुमुद कली विकसित अम्बुज मिलि मधुकर भागो सोय ॥१०००॥

प्रभु के रूप सहस्र हैं, अनेक हैं। समस्त जगत में प्रभु रूप ही है अतः वही अनेक रूप में हैं। वह एक निर्गुण निराकार रूप है और उसके दो रूप राधा

भी हैं। कुमुद कली (राधा) कमल (कृष्ण) के साथ मिल कर विकसित है। भौंरे उनका रस ले रहे है। तात्पर्य यह कि राधा-कृष्ण विहार परमानन्द रूप है वेद (भृंग) उसका गुणगान करते हैं।

नलिन पराग मेघ माधुरि सों मुकुलित अम्ब कदम्ब।
मुनि मन मधुप सदा रस लोभित सेवत अज सिव अम्ब ॥१००१॥

कमलों में पराग है। बादलों की माधुरी के कारण आम और कदम्ब खिले हुए हैं। तात्पर्य यह कि विहार के कारण राधा-कृष्ण में स्वेद कण दिखाई पड़ रहे हैं। उनमें विहार की आनन्द-वर्षा के कारण रसात्मकता (रसाल) और रोमांच (कदम्ब) है। इस आनन्द रूप का दर्शन करने के लिए मुनियों के मन रूपी भ्रमर सदा लालायित रहते हैं और जिसके लिए ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी सेवा लग्न हैं।[1]

गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ वरष प्रवीन।
शिव विधात तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन ॥१००२॥

गुरु की कृपा से सरसठ वर्ष की प्रवीणावस्था में मैंने प्रभु के युगल स्वरूप का दर्शन किया। प्रभु का यह युगल स्वरूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शंकर और ब्रह्मा जैसे ने बड़े तप किये फिर भी वे प्रभु के इस रूप का पार न पा सके।

टिप्पणी—गुरु प्रसाद—गुरु से यहाँ गुरु वल्लभाचार्य और गुरु विट्ठलनाथ दोनों से तात्पर्य है। गुरु वल्लभाचार्य ने प्रभु के बाल रूप का मुख्य रूप से और दाम्पत्य रूप का निरूपण सांकेतिक रूप से किया था। इसीलिए उनके काल में वात्सल्य और सख्य भक्ति का विशेष प्रचार था। उन्होंने सूरदासजी को शान्ता तथा दास्य-भक्ति से हटा कर वात्सल्य, सख्य और माधुर्य की ओर उन्मुख किया था। कृष्ण भक्ति की चरमावस्था मधुरा भक्ति है। इस मधुरा भक्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा गुरु विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्गीय सेवा-पद्धति में लगभग संवत् १६०२ में किया था। इस प्रकार सूरदास जी भक्ति भावना की चरम सीमा पर आज पहुँचे। स्वाभाविक है कि इस

---

१. 'सूरसागर' में भी निकुंज के माहात्म्य पर इसी प्रकार के कथन मिलते हैं। जैसे—

सहसानन कहत न आवै, जिहिं निगम नेति नित गावै।
सुख आनन्द पुंज बढ़ायो ? क्यौ जात सूर पै गायो।

(सूरसागर दशम स्कंध, ११८२)

श्री वृन्दावन कुंज कुंज प्रति अति विलास आनंद।
अनुरागी पिय प्यारी के संग रस रांचे सानंद॥

(सूरसागर दशम स्कंध, ११८३)

जुगल किसोर चरन रज बंदौं, 'सूरज' सरन समाहि।
गावत सुनत स्रवन सुखकारी, विस्व दुरित दुरि जाहिं॥

(सूरसागर दशम स्कंध, २४७३)

आनन्दानुभूति में उन्होंने अपने दोनों गुरुओं—वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ को स्मरण किया और उनके प्रति आभार प्रदर्शित किया है।

सरसठ बरस प्रवीन—सूरदास जी का जन्म संवत् १५३५ है। मधुरा भक्ति की स्वानुभूति उन्हें संवत् १६०२ के बाद ही हुई। अतः इस समय उनकी आयु सचमुच (१६०२-१५३५) ६७ वर्ष की थी। प्रवीण से तात्पर्य वृद्धावस्था (६७ वर्ष) की प्रवीणावस्था है। डा० टंडन को इस शब्द में गर्वोक्ति प्रतीत होती है। किन्तु यह कवि की गर्वोक्ति न होकर विनयोक्ति है। कवि का कथन है कि सरसठ वर्ष की प्रवीणावस्था में अर्थात् जीवन के चौथेपन में पहुँचने के उपरान्त मैंने अपने प्रभु के युगल स्वरूप का दर्शन किया। इस काल में भी जो दर्शन उसे प्राप्त हुआ उसके लिए वह अत्यन्त प्रसन्न और गद्‌गद् है। उसे सन्तोष है कि देर में ही सही पर गुरु के प्रसाद से उसे दर्शन प्राप्त तो हुए।

दर्शन—चर्मचक्षुओं से जो दिखाई पड़ता है वह सत्य स्वरूप नहीं है। अन्त-र्नेत्रों से जो दिखाई पड़ता है वही वास्तविक दर्शन है। प्रभु के युगल-स्वरूप की जो स्वानुभूति सूरदास जी को हुई वह वास्तविक 'दर्शन' ही था।

शिव''' नीत। इसका पाठान्तर 'शिव विधान' भी मिलता है किन्तु अर्थ की संगति उसमें कम बैठती है। उस पाठ को मान कर डा० मुंशीराम शर्मा मानते हैं कि सूरदास जी पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व शैव थे। उन्होंने शिव-विधान से तपस्या की थी। यह अर्थ 'विधान' पाठ मानने के कारण है। सूरदास जी की शिव-साधना प्रामाणिक नहीं है। डा० शर्मा ने कल्पित करके ऐसी धारणा बनायी है।

यह पंक्ति सारावली में अनेक बार आयी है। जब-जब कवि ने हरि-लीला का माहात्म्य वर्णण किया है तब-तब यही पंक्ति दोहरायी है—

१ नाभि कमल में बहुतहि भटक्यो, तऊ न पायो पार। (पद ११)

२. शेष सहस मुख रटत निरंतर तऊ न पायो पार। (पद १४६)

३ शतकोटी रामायन कीन्हो, तऊ न लीन्हो पार। (पद १५५)

४ नेति नेति कर कहेउ सहस विधि तऊ न पायो पार। (पद १००६)

अतः 'शिव विधात' पाठ ही ठीक है अर्थात् शिव और विधाता दोनों ने तपस्याएँ की फिर भी वे पार नहीं पा सके। ब्रह्मा की उत्पत्ति में ब्रह्मा की तपस्या का वर्णन है। शिव तो तपस्वी थे ही और प्रभु-लीला को अपार मानते ही हैं।

सुख परजंक अंक ध्रुव देखियत कुसुम कुन्द द्रुम छाये।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दम्पति लगत सोहाये ॥१००३॥

शाश्वत वृन्दावन में पुष्पावली और वृक्ष सुशोभित हैं। वहाँ मधुर मल्लिका फूली हुई है। इन फूलों से लदे निकुंजों में सुख-शय्या पर विराजमान दम्पति (राधा-कृष्ण) शोभायमान लगते हैं।

गोवर्द्धन गिरि रत्न सिंहासन दम्पति रस सुख मान।
निविड़ कुंज जहँ कोउ नहिं आवत रस विलसत सुखसान ॥१००४॥

यहाँ गोवर्धन पहाड़ के रत्न सिंहासन पर घने कुंजों के बीच दम्पति ?

विलास में रत हैं। यहाँ सर्वथा एकान्त में, कोई नहीं आ सकता। यहाँ प्रभु का शाश्वत विहार चलता है।

निसा भोर कवहूं नहिं जानत प्रेम मत्त अनुराग।
ललितादिक सींचति सुखनैननि जुर सहचरि वड़भाग ॥१००५॥

रात या प्रातःकाल को जानते नहीं। इस नित्य विलास में प्रभु अनुराग-मग्न हैं। ललिता आदि सहचरियाँ निकुंजों के वाहर एकत्र होकर इस आनन्द राशि से अपनी आँखों को सुख पहुँचाती हैं।

निकुंज लीला की पूर्वकथा

यह निकुंज को वर्णन करिबे वेद रचै पचिहार।
नेति नेति कर कहेउ सहस विधि तऊ न पायो पार ॥१००६॥

प्रभु के आनन्द रूप (निकुंज स्वरूप) का वर्णन करके वेद हार गये। जब वे पूर्ण रूप से कह न सके तो उन्होंने 'नेति-नेति' (ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, इसका अन्त नहीं है) हजारों वार कहा और पार न पा सके।

दरसन दियो कृपा करि मोहन वेगि दियो वरदान।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्रीमुख कही वखान ॥१००७॥

उनकी इस विपन्नावस्था को देखकर उन्हें तृप्ति देने के लिए प्रभु ने कृपा करके उन्हें दर्शन दिया और वरदान दिया कि भावी कल्प में तुम्हें रमण का आनन्द मिलेगा।

सो श्रुति रूप होय व्रजमण्डल कीनो रास विहार।
नवल कुंज में अंस वाहु धरि कीन्हीं केलि अपार ॥१००८॥

तुम सभी वेद की श्रुतियाँ व्रजमण्डल में गोपी रूप से जन्म लोगी और मैं कृष्ण होकर अवतार लूँगा। तब नवल कुंजों में रास लीला के वीच तुम्हारे कन्धों पर हाथ धर के मैं तुम्हारे साथ आनन्द क्रीड़ा करूँगा। इस प्रकार तुम्हारी अतृप्त वासना को पूर्णकाम होने का सुअवसर प्राप्त होगा।[1]

पुनि ऋषि रूप राम वर पायो हरि से प्रीतम पाय।
चरण प्रसाद राधिका देवी उन हरि कंठ लगाय ॥१००९॥

फिर रामावतार में मर्यादा पुरुषोत्तम ने ऋषि रूप में जीवन व्यतीत किया।

---

१. 'सूरसागर' में भी उपर्युक्त कथन मिलते हैं।

स्तुतिन कह्यौ कर जोरि सच्चिदानन्द देव तुम।
जो नारायन आदि रूप तुम्हरो सो लखैं हम ॥
वृन्दावन निज धाम कृपा करि तहाँ दिखायौ।
स्तुतिन कह्यो ह्वै गोपिका केलि करैं तुम संग।
एवमस्तु निज मुख कह्यो. पूरन परमानन्द ॥
वेद रिचा हैं गोपिका हरि संग कियो विहार ॥

(सूरसागर द० स्कंध ११७५)

अतः उन्हें भी अतृप्त रूप में ही रहना पड़ा। इसीलिए अगले जन्म में उन्होंने कृष्णावतार लिया और सीता जी राधिका रूप में अवतरी। इस प्रकार सोलह सहस्र गोपियों और राधा के साथ रमण करके राम को शान्ति मिली।

वृन्दावन गोवर्धन कुंजन जमुना पुलिन सुदेस।
नित प्रति करत विहार मधुर रस स्यामास्याम सुवेस ॥१०१०॥

वृन्दावन और गोवर्धन के कुंजों में यमुना के सुन्दर किनारे पर कृष्ण और राधिका सुन्दर वेश धारण किये हुए नित्य-विहार में रत रहते हैं।

निरखि निरखि सुख दम्पति को यह कवि कुल सब पचि हारे॥
भूषन खसे सुरति बस दोऊ केसन आपु सँवारे ॥१०११॥

इनके विलास-सुख को देख-देख कर कवि हार जाते हैं वर्णन नहीं कर सकते। सुरत केलि में केश से मोती आदि गिरते हैं उन्हें ये सम्भाल नहीं सकते।

राग-रागिनी-विवरण

ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन कर लीने।
जान प्रभाव राग पंचम षट मालकोस रस भीने ॥१०१२॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारंग सुर नट जान।
सुर सांवत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान ॥१०१३॥
ऊँछ अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत विहाग मधुर केदारो सकल सुरन सुखदीन ॥१०१४॥
सोरठ गौड़ मलार सोहावन भैरव ललित बजायो।
मधुर विभास सुनत बेलावल दम्पति अति सुख पायो ॥१०१५॥
देवगिरी देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखरास।
जैतश्री अरु पूर्वी टोड़ी आसावरि सुखरास ॥१०१६॥
रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गाये।
जैजैवन्ती जगत मोहनी सुर सों बीन बजाये ॥१०१७॥

सुन्दर वीणा लेकर ललिता सुन्दर राग बजाने लगी। अनेक राग रागनियाँ बजीं जिनके नाम इस प्रकार हैं—मालकोस, हिंडोल, मेघ, मालव, सारंग, नट, सावंत, भूपाली, यमन, कान्हरो, उ छ, अड़ाना, नायकी, केदारा, सोरठ, गौड, मल्हार, भैरव, ललित, विभास, विलावल, देवगिरि, देशाकदेव, गौरी, श्री, जैतश्री, पूर्वी, टोडी, आसावरी, रामकली, गुनकली, केतकी सुघराई और जैजैवन्ती।

सुरतान्त

सुभ्र सरस उगत प्रीतम सुख सिन्धु बीर रस मान्यो।
जान प्रभात प्रभाती गायो भोर भयो दोउ जान्यो ॥१०१८॥

शुक्र तारे का उदय हो गया। अभी तक राधा-कृष्ण सुरति में सोत्साह आनन्द ले रहे थे। अब प्रभात काल निकट जान कर ललिता ने प्रभाती गायी। प्रभाती सुनकर दोनों ने जाना कि अब प्रातःकाल हो गया।

जागे प्रात निपट अलसाने भूपन सब उलटाने।
करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस सिथिलाने ॥१०१६॥

प्रातःकाल दोनों उठे। वे बड़े ही अलसाये हुए थे और उनके सारे वस्त्र-भूषण उलटे हुए थे। इसलिए दोनों मिलकर वस्त्र-भूषण ठीक प्रकार से पहनने लगे। उनके सारे अंग आलस्य और शैथिल्य से भरे थे।

जालरंध्र ह्वै सहचरि देखत जन्म सफल करि लेखे।
जान प्रभात उछंगन दम्पति लेत प्राण रस पेखे ॥१०२०॥

सहचरियाँ उनका यह शिथिल रूप कुंजों के छिद्रों से देखती हैं और अपना जन्म सुफल मानती हैं। प्रातःकाल जानकर दम्पति ने फिर आलिंगन किया।

ओट्यौ दूध कपूर मिलायो लै ललिता तहँ आई।
पहिले श्यामा को अंचवायो पाछे पिवत कन्हाई ॥१०२१॥

इतने में ललिता औटाया हुआ दूध कपूर मिला कर लायी। पहिले उसने राधा को फिर कृष्ण को पिलाया।

करि सिंगार सघन कुंजन में निसिदिस करत विहार।
नीराजन बहुविधि वारत हैं ललितादिक व्रजनार ॥१०२२॥

इस प्रकार शृंगार करके सघन कुंजों में प्रभु नित्य विहार में लीन हैं और ललिता आदि गोपियाँ उन पर अपना सब कुछ निछावर करती हैं।

कबहुँक केलि करत यमुना जल सुन्दर सरद तडाग।
कबहुँक मधुर माधुरी झूलत आनँद अति अनुराग ॥१०२३॥

कभी यमुना जल में या शरद ऋतु में तालाब में भी विहार करते हैं। कभी-कभी झूले में बड़े अनुराग के साथ राधा-कृष्ण झूलते हैं।

वसन्त लीला

प्रथम वसंत पंचमी शुभ दिन मंगल चार वधाये।
पंचानन जार्‌यो मन्मथ सो प्रगट भये फिरि आये ॥१०२४॥

वसन्त पंचमी के दिन पहिले खूब मंगलचार गाये गये। अनुमान लगा कि जिस कामदेव को शंकर जी ने जला दिया था वह फिर प्रकट हो गया है।

जसुमति मात बधाई बाँटति फूली अंग न समाई।
उबटि न्हवाय स्याम सुन्दर को आभूषन पहिराई ॥१०२५॥

यशोदा माँ बधाई बाँटती हुई अत्यन्त प्रसन्न हैं। उन्होंने कृष्ण को उबटन लगाये, नहलाया और सुन्दर वस्त्र पहिनाये।

घर घर ते आई व्रज सुन्दरि मंगल साज सँवारे।
हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मंत्र उच्चारे ॥१०२६॥

घर-घर से व्रज सुन्दरियाँ सज-धज कर आई। उन्होंने सिर पर स्वर्ण कलश धारण कर रखे थे और पूर्ण काम होने का मन्त्र उच्चारण कर रही थीं।

अबिर गुलाल अरगजा सोंधों लीन्हों सौज बनाय ।
मन में किये मनोरथ बहुविधि मिलवत सब मनभाय ॥१०२७॥

उनके पास अबीर, गुलाल, अरगजा तथा अन्य सुगन्धित वस्तुएँ थी । उनके मन में अच्छे मनोरथ थे और वे प्रेम के साथ मिल रही थी ।

भीर जानि सिहपौर तियन की जसुमति भवन दुराई ।
ढूंढि सकल तिय दौरि मात को पकरि बाँह ले आई ॥१०२८॥

सब नारियों की भीड देकर यशोदा जी घर में छिप गयी । सारी गोपियों ने उन्हें घर में खोजा और माता यशोदा की बाँह पकड़ कर ले आयी ।

केसर चन्दन और अरगजा सीरा महर के जाये ।
जो जो विधि उपजी जाके जिय सोइ सोइ भाँति कराये ॥१०२९॥

सब गोपियों ने नन्द जी को शिर नवाया और केशर चन्दन अर्गजा आदि यथा रुचि उन्होने प्रस्तुत किया ।

फगुआ दियो महर मन भायो जसुमति परम उदार ।
पकर लिये घनश्याम मनोहर भेंटे भरि अंकवार ॥१०३०॥

नन्द और यशोदा ने बड़ी उदारता के साथ सबको मन भाया उपहार दिया । फिर उन्होने कृष्ण जी को पकडा और गाढालिगन दिया ।

पहिलो जान बसंत पंचमी जसुमति बहुत खिलाये ।
केसर चोवा और अरगजा स्याम अंग लपटाये ॥१०३१॥

यह कृष्ण जी की पहली बसत पंचमी थी । अत यशोदा जी ने उन्हे पहले अच्छी प्रकार से खिलाया फिर केशर चन्दन चोवा आदि सुगधियों को उनके शरीर में लगाया ।

ता पाछे गोपिन ने छिरके कनक कलम भरि डारे ।
मानो सीस तमाल अमृत घन सरस सुधानि धरारे ॥१०३२॥

उसके बाद गोपियों ने अपने कनक-कलशों से केशर-चन्दन आदि मिश्रित जल की वर्षा की । उस समय ऐसा लगता था मानों तमाल वृक्ष के ऊपर बादल अमृत की धाराएँ डाल रहे हैं ।

चन्दन चोवा मथत हाथ कर नील जलद तनु अरप्यो ।
मानो प्रगट करी अपने चित पिय को प्रान समरप्यो ॥१०३३॥

उन्होने अपने हाथ से कृष्ण जी के नील जलद तुल्य शरीर पर चोवा-चंदन आदि मले । ऐसा लगता था मानो वे स्वयं अपने प्रिय को प्राण समर्पण कर रही हैं ।

किये मनोरथ नाना विधि के मेवा बहुविधि लाई ।
सो हरि ने स्वीकार कियो सब निरखि परम सुख पाई ॥१०३४॥

फिर उन्होंने नाना प्रकार के मेवा प्रस्तुत किये । कृष्ण जी ने स्वीकार करके उनकी इच्छाएँ पूरी की और वे बड़ी सन्तुष्ट हुईं ।

सुबल सुबाहु तोक श्रीदामा सकल सखा जुरि आये ।
रतन चौक में खेल मचायो सरस वसन्त बधाये ॥१०३५॥

इसके बाद उनके सभी साथी सुबल, सुबाहु और श्रीदामा आदि इकट्ठे हुए । सब लोग रतन चौक पर आ गये । यहाँ उन्होंने होली का खेल बड़े आनन्द से आरम्भ किया ।

करत परस्पर गोप-ग्वाल मिलि क्रीड़ा अति मनभाई ।
सुरँग अबीर गुलाल उड़ावत रह्यो गगन सब छाई ॥१०३६॥

ग्वाल वाल आपस में मिल कर खेलने लगे । अबीर,गुलाल उड़े और आकाश में छा रहे ।

फगुआ देन कह्यो मन भायो सबै गोपिका फूलीं ।
कंठ लगाय चलीं प्रीतम को अपने गृह अनुकूलीं ॥१०३७॥

इन ग्वाल वालों ने उपहार (फगुआ) माँगे । यह सुनकर गोपियाँ आमोदित हो गयीं । गोपियाँ कृष्ण को गले लगा-लगा कर प्रसन्नता के साथ अपने-अपने घर चली गयीं ।

करत आरती विविध भाँति सों जसुमति परम सुहाई ।
सखा वृन्द सब चले जमुन तट खेलत कुंवर कन्हाई ॥१०३८॥

यशोदा जी ने कृष्ण की आरती की । फिर सखा लोगों ने कृष्ण को साथ लिया और वे खेलते हुए यमुना-तट पर आ गये ।

बैठे जाय सघन कुंजन में जमुना तीर गोपाल ।
सखी एक तहँ आय निकट ही बोली वचन रसाल ॥१०३९॥

यमुना के किनारे कृष्ण जी सघन कुंजों में जा बैठे । एक सखी आई और उसने मधुर वचनों से कहा ।

वृन्दावन फूल्यो नन्द नन्दन सघन कुंज बहु भांति ।
हरित पीत मुकुलित द्रुम पल्लव मुखरित मधुकर पांति ॥१०४०॥

हे कृष्ण वृन्दावन खूब फूला है । वहाँ अनेक प्रकार के सघन कुंज हैं । हरे और पीले रंग के पुष्प वृक्षों में खिले हैं । भौंरे गूँज रहे हैं ।

ठौर ठौर झिल्ली धुनि सुनियत मधुर मेघ गुंजार ।
मानो मन्मथ मिलि कुसुमाकर फूले करत विहार ॥१०४१॥

जगह-जगह झिल्ली की झनकार सुनाई पड़ती है और उसी के बीच-बीच बादलों की गरज मधुर लगती है । ऐसा लगता है कि कामदेव वसन्त के साथ मिल कर विहार कर रहा है ।

अपनो सब गुन तुम्हें दिखावन स्मर वसन्त मिलि आयो ।
मधुर माधुरी मुकुलित पल्लव लागत परम सुहायो ॥१०४२॥

कामदेव और वसन्त दोनों अपने समस्त गुण तुम्हें दिखाने के लिए आये हैं । वातावरण की माधुरी और खिले पुष्पों से युक्त पल्लव शोभायमान हैं ।

गोवर्धन के शिखर सुभग पर फूले कुसुम पलास ।
सहज सुरति सुख देत संयोगिन विरहिनि करत उदास ॥१०४३॥

गोवर्धन के शिखरों पर पलाश पुष्प फूले हुए हैं । ये संयोगिनी को सहज-सुरति सुख देने वाले है और विरहिणी को उदास करने वाले हैं ।

पुहुप पराग परस मधुकर गन मत्त करत गुंजार ।
मनो कामि जन देखि युवति जन विषयासक्त अपार ॥१०४४॥

भौंरे पुष्पों के पराग का स्पर्श करके मदमत्त होकर इस प्रकार गुंजार कर रहे हैं मानों कामी पुरुष युवतियों को देखकर अत्यन्त विषयासक्त हो जा रहे हों ।

बीथिन विपिन विलोकि विविध द्रुम मंडित कुसुमित कुंज ॥
मनहुँ हेम मंडपिका मुखरित कल्पलता रस पुंज ॥१०४५॥

वन की गलियों मे अनेक वृक्षों को फूलो से लदे देखकर ऐसा लगता है मानों कल्प लताओं से बनी स्वर्ण मडपियाँ है जिनमे रस-पुंज मुखरित है ।

बेग चलौ वृन्दावन नायक राधा मारग जोवत ।
हिल मिल खेलो मन्मथ क्रीड़ा क्यों बसंत दिन खोवत ॥१०४६॥

हे वृन्दावन नायक कृष्ण ! शीघ्र चलो राधा जी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं । उनके साथ हिलमिल कर काम-क्रीडा कीजिये, बसन्त के सुन्दर दिनों को आप क्यो खो रहे हैं ।

सुनत बचन ललिता के मोहन तुरत चले उठि धाय ।
कियो बसंत खेल वृन्दावन अद्भुत फागु मचाय ॥१०४७॥

ललिता के वचनों को सुनकर कृष्ण जी तुरन्त चल पड़े । उन्होंने वसन्त का अद्भुत खेल मचा दिया ।

लता लता बन बन कुंजन में खेलत फिरत बसन्त ।
मनहुँ कमल मंडल में मधुकर विहरत हैं रसमन्त ॥१०४८॥

अब तो लता-लता, वन-वन और कुंज-कुंज मे कृष्ण गोपियो के साथ होली खेलने लगे । ऐसा प्रतीत होता था मानो कमलो के बीच मे भ्रमर विचरण कर रहा हो ।

उत स्यामा इत सखा मंडली उत हरि इत ब्रजनार ।
मनो तामरस पारस खेलत मिलि मधुकर गुंजार ॥१०४९॥

एक ओर कृष्ण और उनके सखा थे तथा दूसरी ओर राधा और उनकी सखियाँ थीं । ऐसा लगता था मानो कमलो के झुण्ड मे भौंरे गुंजार के साथ खेल रहे हैं ।

खेल बसन्त बहुत सुख मान्यो हर्षे गोपी ग्वाल ।
बिहँसि गये ब्रजराज भवन सब चंचल नैन विसाल ॥१०५०॥

वसन्त के खेल मे उन्होंने बड़ा सुख माना । गोपी और ग्वाल खूब प्रसन्न हुए । फिर श्रीकृष्ण जी खेल के अन्त में बड़ी प्रसन्नता से अपने घर चले गये ।

होरी डांडो दिवस जानि के अति फूले ब्रजराज ॥
बैठे सिंह द्वार पै आवुन जुरिकैं गोप समाज ॥१०५१॥

डांडी होरी (होली में डंडा चलने वाला दिन—जब गोपियाँ होली खेलने वाले ग्वालों को डंडे मारती हैं) का दिन समझ कर के कृष्ण जी बड़े उत्साहित हुए। वे बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने द्वार पर अपने सखा ग्वाल वालों के साथ बैठे हैं।

विप्र बुलाय वेद विधि करिकैं होरी डांडो रोप।
आनन्दे सब गोप मण्डली मन्मथ कियो प्रकोप ॥१०५२॥

ब्राह्मण को बुलाकर वेद विधि से डांडी होरी का आरम्भ हुआ। सभी लोग आनन्दित हुए। मगर गोप मंडली में कामदेव ने प्रवेश कर रखा था।

होली-मास

परिवा प्रथम दिवस होरी को नन्दराय गृह आई।
सकल तीज गोपी कर लेके खेलन को मन भाई ॥१०५३॥

फागुन की प्रतिपदा (कृष्ण पक्ष १) को राधा सारी गोपियों को साथ लेकर नन्दजी के घर आयी और उसने होली खेली।

दुइज दुहूँ दिसि ते होरी मचि सुरंग गुलाल उड़ायो।
मनो अनुराग दुहुन के अन्तर सबहिन प्रगट करायो ॥१०५४॥

द्वितीया के दिन दोनों ओर से (कृष्ण और राधा) होली मची। दोनों ओर से गुलाल की जो लालिमा उड़ी उससे लगा कि सबके हृदय में अनुराग प्रकट हुआ है।

विशेष—अनुराग का रंग लाल माना जाता है।

तीज तरुनि मिलि पकरे मोहन गहि कर अंजन दीनों।
मत्त मधुप बैठ्यो अम्बुज पर मुखरत है सुर भीनों ॥१०५५॥

तृतीया के दिन गोपियों ने कृष्ण को पकड़ लिया। उन्होंने उनका स्त्री रूप बनाने के लिए आँखों में अंजन लगा दिया। आँखें अंजन से रंजित होकर ऐसी लगीं मानों मतवाला भौंरा कमल पर बैठ कर सुमधुर स्वर में गुंजार कर रहा है।

चम्पक लता चौथ दिन जान्यो मृगमद सीर लगायो।
मनहुँ नील जलधर के ऊपर कृष्नागर लपटायो ॥१०५६॥

चौथे दिन चम्पक लता नामक गोपी ने कृष्ण जी के मस्तक में कस्तूरी का टीका लगा दिया। यह ऐसा लगा मानों नीले बादल के ऊपर कालिमा लगा दी हो।

पांचै प्रमदा परम प्रीति सों केसर छिड़की घोरि।
मनहुँ सुधानिधि वरसत घन पर अमृत धार चहुँ ओरि ॥१०५७॥

पांचवें दिन गोपी प्रमदा ने बडी प्रीति के साथ केसर घोली और कृष्ण के ऊपर छिड़क दिया। यह छिड़काव ऐसा प्रतीत हुआ मानों अमृतसागर ने बादल पर चारों ओर से अमृत की धाराएँ बरसाई हों।

छठि छरागनी गाय रिझावत अति नागर बलबीर।
खेलत फाग संग गोपिन के गोपवृन्द की भीर ॥१०५८॥

छठी के दिन छः रागिनियों को गाकर गोपियों ने कृष्ण जी को प्रसन्न किया

श्रौर ग्वाल बालों की टोली ने गोपियो के साथ होली का खेल किया।

सातें सजि सुगन्ध सब सुन्दरि लै आई उपहार।
बल मोहन कौं हँसत खेलावत रीझि भरत श्रँकवार ॥१०५६॥

सप्तमी को सुन्दरियाँ सुगन्धियों से सज धज कर आई और साथ मे उपहार लायीं। वे बलराम और कृष्ण से प्रसन्न होकर खेल रही थी और आलिंगन कर रही थीं।

आठैं अति आतुर अबला प्रिय चुम्बन दीन्हों गाल।
नाना विधि सिंगार बनाये बेंदा दीन्हों भाल ॥१०६०॥

अष्टमी के दिन स्त्रियाँ विशेष आतुर हुई। उन्होने कृष्ण के कपोलों का चुम्बन ले लिया। उन्होंने कृष्ण का नाना प्रकार का शृंगार किया। उनके मस्तक पर बिन्दी भी लगा दी।

नवमी नौ सत साजि राधिका चन्द्रावलि ब्रजनार।
हो हो करत पलास कुसुम रँग बरसत हैं जो अपार ॥१०६१॥

नवमी के दिन सोलह शृंगार करके राधिका और चन्द्रावली आदि गोपियाँ आईं। वे हो-हो करती हुई पलाश के फूलों से बनाये हुए लाल रग की घनी वृष्टि कृष्ण पर करने लगी।

दसमी दसौ दिसा भई पूरित सुरग अबीर गुलाल।
मनु प्रीतम मिलिबे के कारण फूले नयन बिसाल ॥१०६२॥

दशमी के दिन दशो दिशाएँ अबीर गुलाल से रगीन हो गयी। ऐसा प्रतीत हुआ मानों प्रियतम (कृष्ण) से मिलने के कारण उनके विशाल नयन फूल उठे हैं।

एकादसी एक सखि आई डार्यो सुभग अबीर।
एक हाथ पीताम्बर पकर्यो छिरकत कुमकुम नीर ॥१०६३॥

एकादशी के दिन एक गोपी आई और उसने कृष्ण के ऊपर अबीर डाल दिया। उसने एक हाथ से कृष्ण के पीताम्बर को पकड़ लिया और उस पर केशर का जल डाल दिया।

द्वादसि मची दुहूँ दिसि होरी इत गोपी उत ग्वाल।
इत नायक बल मोहन दोऊ उत राधा नव लाल ॥१०६४॥

द्वादशी को दोनों ओर से होली मची। इधर गोपियाँ थी और उधर ग्वाल बाल थे। एक ओर नेता कृष्ण बलराम थे और दूसरी ओर का नेतृत्व राधा जी कर रही थीं।

तेरस तरुनी सब मिलि के यह कीन्हों कछुक उपाय।
तोक सुबल मधु मंगल बोल्यो सबहिन मतो सुनाय ॥१०६५॥

त्रयोदशी के दिन सभी ने मिल कर कुछ ऐसा उपाय किया कि सुबल ने मंगलाचार किया और सब को उसे सुनाया। तात्पर्य उसने सुनाया कि अब राधा-कृष्ण का विवाह होगा।

चौदसि चहूँदिसा सों मिलिकै गठजोरो गहि भोर।
मन मोहन पिय दूलह राजत दुलहिन राधागोर ॥१०६६॥

चतुर्दशी के दिन सबने चारों ओर से एक मंडल बनाया और उसके बीच उन्होंने राधा और कृष्ण का गठबन्धन करा दिया। इस प्रकार पुष्टिमार्गीय मतानुसार राधा और कृष्ण विवाहित हो गये।[1]

देखि कुहू कुसुमाकर फूल्यो मधुप करत गुंजार।
चन्द्रावलि केसर ले आई छिरके नन्द कुमार ॥१०६७॥

अमावस्या के दिन पुष्प फूले हुए थे। भौंरे गुंजार कर रहे थे। इस समय चन्द्रावली केसर ले आई। उसने कृष्ण जी के ऊपर छिड़क दी।

सुक्ल पक्ष परिवा पुरुषोत्तम क्रीड़ा करत अपार।
हलधर संग सखा सब लीन्हें डोलत गृह गृह द्वार ॥१०६८॥

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन कृष्ण जी बलराम को लिए हुए घर-घर और द्वार-द्वार डोले। खूब होली खेली।

द्वैज दाम कुसुमन की गूँथी अपने हाथ सँवार।
दई पठाय भानु तनया को पहिरत घोष कुमार ॥१०६९॥

द्वितीया के दिन फूलों की गूँथी हुई माला राधा जी को भेजी और स्वयं भी पहिन ली।

तीज तरुनि सब गावत आईं नन्द राय दरबार।
पकरे आय स्याम नट सुन्दर भेंटत भरि अँकवार ॥१०७०॥
चौथ चहूं दिसि ते सब धाये सखा मंडली धाय।
इतते आई कुंवर राधिका होरी अधिक मचाय ॥१०७१॥

तृतीया के दिन युवतियाँ गाती हुईं नन्द के द्वार पर आईं। आकर उन्होंने कृष्ण को पकड़ लिया और खूब भेंटा। चतुर्थी के दिन चारों ओर से सखा लोग दौड़ कर आये। उधर से कुमारी राधिका भी सखियों सहित आई और होली जोरों से मची।

पंचम पंच शब्द कर साजे सजि वादित्र अपार।
रुंज मुरज ढफताल बांसुरी झालर की झंकार ॥१०७२॥
बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुण्डली यंत्र।
सुर सुरमंडल जल तरंग मिलि करत मोहनी मंत्र ॥१०७३॥
विविध पखावज आवज संचित बिच बिच मधुर उपंग।
सुर सहनाई सरस सारंगी उपजत तान तरंग ॥१०७४॥
कंसताल कठताल बजावत शृंग मधुर मुँहचंग।
मधुर खंजरी पटह प्रणव मिलि सुख पावत रत भंग ॥१०७५॥

---

१. जाकों व्यास बरनत रास।
है गंधर्व विवाह चित्त दै सुनो विविध विलास ॥ (सूरसागर १६८९)

निपट नफेरी श्रवणन धुनि सुनि धोर न रहे व्रजबाल ।
मयुर नाद मुरली को सुनिके भेंटे स्याम तमाल ॥१०७६॥

पंचमी के दिन अनेक बाजों को सजाया और उनको बजाया । जो बाजे बजे उनके नाम इस प्रकार हैं—रुंज, मुरज, ढफ, बाँसुरी, झालर, रबाब, किन्नरी, अमृतकुंडली, सुरमंडल, जलतरंग, पखावज, शहनाई, सारंगी, कंसताल, कठताल, शृंग, मुहचंग, झंझरी, पटह, परमल, नफेरी और कृष्ण की मुरली ।

छठिको षटरस सरस बनायो हरि भोजन करवायो ।
नाना विधि पकवान बनायो जेंवत अति सुख पायो ॥१०७७॥

छठी के दिन छः रसो वाला रसीला भोजन बनाया गया । कृष्ण को भोजन कराया । नाना प्रकार के पकवान बनाये थे जिन को खाकर कृष्णचन्द्र को बड़ा सुख मिला ।

सातें सखि मिलि बीरी लाई आरोगे ब्रजराज ।
आठें दिशा सकल मिल ठाढ़ो दूर करी सब लाज ॥१०७८॥

सप्तमी को सखियाँ पान लाई । कृष्णजी ने उसे खाया । अष्टमी को सबने लोक लज्जा त्याग दी ।

नवमी नवसत साजि राधिका हरि सों खेलत फाग ।
दसमी दसहूं दिशा परिपूरन बाढ़यो अति अनुराग ॥१०७९॥

नवमी को राधा ने सोलह शृंगार किये और कृष्ण से खुल कर फाग खेलने लगी । दसमी को दसो दिशाओ मे अनुराग पूर्ण रूप से भर गया ।

एकादसी राधिका मोहन दोउ मिलि खेलन लाग ।
बैठे जाय सघन कुंजन में जहँ सहचरि बड़ भाग ॥१०८०॥

एकादशी को राधा और कृष्ण साथ-साथ खेलने लगे । वे सघन कुंजो मे बैठे । इसे सहचरी ने बड़ा भाग्य माना ।

सघन कुंज में डोल बनायो झूलत हैं पिय प्यारी ।
ललितादिक बीरी जो खवावत नाना भांति सँवारी ॥१०८१॥

सघन कुंजों में एक हिंडोला बनाया । उस पर कृष्ण और राधिका झूलने लगे । ललिता आदि सहचरियो ने हिंडोले को खूब सजाया और उन्होंने राधा-कृष्ण को पान के बीड़े भी खिलाये ।

अति सुगंध घसलाय अरगजा छिरकत सांवल गात ।
हरिवारी प्यारी हरि छिरकत शोभा बरनि न जात ॥१०८२॥

उन्होंने घिस कर सुगन्धित अर्गजा तैयार किया और कृष्ण के श्यामल अंगों पर छिड़कने लगी ।

द्वादस दिवस दुहूँदिसि माच्यो फागु सकल व्रज माँझ ।
आलिंगन सब देत स्याम को लखै न धुन्धर माँझ ॥१०८ ॥

धुंधर छा गया। इस धुंधर के बीच गोपियाँ कृष्ण को आलिंगन करने लगीं किन्तु कोई एक दूसरे को देख नहीं पाती थीं।

तेरस भामिनि पियो अधर रस अति आनन्द अघाय।
चहुँ दिसि ते गहिके गठजोरी कीन्हों सखियन आय ॥१०८४॥

त्रयोदशी को राधा जी ने अधरामृत अघा कर पिया। चतुर्दशी को सखियों ने चारों ओर से घेरा और गठबन्धन कर दिया।

पून्यो सुख पायो ब्रजबासी होरी हरष लगाय।
परम राग अनुराग प्रगट भयो अति फूले ब्रजराय ॥१०८५॥

पूर्णिमा के दिन ब्रजवासियों ने बड़ा सुख पाया। उस दिन तो राग और अनुराग मूर्ति धारण कर प्रकट हुए। इससे कृष्ण जी अत्यन्त ही प्रसन्न हुए।

जसुमति माय लाल अपने को सुभ दिन डोल झुलायो।
फगुवा दियो सकल गोपिन को भयो सबन मन भायो ॥१०८६॥

यशोदा माँ ने अपने लाल श्रीकृष्ण को डोल के दिन खूब झुलाया। उन्होंने सभी गोपियों को फगुआ (उपहार) दिया। सब का मन प्रसन्न हुआ।

जमुना जल क्रीड़त ब्रजवासी संग लिये गोविंद।
सिंह द्वार आरती उतारत जसुमति आनंद कन्द ॥१०८७॥

यमुना के जल में सभी ब्रजवासियों ने कृष्ण को साथ में लेकर क्रीड़ाएं कीं। अपने घर के सिंह द्वार पर यशोदा जी ने कृष्ण की आरती उतारी।

यहि विधि क्रीड़त गोकुल में हरि निज वृन्दावन धाम।
मधुवन और कुमुद वन सुन्दर बहुला बन अभिराम ॥१०८८॥

इस प्रकार कृष्ण ने गोकुल में होली खेली। वे वृन्दावन, मधुवन, कुमुदवन, और सुन्दर बहुला वन में खेले।

नन्दग्राम संकेत खिदरवन और काम बन धाम।
लोह वन मीठ वेल वन सुन्दर भद्र वृहद वन ग्राम ॥१०८९॥

नन्द ग्राम के संकेतस्थल खिदिर वन, काम वन, लोह वन, मीठवेल वन, चंद्रवन और वृन्दावन में खेले।

हरि लीला की कथा-परंपरा

चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बलमोहन।
सामवेद, ऋग्वेद यजुर में कहेउ चरित ब्रजमोहन ॥१०९०॥

ब्रज के चौरासी क्षेत्र में कृष्ण बलराम ने जो लीला की उसे चारों वेदों—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ने वर्णन किया। वेदों में कृष्ण-लीला नहीं है। किन्तु उसमें जो ज्ञान है वह प्रभु लीला का ही एक रूप है।

व्यास पुरान प्रगट यह भाख्यो तन्त्र ज्योतिषिन जान्यो।
नारद सों हरि कहेउ कृपा कर अमृत वचन परवान्यो ॥१०९१॥

उसी हरि लीला को व्यासजी ने भागवत पुराण में वर्णन किया। तंत्र ग्रंथों में

ज्योतिषियों ने भी उसी को जाना है। स्वयं भगवान ने नारद से हरि लीला का स्पष्टीकरण किया।

सनकादिक सों कहेउ प्रापु हरि निज बैकुंठ मँझार ॥
व्यास देव शुकदेव महा मुनि नृप सों कियो उचार ॥१०६२॥

सनकादिक से भगवान ने बैकुण्ठ में हरि-लीला का मर्म बतलाया था। फिर व्यासजी की प्रेरणा से शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को भागवत सुनाया।

नारायन चतुरानन सों कहि नारद भेद बतायो।
ताके सुनिके व्यास भागवत नृप सुकदेव जनायो ॥१०६३॥

आदि में विष्णु ने ब्रह्मा से कहा, फिर ब्रह्मा ने नारद से कहा। नारद से व्यास ने और व्यास से शुकदेव मुनि ने पाया तथा शुकदेव ने परीक्षित को सुनाया।

सेष कहेउ जो सांख्यायन सों सुनिके सनत्कुमार।
कहेउ बृहस्पति पुनि मैत्रे सों उद्धव किये बिचार ॥१०६४॥

विष्णु ने सनकादि से जो लीला का स्पष्टीकरण किया था वह उन्होंने शेषनाग से कहा और शेष ने साख्यायन ऋषि को बतलाया। सांख्यायन ने बृहस्पति से और बृहस्पति ने मैत्रेय से कथा कही। मैत्रेय ने उद्धव को वही विचार कह समझाया।

ऐसे बिबिध प्रमाण प्रगट बहु लीला करि व्रजईस।
सोई श्रीसुकदेव महा मुनि प्रगट कही रापीस ॥१०६५॥

इस प्रकार अनेक प्रमाणों से प्रभु की लीला का प्रकटीकरण हुआ। उसी को शुकदेव के माध्यम से लीला का व्याख्यान हुआ।

नित्यविहार का पुनराख्यान

वृन्दावन हरि यहि बिधि क्रीडत सदा राधिका संग।
भोर निसान कबहुं जानत हैं सदा रहत इक रंग ॥१०६६॥

इस प्रकार शाश्वत वृन्दावन में राधिका के साथ सदा क्रीडा करते हैं। प्रातः या रात्रि का अन्तर नहीं मानते, सदा वे एक रूप रहते हैं।

सघन कुंज में खेलत गिरिधर मथुरा की सुधि आई।
राखे बरजि राधिका रानी अब न सकौगे जाई ॥१०६७॥

इन कुंजों में खेलते हुए प्रभु को मथुरा की याद आयी किन्तु राधा जी ने उनसे कहा कि अब तो तुम कहीं नहीं जा सकते।

राखौं कंठ लगाय लाल को पलक ओट नहिं करिहौं।
जुग कुच बीच भुजा दोउन मिलि सदा प्रेम रस भरिहौं ॥१०६८॥

उन्होंने कहा कि अब तो मैं तुम्हें अपने कंठ से लगाकर रखूंगी और पल भर के लिए भी आंखों से ओट नहीं करूंगी। अपनी दोनों भुजाओं और कुचों के बीच ही बांध रखूंगी और सदा प्रेम के रस में रहूंगी।

सदा एक रस एक अखंडित आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत बिहरत जुगल सरूप ॥१०६९॥

इस प्रकार प्रभु सदा एक रस हैं। वे अखंडित हैं। उनका आदि अनूप रूप है

नित्य विहार में मग्न हैं। इस विहार में कोटि कल्प बीतते वे नहीं जानते। उनका शाश्वत युगल विहार चलता रहता है।

संकर्षन के वदन अनल ते उपजी अगिनि अपार।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सों मानो होरीदई पजार ॥११००॥

संकर्षण (बलराम) के मुख से जो अग्नि निकली वही सारे ब्रह्मांड में प्रज्वलित हो गई मानो होली जल गयी हो। तात्पर्य यह कि भगवान् के ही संकर्षण रूप से सृष्टि रूपी होली का प्रसार हुआ और सारे ब्रह्मांडों की सृष्टि हुई। सारावली के आरम्भ में जो सृष्टि वर्णन है वह होली के रूप में प्रस्तुत है। उसी को पुनः सरांश रूप में यहाँ कहा गया है।

सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सबहैं अंस गोपाल ॥११०१॥

सृष्टि से सभी अट्ठाईस तत्व, ब्रह्मांड की रचना, देव सृष्टि, माया, प्रकृति, सब उसी होली खेल के प्रसार में बने हैं। पुरुष रूप श्री नारायण हैं और प्रकृति रूपा सृष्टि हैं। संसार में जो कुछ है सब प्रभु का ही अंश है।

आत्म निवेदन

करम योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो।
श्रीवल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो ॥११०॥
ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बन्द।
ताको सार सूर सारावलि गावत अति आनन्द ॥११०३॥

कर्म, योग, ज्ञान और उपासना आदि सब भ्रम हैं। इन साधनों के भ्रम में सभी संसार है। मैं भी पहले इन सबके भ्रम में था। किन्तु जब महाप्रभु गुरु वल्लभाचार्य मिले तब उन्होंने प्रभु की लीला का मर्म बताया। उससे मुझे भक्ति का असली स्वरूप प्राप्त हुआ। उसी दिन से मैंने हरि-लीला-गान का ही एक लक्ष्य बनाकर पद रचना की। अब तक मैंने जो लीला गान किया उसी का सार रूप सूर सारावली है।

टिप्पणी—पुष्टिमार्ग के अनुसार जप, तप, साधना आदि श्रेष्ठ कर्मों का कोई महत्व नहीं है। प्रभु के अनुग्रह की ही महिमा यहाँ है। इससे प्राप्त कृष्ण भक्ति ही सब कुछ है। इसी का संकेत ऊपर है। महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने से पूर्व सूरदास जी भी जप, तप और साधना में विश्वास करते थे, वे भी वैरागी संत थे और वैराग्य प्रधान शान्ता भक्ति और दास्य भक्ति के भक्त थे। ग्रन्थ की समाप्ति पर हरि-लीला सम्बन्धी अपने अनुभवों को उन्होंने व्यक्त किया है। साथ ही उन्होंने गुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन किया है।

एक लक्ष—इसके अनेक अर्थ किये गये हैं। सामान्य अर्थ संख्या सम्बन्धी है। किम्वदन्ती है कि सूरदासजी ने एक लाख पदों की रचना की थी। वार्ता (संख्या ११) में भी एक लाख पदों का उल्लेख मिलता है। 'सूर-निर्णय' ग्रन्थ में लेखकों ने सूरदास जी के जीवन पर्यन्त लिखे पदों का हिसाब लगाने का प्रयत्न किया है और वे

इस परिणाम पर पहुंचे है कि सवालाख पदो की रचना ही ठीक है।[1] डा० हरिवंशलाल शर्मा ने भी इस गणना का समर्थन किया है।[2] इसका दूसरा अर्थ डॉ० मुन्शीराम शर्मा ने 'सूर-सौरभ' में प्रस्तुत किया था। वे पद वंद से पद की कड़ियाँ (पक्तियाँ) मानते हैं। उनके अनुसार लगभग १० हजार पदो की रचना हुई होगी जिनमें औसत दस पक्तियों को लेने से एक लाख पक्तियाँ हो जाती हैं।

'लक्ष' के 'सूर निर्णय' के लेखकों ने दो और अर्थ दिये हैं—१. 'उद्देश्य' २. 'श्रीकृष्ण'। 'लक्ष्य' सम्बन्धी अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए पूरी पक्ति का अर्थ इस प्रकार लिखा है —

(अपने गुरु वल्लभाचार्य जी से तत्व और लीला-भेद का रहस्य जानकर उन्होंने उसी) एक लक्ष्य से पदवद्ध हरि-लीला का गायन किया।[3]

*एक लक्ष का जो अर्थ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण किया है, उसके लिए श्रीमद्-*भागवत का एक उद्धरण भी दिया है।[4]

उपर्युक्त चार अर्थों मे से तीसरा अर्थ ही अधिक समीचीन लगता है। सूरदास जी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से प्रेरणा प्राप्त करने के उपरान्त सवा लाख पदों की रचना का उद्देश्य बनाया होगा। उसकी पुष्टि 'वार्ता' से भी हो जाती है।

'सो तब सूरदास जी मन में विचारे मैं तो अपने मन में सवालाख कीर्तन प्रकट करिबे को संकल्प कियो है।[5]

डॉ० प्रेमनारायण टण्डन भी इसी अर्थ को सबसे अच्छा मानते हैं।[6] अतः इसी अर्थ को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है। सूरदास जी के पदों की निश्चित गणना बाद में हुई ही नही। अधिक पदो को देखकर सागर से उसकी उपमा दे दी गयी।

ताको सार—सारावली की रचना से पूर्व रचे हुए पदो अर्थात् 'सूरसागर' का सार (संक्षेप) सामान्य अर्थ है। डा० व्रजेश्वर वर्मा ने जब 'सूरसागर' और 'सारावली' का तुलनात्मक अध्ययन किया और दोनों मे पर्याप्त अन्तर देखे तब उन्होंने ग्रंथ को अप्रामाणिक कहा। डा० वर्मा के मत को अमान्य कहते हुए विद्वानो ने कहा कि 'सार' का अर्थ है 'हरि लीला का सार (तत्व)'। डॉ० प्रेमनारायण टण्डन भी इस अर्थ को स्वीकार करते हैं।

---

१. सूर निर्णय पृ० १७३, ७४
२. सूर और उनका साहित्य, पृ० ३१७
३. सूर सारावली की भूमिका पृ० २१
४. सूर निर्णय, पृ० १२५
५. अष्ट सखान की वार्ता कांकरौली, पृ०६५
६. सारावली एक अप्रामाणिक प्रति, पृ० ६५